आधुनिक हिन्दी महाकाव्य

[संस्कृत साहित्य के परिपार्श्व में]

डॉ० वीणा शर्मा
हिन्दी–विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रथम संस्करण : १९६९

मूल्य :
अनुपम प्रकाशन जयपुर
संशोधित मूल्य -

प्रकाशक अनुपम प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर–३
मुद्रक जयपुर मान प्रिन्टर्स, चौडा रास्ता, जयपुर–३

खरा तो सब भवदीय प्रसाद,
शेष मेरी मति का ही भ्रश।
समर्पित करती हूँ माँ देवि!,
आपके वरदानो का अंश॥

—वीणा

प्रस्तावना

युग के बढ़ते हुए चरणों को देखकर साहित्य के सम्बन्ध मे कितने ही लोग कुछ अधिक भ्रमपूर्ण अनुमान लगाने लगे हैं। वे यह सोचने लगे हैं कि आज के मनुष्य का आचरण, व्यवहार, रीति-रिवाज, चाल-ढाल, वेश-भूषा आदि में बहुत परिवर्तन हो गया है। भारतीय मानव इंग्लैंड, अमेरिका, रूस आदि के निवासियों की नक्ल करता हुआ कई अर्थों मे 'नया' बन गया है। उसने अपनी प्राचीन सस्कृति को—अपने विचारों और भावों के प्राचीन भारतीय स्रोत को विस्मृत कर दिया है। वास्तव में नयी कविता के कुछ परिपार्श्वों को देखने पर यह अनुमान साहित्य के माध्यम से भी परिपुष्ट होने लगा है, क्योंकि साहित्य सामाजिक जीवन को किसी न किसी रूप और अश में प्रतिबिम्बित किये बिना नही रहता। अ—कहानी, अ—नाटक, अ—कविता आदि साहित्यिक रूपों में न केवल साहित्यिक विधाएँ ही पाश्चात्य प्रभावों से बोझिल हैं, अपितु जीवन के रग–ढग और तौर–तर्ज भी प्रभाव-मुक्त नही हैं। ऐसा लगता है कि नयी पीढ़ी विद्रोह की धधकती हुई ज्वाला लेकर जीवन के परम्परागत परिपार्श्वों को विदग्ध करने जा रही है।

किन्तु हिन्दी महाकाव्यों के अनुशीलन से उक्त अनुमान हमारे सामने कथित विद्रूपता लेकर प्रस्तुत नहीं होता। यह ठीक है कि जीवन बदल रहा है और यह भी ठीक है कि जीवन के भौतिक आयामों को विस्तार मिल रहा है; किन्तु मानवतावाद, हृदय–परिवर्तन आदि आदर्श भी हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृति की शृखला की दृढ कडियाँ हैं। इनमें यदि टॉल्स्टॉय की झलक दिखायी पडती है तो महात्मा गाधी भी हमारे अनुमानों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत मिलते हैं। इनमें भारत का प्राचीनतम स्वर 'अहिंसा परमोधर्मः', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' आदि अनुगुजित प्रतीत होते हैं।

अतएव हमारी भाव–धारा अभी तक अपनी भारतीयता से विरहित नहीं है। *आलोच्य महाकाव्यों की वस्तु–पीठिका* भी अपने ऐतिहासिक एव पौराणिक सन्दर्भों में मिलती है। जिन महाकाव्यो के सृजन में आधुनिक कथावस्तु का विनियोग है, वे भी भारतीय जीवन की विशेषताओं से विरहित नही हैं। यही बात चरित्र–चित्रण की पृष्ठभूमि में भी दृष्टिगोचर होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि महाकाव्य-क्षेत्र मे आधुनिक हिन्दी साहित्य अपनी प्राचीन परम्पराओं से विरहित नही है। यह अनुमान किसी अ श तक सही हो सकता है कि पाश्चात्य सम्पर्कों और जीवन की नवीनतम आवश्यकताओ के परिणामस्वरूप 'प्राचीनता' और 'नवीनता' मे कुछ सामजस्य किया गया है, किन्तु यह कहना बिल्कुल अनर्गल होगा कि आधुनिक महाकाव्य बिल्कुल नये रूप मे आविर्भूत हुआ है, जिसको भारतीय नही कहा जा सकता है। सच तो यह है कि कवि के भावो और विचारो की समग्र पृष्ठभूमि महाकाव्य मे ही प्रतिबिंबित हो सकती है। वही अखड स्रष्टा पाठक को दिखाई दे सकता है। इसलिए जीवन के मूल्याकन के लिए महाकाव्य ही आधार प्रस्तुत कर सकता है।

लेखिका ने प्राचीन और नवीन जीवन को साहित्य के माध्यम से सही रूप मे देखने अथवा उसका परिचय देने के लिए आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का अनुशीलन पसन्द किया है। यदि परम्परागत प्रभावो से अलग करके इन कृतियो का अध्ययन किया जाता तो भारतीयता के प्राचीनतम परिपार्श्व इतने उभर कर सामने न आते। इसी हेतु लेखिका ने आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का अनुशीलन सस्कृत–साहित्य की व्यापक शीतल छाया मे करने का निश्चय किया।

सस्कृत साहित्य के परिपार्श्व मे आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का विवेचन करने की प्रेरणा लेखिका को इसलिए भी मिली कि इस प्रकार का कार्य इसके पूर्व भी किया जा चुका है। सबसे पहले मेरे पिताजी ने ही 'हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव (सन् १४००–१६०० तक)' नामक शोध–प्रबन्ध लिख कर इस प्रकार के अध्ययन का श्रीगणेश किया था। हिन्दी महाकाव्यो पर भी काम हुआ, जिनके विस्तृत विवरण की यहाँ आवश्यकता नही है, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता ने लेखिका को प्रेरणा दी और उसका समर्थन पिताजी

ने ही नहीं वरन् अन्य विद्वज्जनों ने भी किया। मेरे निर्देशक डॉ० लालताप्रसाद सक्सेना का समर्थन एवं स्वीकृति प्राप्त होने पर इस अध्ययन का विधिवत् प्रारम्भ हुआ।

अपने आप मे यह अध्ययन नितान्त मौलिक है। प्राचीन और नवीन, जीवन और साहित्य को जोडकर दिखाने मे इसका अनुपम योग है। लेखिका ने केवल उन्ही बातो पर गवेषणात्मक दृष्टि केन्द्रित की है जिनसे विषय का निकटतम सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए महाकाव्यों की कथावस्तु ली जा सकती है। समग्र कथावस्तु को न देकर यहाँ केवल प्रभावो और मौलिक परिवर्तनों की विवेचना पर्याप्त समझी गई है। कहने का आशय यह है कि अध्ययन को अनावश्यक एव अनानुषगिक विवेचनो से सविस्तर पृथुलता नहीं दी गई है।

यह अध्ययन नौ अध्यायों मे विभाजित है। प्रथम में भूमिका है, जिसमे सस्कृत और हिन्दी साहित्य के सम्बन्धो पर सामान्य रूप से दृग्पात किया गया है। दूसरे अध्याय मे आधुनिक महाकाव्यों के महाकाव्यत्व की परीक्षा की गई है और इसके अन्तर्गत महाकाव्य के भारतीय शास्त्रीय लक्षणों को विशेष रूप से सामने रखा गया है। तीसरे अध्याय में सस्कृत स्रोतों से आई हुई 'कथावस्तु' और नवीन प्रसगो की विवेचना की गई है। चौथा अध्याय 'चरित्र–चित्रण' से सम्बन्धित है। आधुनिक महाकवियों ने अपनी रचना मे किन प्राचीन पात्रो को लिया है, उनके परम्परागत रूप को किस सीमा तक सुरक्षित रखा है और किन-किन नवीनताओ का समावेश किया है और क्यो, यह विवेचन इस अध्याय की विशेषता है। पाँचवें अध्याय में 'वर्णन' हैं। आलोच्य महाकाव्यों म सस्कृत साहित्य के वर्णनों का उपयोग भी किया गया है और नये वर्णनो की सृष्टि भी की गई है। लेखिका ने उनमे प्राचीनता अथवा परम्परा की खोज की है। जैसा कि अध्याय के अध्ययन से विदित होगा, इस विवेचन मे मनुष्य, प्रकृति, स्थान आदि अनेक वर्णन परम्परा की पृष्ठभूमि मे देखे गये हैं। छठा अध्याय 'नीति' से सम्बन्धित है। आलोच्य कृतियों मे निरूपित नीति पर परम्परा का गहन प्रभाव है। कही कवि के सामने स्मृतियाँ रही हैं, कहीं 'चाणक्यनीति' रही है, कही 'शुक्रनीति' है, कही 'पचतत्र' या 'हितोपदेश' आदि प्राचीन नीतिग्रथ रहे हैं। सातवें अध्याय में 'दार्शनिक सिद्धान्त' विनिविष्ट हैं। इसके अन्तर्गत वैदिक और अवैदिक दोनों दार्शनिक धाराओ को प्रभावों के परिपार्श्व में

अतएव हमारी भाव-धारा अभी तक अपनी भारतीयता से विरहित नही है। आलोच्य महाकाव्यों की वस्तु-पीठिका भी अपने ऐतिहासिक एव पौराणिक सन्दर्भों में मिलती है। जिन महाकाव्यो के सृजन में आधुनिक कथावस्तु का विनियोग है, वे भी भारतीय जीवन की विशेषताओं से विरहित नही हैं। यही बात चरित्र-चित्रण की पृष्ठभूमि में भी दृष्टिगोचर होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि महाकाव्य-क्षेत्र में आधुनिक हिन्दी साहित्य अपनी प्राचीन परम्पराओं से विरहित नही है। यह अनुमान किसी अ श तक सही हो सकता है कि पाश्चात्य सम्पर्कों और जीवन की नवीनतम आवश्यकताओ के परिणामस्वरूप 'प्राचीनता' और 'नवीनता' मे कुछ सामजस्य किया गया है, किन्तु यह कहना बिल्कुल अनर्गल होगा कि आधुनिक महाकाव्य बिल्कुल नये रूप मे आविर्भूत हुआ है, जिसको भारतीय नही कहा जा सकता है। सच तो यह है कि कवि के भावो और विचारो की समग्र पृष्ठभूमि महाकाव्य म ही प्रतिबिंबित हो सकती है। वही अखड स्रष्टा पाठक को दिखाई दे सकता है। इसलिए जीवन के मूल्याकन के लिए महाकाव्य ही आधार प्रस्तुत कर सकता है।

लेखिका ने प्राचीन और नवीन जीवन को साहित्य के माध्यम से सही रूप मे देखने अथवा उसका परिचय देने के लिए आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का अनुशीलन पसन्द किया है। यदि परम्परागत प्रभावो से अलग करके इन कृतियों का अध्ययन किया जाता तो भारतीयता के प्राचीनतम परिपार्श्व इतने उभर कर सामने न आते। इसी हेतु लेखिका ने आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का अनुशीलन सस्कृत-साहित्य की व्यापक शीतल छाया में करने का निश्चय किया।

सस्कृत साहित्य के परिपार्श्व मे आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का विवेचन करने की प्रेरणा लेखिका को इसलिए भी मिली कि इस प्रकार का कार्य इसके पूर्व भी किया जा चुका है। सबसे पहले मेरे पिताजी ने ही 'हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव (सन् १४००-१६०० तक)' नामक शोध-प्रबन्ध लिख कर इस प्रकार के अध्ययन का श्रीगणेश किया था। हिन्दी महाकाव्यो पर भी काम हुआ, जिनके विस्तृत विवरण की यहां आवश्यकता नही है, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता ने लेखिका को प्रेरणा दी और उसका समर्थन पिताजी

ने ही नहीं वरन् अन्य विद्वज्जनों ने भी किया। मेरे निर्देशक डॉ० भालताप्रसाद सक्सेना का समर्थन एवं स्वीकृति प्राप्त होने पर इस अध्ययन का विधिवत् प्रारम्भ हुआ।

अपने आप में यह अध्ययन नितान्त मौलिक है। प्राचीन और नवीन, जीवन और साहित्य को जोडकर दिखाने मे इसका अनुपम योग है। लेखिका ने केवल उन्ही बातों पर गवेषणात्मक दृष्टि केन्द्रित की है जिनसे विषय का निकटतम सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए महाकाव्यो की कथावस्तु ली जा सकती है। समग्र कथावस्तु को न देकर यहाँ केवल प्रभावो और मौलिक परिवर्तनो की विवेचना पर्याप्त समझी गई है। कहने का आशय यह है कि अध्ययन को अनावश्यक एवं अनानुपगिक विवेचनो से सविस्तर पृथुलता नही दी गई है।

यह अध्ययन नौ अध्यायो में विभाजित है। प्रथम मे भूमिका है, जिसमे सस्कृत और हिन्दी साहित्य के सम्बन्धो पर सामान्य रूप से दृग्पात किया गया है। दूसरे अध्याय मे आधुनिक महाकाव्यों के महाकाव्यत्व की परीक्षा की गई है और इसके अन्तर्गत महाकाव्य के भारतीय शास्त्रीय लक्षणों को विशेष रूप से सामने रखा गया है। तीसरे अध्याय में सस्कृत स्रोतों से आई हुई 'कथावस्तु' और नवीन प्रसगो की विवेचना की गई है। चौथा अध्याय 'चरित्र-चित्रण' से सम्बन्धित है। आधुनिक महाकवियों ने अपनी रचना मे किन प्राचीन पात्रो को लिया है, उनके परम्परागत रूप को किस सीमा तक सुरक्षित रखा है और किन-किन नवीनताओ का समावेश किया है और क्यो, यह विवेचन इस अध्याय की विशेषता है। पाँचवें अध्याय में 'वर्णन' हैं। आलोच्य महाकाव्यों म सस्कृत साहित्य के वर्णनो का उपयोग भी किया गया है और नये वर्णनों की सृष्टि भी की गई है। लेखिका ने उनमे प्राचीनता अथवा परम्परा की खोज की है। जैसा कि अध्याय के अध्ययन से विदित होगा, इस विवेचन मे मनुष्य, प्रकृति, स्थान आदि अनेक वर्णन परम्परा की पृष्ठभूमि मे देखे गये हैं। छठा अध्याय 'नीति' से सम्बन्धित है। आलोच्य कृतियों मे निरूपित नीति पर परम्परा का गहन प्रभाव है। कहीं कवि के सामने स्मृतियाँ रही हैं, कही 'चाणक्यनीति' रही है, कहीं 'शुक्रनीति' है, कही 'पचतत्र' या 'हितोपदेश' आदि प्राचीन नीतिग्रथ रहे हैं। सातवें अध्याय में 'दार्शनिक सिद्धान्त' विनिविष्ट हैं। इसके अन्तर्गत वैदिक और अवैदिक दोनों दार्शनिक धाराओ को प्रभावों के परिपार्श्व में

देखा गया है। आठवें अध्याय में 'भाषा-शैली' है। यद्यपि अधिकांश आलोच्य महाकाव्यों की भाषा खड़ी बोली रही है, कुछ एक में ब्रजभाषा और अवधी का उपयोग भी किया गया है, किन्तु इनमें संस्कृत-शैली का प्रभाव स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। कहीं प्रभाव की अभिव्यंजना तत्सम शब्दों में हो रही है, कहीं समस्त पदावली में, कहीं अलंकारों में, कहीं वर्णिक छन्दों में और कहीं कविप्रसिद्धियों और काव्य-रूढ़ियों में हुई है। इन सबकी विवेचना प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में मौलिक दृष्टि से की गई है। अन्त में नवें अध्याय में उपसंहार है, जो छोटा होते हुए भी समग्र सारभार को वहन कर रहा है। इसमें समग्र अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रबन्ध के तैयार करने में मुझे जिन-जिन महानुभावों का सत्परामर्श मिला है उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन ग्रंथों की सहायता से इस प्रबन्ध के कलेवर को पुष्ट किया गया है अथवा जिनकी विचार-भूमिका से लेखिका की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार हुई है उनके प्रणेताओं के प्रति भी लेखिका कृतज्ञ है। अपने प्रबन्ध-प्रेरकों में लेखिका अपने पिता डॉ० सरनामसिंह शर्मा को विस्मृत नहीं कर सकती, जिनका निरंतर मार्गदर्शन और प्रोत्साहन ही उसे कृतकार्य कर सका।

—लेखिका

••••

विषयानुक्रमणिका

●●●●

भूमिका

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य और संस्कृत साहित्य

(साम्बन्धिक पर्यवेक्षण)

हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का बहुत बडा ऋण है। उसने सस्कृत साहित्य के असीम भडार से बहुत कुछ लिया है और लेता जा रहा है। इससे सस्कृत साहित्य की सपन्नता और विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रबन्ध मे आधुनिक महाकाव्यो पर सस्कृत साहित्य के प्रभाव की खोज की गयी है, परन्तु जब हम सस्कृत साहित्य की बात करते हैं तो वैदिक साहित्य को उससे पृथक् समझ कर नही, प्रत्युत उसे वैदिक साहित्य का ही एक सिलसिला मानकर। मैकडोनल, विटरनित्ज आदि विद्वानो ने वैदिक साहित्य को सस्कृत साहित्य से भिन्न मानते हुए भी सस्कृत साहित्य के इतिहास मे उसकी विवेचना की है। इसका एकमात्र कारण है सस्कृत के सम्बन्ध मे वैदिक साहित्य की अनिवार्यता। दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध मूल और वृक्ष का सा है। मूल के बिना वृक्ष की शाखाओ की कल्पना असम्भव है।

यह सर्वमान्य है कि पाणिनि के व्याकरण ने चालू भाषा को नियन्त्रित करके उसे शोध-मार्ग प्रदान किया और व्याकरण नियन्त्रित भाषा सस्कृत कहलायी, परन्तु जिस भाषा का परिशोध हुआ उसे और उसकी परम्परा को कैसे भुलाया जा सकता था? विचारधारा मे वैदिक साहित्य के जो सस्कार चले आ रहे थे, उनमे पाणिनि का व्याकरण परिवर्तन कैसे कर सकता था? पाणिनि का व्याकरण वैदिक और सस्कृत दोनो भाषाओ पर लागू होकर उनके सम्बन्ध का साक्षी बनता है। जब वैदिक और सस्कृत भाषा का व्याकरण तक एक है तो उनमें रमती हुई विचारधारा को विभक्त करके दिखाना दु साहस मात्र होगा। अतएव सस्कृत साहित्य के परिशीलन में वैदिक साहित्य अनुपेक्षणीय है।

यह कहना भी अनर्गल होगा कि संस्कृत साहित्य ने अपनी कोई नवीनता प्रस्तुत नहीं की, फिर भी उसकी रग–रग में, शाखा–शाखा मे वैदिक साहित्य की प्राण शक्ति संचरित हो रही है। किसी शाखा की प्रवृत्ति के परीक्षण के लिए वैदिक साहित्य से बडी महत्त्वपूर्ण सहायता मिल सकती है। इस दृष्टि से इस भूमिका मे पहले वैदिक साहित्य का, और उसी के सिलसिले मे, संस्कृत साहित्य का सामान्य पर्यवेक्षण किया जा रहा है।

वैदिक साहित्य

आदि से अन्त तक वैदिक साहित्य पर धार्मिक छाप लगी हुई है। इसकी अन्तिम रचनाएँ भी धार्मिक दृष्टि से उत्पन्न हुई हैं। इसका परिचय हमें वेद के अर्थ 'ज्ञात' से ही मिल जाता है। वेद का वाच्यार्थ 'ज्ञान' होने पर भी हम उसका प्रचलित अर्थ (आदि धर्म–ग्रंथ) ही ग्रहण करते हैं। जब यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति 'वेदपारगत' है तो सामान्यतया यही अवगति होती है कि वह 'कर्मकांड' और 'ज्ञानकांड' से, जो वेद के मूल विषय हैं, अवगत है। 'वेदों' मे कर्मकांड और ज्ञानकांड का क्रमिक विकास संहिताओं से उपनिषदों तक फैला हुआ है। संहिता का मौलिक विषय ब्राह्मण और आरण्यक में होता हुआ उपनिषद मे चरम परिणति को प्राप्त होता है। इस प्रकार संहिताओं में उत्पन्न हुआ कर्मकांड ब्राह्मणों मे परिपुष्ट होकर आरण्यकों मे ज्ञान की ओर बढ़ता हुआ उपनिषदों के ज्ञान मे अन्तर्निहित हो जाता है, किन्तु वैदिक साहित्य के विषय और शैली मे गहन सम्बन्ध रहा है।

संहिता

पाश्चात्य विद्वानों[1] ने वैदिक साहित्य की तीन सीढ़ियाँ मानी हैं जिनका अन्तर स्पष्ट है। पहली सृजनात्मक और पद्यात्मक सीढ़ी चारों संहिताओं से निर्मित है। "मंत्रों के समुदाय को संहिता कहते हैं और किसी देवता विशेष की स्तुति मे प्रयुक्त होने वाले अर्थ–स्मारक वाक्य को मंत्र कहते हैं।"[2] ये मंत्र या तो ऋक्[3] (Verses) के रूप मे हैं, या सामन्[4] (Chants) के रूप मे हैं या यजुष् (sacrificial sentences) के रूप मे हैं।"

---

१ देखिये, इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, II, पृ० २०६

२. बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ४९

३. बलदेव उपाध्याय, पृ० ५० (पाद से युक्त छन्दोबद्ध मंत्र)

४ वही, पृ० ५० (ऋचाओं का गायन)

ऋग्वेद संहिता मे १०१७ सूक्त और १०५८० ऋचाएँ हैं जो अनेक देवताओं की स्तुति के लिए अभिप्रेत हैं। मंत्रों को दस भागो मे विभक्त किया गया है, उनमे प्रत्येक को मंडल कहते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से सामवेद संहिता का अधिक मूल्य नही है, क्योंकि इसके १५४९ पदो (Stanzas) को छोड कर, शेष सब ऋगवेद मे विद्यमान हैं। इसके पदो को गेयरूप 'गान' नाम के गीति-ग्रंथो (Song books) मे मिला है, जो गायन के लिए अनिवार्य ध्वनियो के उतार-चढाव, उनकी आवृत्ति और वृद्धि का संकेत देते हैं।

मूल यजुर्वेद को उसकी चार प्रमुख शाखाओं ने कुल छः पुनरावृत्त पाठों मे सुरक्षित कर रखा है। शुक्ल यजुर्वेद के अनुयायी 'वाजसनेय' कहलाते हैं। उनके आपस मे मिलते-जुलते दो पुनरावृत्त पाठ हैं जिनमे केवल यजु-संग्रह है। यजुर्वेद की व्याख्यात्मक सामग्री ब्राह्मण मे एकत्र की गयी है। शेष तीन शाखाएं कृष्ण यजुर्वेद की हैं। कृष्ण यजुर्वेद मे ऋचाओं और नियमो के साथ-साथ विवरणात्मक सामग्री भी मिलती है। इनकी चारो आवृत्तियो मे निकट सामुदायिक सम्बन्ध और अधिकांशत मौलिक साम्य मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताएं (मैत्रायणीय, काठक और तैत्तिरीय) हैं। काठक संहिता के अनुयायियो की कठशाखा के अतिरिक्त एक दूसरी उपशाखा कपिष्ठल है। शुक्ल यजुर्वेद की एक काण्व शाखा भी मिलती है। इस प्रकार यजुर्वेद की कुल छ शाखाएं उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद का संग्रह सामवेद की तरह धर्माचार के किसी अंगविशेष के लिए न होकर पूर्ण यज्ञाचार के लिये है। इसके मूल का चतुर्थांश ऋग्वेद से मिलता है। इसका मूलार्थ गद्य मे है। इसमे सिद्धान्तो का निरूपण है। यह गद्यांश, और पद्यांश का लगभग आधा भाग, मौलिक है। कुछ परिवर्तनो के सिवा देवोपाख्यान अधिकांशत: वही है जो ऋग्वेद मे है। यहाँ प्रजापति को प्राधान्य मिलने से उन्हे देवप्रमुख मान लिया गया है। रुद्र शिव-रूप ग्रहण करने लगे हैं और विष्णु की मान्यता मे कुछ वृद्धि हुई है। विशेष अन्तर आस्था मे दीख पडता है। भारतीय धर्म मे सर्प-पूजा का बीजारोपण यही होता है, परन्तु यज्ञ के महत्त्व के कारण उसमें नवीनता का समावेश हो गया है। ऋग्वेद मे यज्ञ का अभिप्राय देवो को 'होता' की ओर झुकाने का था, किन्तु यजुर्वेद में वह न केवल "चिन्ता" और "अभिलाषा" का ही केन्द्र बन गया है, प्रत्युत उसकी शक्ति इतनी बढ गयी है कि वह देवो को भी पुरोहित की इच्छा का अनुपालन करने पर विवश कर देता है। यहाँ वर्णों का व्यवस्थित रूप

सिद्धान्त की संगति में प्रस्तुत किया गया है। पीछे दार्शनिक प्रणालीगत औपनिषदिक चिन्तना का नाम ही "वेदान्त दर्शन" पड़ा।[1]

सूत्रग्रन्थ

वैदिक साहित्य की अन्तिम सीढ़ी सूत्र-साहित्य है, जिसका संग्रह वेदो और वैदिक शाखाओं के अनुसार हुआ है। सूत्रो का उद्देश्य ब्राह्मणों के प्रकरणो को, जिन पर वे आश्रित हैं, संक्षिप्त रूप से क्रमबद्ध करके व्यवहारोपयोगी बना देता है। संक्षेपमूलक उद्देश्य के कारण वे ऐसी शैली मे लिखे गये हैं कि उनका बोध भाष्य के बिना अति दुष्कर है। इसी प्रकार की शैली का अनुकरण बाद में भारतीय दर्शन-साहित्य और व्याकरणो मे हुआ दीख पड़ता है।[2]

सूत्रग्रन्थ ब्राह्मण का उसी प्रकार अनुयायी होता है जिस प्रकार ब्राह्मण संहिता का, परन्तु संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थो को अपौरुषेय एवं सूत्रग्रन्थो को पौरुषेय माना गया है।

सूत्र-साहित्य तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। पहले वर्ग मे वे सूत्र रखे गये हैं जो 'श्रुतिश्रय' हैं। उन्हें श्रौतसूत्र कहा गया है। उनका सम्बन्ध ऐसे-ऐसे कर्मों से है, जो आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि से साध्य माने जाते हैं। अन्य दो वर्ग सामान्य रीतियो से सम्बन्ध रखते हैं। उनमे से एक वर्ग मे गृहसूत्र और दूसरे मे धर्मसूत्र हैं। 'गृहसूत्र' गृहस्थ के जन्म से मरण तक के संस्कारो से सम्बन्धित नियमों का निदर्शन करते हैं। इनके क्षेत्र में मांगलिक और अमांगलिक दोनो प्रकार के गृहकर्म आ जाते हैं। धर्मसूत्रो का वर्ण्यविषय प्रथामूलक है। कानून पर वे सबसे पहले ग्रन्थ हैं। उनमें धर्मपक्ष का पूर्णतः और लौकिक पक्ष का अंशतः अनुशीलन मिलता है। उनका संबंध प्रमुखतः ब्रह्मचारी और गृहस्थ के कर्तव्य, आत्मपरिशोधन, तप और निषिद्ध आहार से है। लौकिक पक्ष मे वे विवाह, दायाद्य और अपराध से सम्बन्ध रखने वाले नियमो का भी विवेचन करते हैं।

सूत्र काल के कुछ और भी मान्य ग्रन्थ हैं जो पूर्वोक्त किसी वर्ग से सम्बन्धित नही हैं। प्रातिशाख्य सूत्र, यास्ककृत निरुक्त और पाणिनि के व्याकरण सूत्र इन्ही ग्रन्थो मे परिगणित किये जा सकते हैं। प्रातिशाख्य अपनी अपनी शाखा के व्याकरण हैं। निरुक्त मे वैदिक ऋचाओं मे आने वाले शब्दो के उद्गम और विकास का विवेचन है। पाणिनि के व्याकरण सूत्र लौकिक

१. दी इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, II, अध्याय ६।

२. डयूसेन : दी सिस्टम आफ वेदान्त, पृ० १२।

और वैदिक दोनों भाषाओं पर लागू होते हैं। इनमें सब शाखाओं का, साथ ही लौकिक भाषा का, व्याकरण है। पाणिनि के सूत्रों के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि संस्कृत भाषा के नवयुग का पदार्पण इन्हीं के उपरान्त होता है।

पीछे यह कहा जा चुका है कि प्राचीन भारतीय साहित्य के वृक्ष का ल वेदों में और शाखा प्रशाखाएँ संस्कृत साहित्य में हैं, अतएव जब हम न्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य के प्रभाव की खोज करते हैं तो वैदिक साहित्य को भुला नहीं सकते। भारतीय साहित्य का जो अवैदिक अंग है वह भी वैदिक साहित्य के प्रभाव से—चाहे वह प्रत्यक्ष हो चाहे अप्रत्यक्ष—मुक्त नहीं है। हिन्दी साहित्य, आदिकाल से लेकर आज तक, अनेक परिवर्तनों और मोड़ों से संकुल होने पर भी वैदिक आख्यानोपाख्यानों और विचारों से नितान्त मुक्त नहीं हो गया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य पाश्चात्य विचार-धारा से प्रभावित होता हुआ भी भारतीय विचार-धारा और सांस्कृतिक पद्धति से किसी-न-किसी रूप में आबद्ध है। छायावादी उत्क्रान्ति के जन्मदाता प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि की रचनाओं में नवीनता के साथ-साथ प्राचीनता भी है। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि अनेक वेद-वाक्य नयी शब्दावली में गुंफित होकर हमारे सामने आ गये हैं। जिस प्रकार कामायनी का आख्यान शतपथब्राह्मण से प्रभावित है उसी प्रकार मनु के कर्मकाड-यज्ञानुष्ठान पर भी वैदिक छाया पड़ी हुई है। इतना ही नहीं, इड़ा, मनु, श्रद्धा, आकुलि, किलात आदि नाम भी वैदिक साहित्य से अवतीर्ण हुए हैं। औपनिषदिक दर्शन का प्रभाव तो आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में से कई पर स्थान-स्थान पर दृष्टि-गोचर हो रहा है। इनमें से सबसे अधिक प्रभाव की अभिव्यक्ति 'लोकायतन' में हुई है। यह कहना बहुत कठिन है कि आलोच्य महाकाव्यों पर वैदिक साहित्य का प्रभाव मौलिक है, किन्तु प्रभाव है, इतना पर्याप्त है, चाहे वह परम्परागत ही क्यों न हो।

(ख) संस्कृत साहित्य

"संस्कृत साहित्य विषय, प्रवृत्ति और रूप में वैदिक साहित्य से भिन्न है। वैदिक साहित्य धार्मिक है और संस्कृत साहित्य लौकिक, फिर भी संस्कृत साहित्य का पोषण वैदिक साहित्य से भी हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। वेदों में जो बातें बीज रूप में मिलती हैं, वे ही संस्कृत साहित्य में विस्तारपूर्वक। कहीं कहीं विस्तार-प्रवृत्ति ने अतिशयोक्ति का मान भी प्राप्त कर लिया है। ब्राह्मणों और सूत्रग्रन्थों में मिलने वाले गद्य प्रयोग का

प्राधान्य अब लगभग पूर्णतः व्याकरण और दर्शन ग्रन्थों में ही देखने को मिलता है। साहित्यिक गद्य युद्ध यथार्थों, आख्यायिकाओं और नाटकों में निहित है, परन्तु लम्बे-लम्बे समासों के कारण उनकी शैली अधिक रोचक प्रतीत नहीं होती। ब्राह्मणों के साहित्य के अलावा उत्तर के बौद्धों और कभी-कभी जैनों ने भी संस्कृत का प्रयोग किया था।"[१]

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत आयुर्वेद, ज्योतिष आदि उपयोगी विज्ञान को सम्मिलित नहीं किया जायेगा, परन्तु शुद्ध साहित्य के साथ दर्शन का विवेचन अवश्य करना होगा, क्योंकि भारतीय साहित्य से दर्शन को अलग करना सम्भव नहीं है। अतएव इस प्रबन्ध के क्षेत्र में दर्शन, स्मृति, पुराण, तंत्र, प्रबन्धकाव्य, मुक्तककाव्य, रीतिकाव्य, नीति, शिक्षा और काव्यशास्त्र रहेंगे।

भारतीय दर्शन की अनेक धाराओं का मूल स्रोत वैदिक साहित्य है। दर्शन हमारे जीवन में इतना घुलमिल गया है कि

दर्शन

इसे पृथक् नहीं किया जा सकता। ध्यान से देखने पर हमारी बात-बात में दर्शन का सन्निवेश मिलता है। भारतीय दर्शन दो स्थूल वर्गों में विभक्त किया गया है। आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन।

साधारण बोलचाल की भाषा में 'आस्तिक' ईश्वर की सत्ता मानने वाले को कहते हैं। यहाँ 'आस्तिक' से अभिप्राय वेद की प्रामाणिकता में विश्वास करने वाले से है। जो वेद की निन्दा करता है या उसका निषेध करता है वह 'नास्तिक' है। इस दृष्टि से न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य, योग और वेदान्त आस्तिक दर्शन हैं और चार्वाक, जैन तथा बौद्ध नास्तिक दर्शन हैं।

उपनिषद् के पीछे की शताब्दियों में अनेक अवैदिक मतवादों को जन्म मिला, जिनके कारण अक्रियावाद, यदृच्छावाद, नियतिवाद आदि मतवाद अंकुरित हो उठे। अवैदिक

नास्तिक दर्शन

दर्शनों में प्राचीनता की दृष्टि से चार्वाक दर्शन सबसे प्राचीन माना जाता है। इसका प्राचीनतम नाम 'लोकायत'[२] है। इसके अनुयायियों का लक्ष्य शुष्क तर्क से वैदिक पक्ष का खण्डन एवं निन्दा करना था। अपने तर्कों के सिवा ये लोग किसी शास्त्र या प्रमाण स्वीकार नहीं करते थे, परन्तु धर्म-विदूषक होने के कारण बौद्ध और जैन धर्मा-

---

१ इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, II, पृ० २३३-३४।

२ लोकायत—अर्थात् लोकाभिमुख (directed to the world)

आर्य भी इसके प्रति वैसी ही घृणा करने लगे जैसी ब्राह्मण करते थे। "ऐसे मतवादों को भारत-भूमि से निकाल कर वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा के लिये पंचमवेद महाभारत का निर्माण किया गया।[1] आसुरी सम्पदा के वर्णन के अवसर पर सोलहवें अध्याय में गीता[2] में इन्हीं लोगों की प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया गया है। रामायण में भी राम ने भरत से इन लोकायतिकों की निन्दा की है।[3] बौद्ध-धर्म में 'लोकायत शास्त्र' को सीखने सिखाने का स्पष्ट निषेध मिलता है। जैन धर्म इसे मिच्छादिट्ठि (मिथ्यादृष्टि) का एक प्रकार मानता है।[4]

जगत् को आश्रय-रहित और अनीश्वर मानने वाले, स्त्री-पुरुष के संयोग को मानवोत्पत्ति का कारण समझने वाले तथा काम को परम पुरुषार्थ मानने वाले चार्वाकों के मत का ईश्वर की सत्ता और पुण्य-पाप के फल में विश्वास रखने वाले प्राचीन हिन्दी कवियों पर समर्थनमूलक प्रभाव की कल्पना सामान्यतया नहीं की जा सकती। आधुनिक काल में कुछ हिन्दी-कवियों की मानसिक गतिविधियाँ चार्वाक-परम्परा की दिशा में परिलक्षित होती हैं, किन्तु आलोच्य महाकाव्य-रचयिताओं में से कोई भी चार्वाक-पद्धति का अनुयायी या समर्थक नहीं दीख पड़ता। भारत के प्राचीन दार्शनिक वातावरण का परिचय देते हुए महाकवि पंत ने 'लोकायतन' में चार्वाक दर्शन का उल्लेख अवश्य किया है, जिसे कोई भी आलोचक प्रभाव-मुक्त घोषित नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त आलोच्य रचनाएं निषेधात्मक प्रभाव को भी व्यंजित करती हैं, जहाँ ऐसे मतवाद की निन्दा की गई है।

जैन और बौद्ध, दोनों ही मत आर्य धर्म हैं। ब्राह्मण-धर्म से इनकी मौलिक भिन्नता यह है कि ये वेदों को प्रमाण नहीं मानते, यद्यपि इनकी अनेक बातें वेद-सम्मत हैं। पाप-पुण्य से प्रथित पुनर्जन्मवाद को जैन और बौद्ध धर्मों में विशेष समर्थन मिला है। शीलाचार पर भी जितना बल इन दोनों धर्मों ने दिया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। पाप और पुण्य से निर्मित होने वाले बन्धन और उससे मोक्ष पाने के साधनों का आलोच्य काव्यों में समान रूप से विवेचन किया गया है और शीलाचार की गरिमा को एक स्वर से स्वीकार किया गया है।

---

१ बलदेव उपाध्याय . भारतीय दर्शन, पृ० ११४
२ गीता, १६.८-११
३ वाल्मीकि रामायण, अयो० कां०, १००.३८-३९
४. देखिये, बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ० ११७

यहाँ समस्या यह है कि इन कृतियों पर यह प्रभाव कहाँ से आया ? हिन्दू धर्म से या जैन और बौद्ध धर्मों से ? इस प्रभाव का अनुमान किसी भी स्वतन्त्र दिशा से किया जा सकता है, किन्तु सम्मिलित प्रभाव भी अविस्मरणीय है। हिन्दुओं का भागवत धर्म भी उपर्युक्त शीलाचार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। साकेत, कृष्णायन, साकेत-सत, पार्वती, कामायनी, प्रियप्रवास आदि महाकाव्यों पर इस प्रभाव के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है। वर्द्धमान, सिद्धार्थ आदि काव्यों पर जैन और बौद्ध-शीलाचार के साथ-साथ भागवतधर्म के शीलाचार की छाया भी बतलायी जा सकती है।

'सिद्धार्थ' में शून्य का उल्लेख पढ़ कर उसे बौद्ध दर्शन के शून्यवाद से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कामायनी में शैवदर्शन की झाँकियों के साथ साथ बौद्धदर्शन की झाँकियाँ भी मिल जाती हैं। पंत ने भी बौद्ध और जैन मत का उल्लेख किया है। 'वर्द्धमान' तो एक दम जैन-सिद्धान्तों का मानो संग्रह बनाया गया है।

आस्तिक दर्शन

आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव को ध्यान में रखते हुए आस्तिक दर्शनों में प्रथम स्थान वेदान्त को, द्वितीय योग को और तृतीय सांख्य को और बाद में न्यायादि को मिला है। मीमांसा की मीमांसा 'लोकायतन' के सिवा अन्य किसी आलोच्य महाकाव्य में नहीं मिलती। न्याय और वैशेषिक को भी 'लोकायतन' में ही स्पष्ट स्थान मिला है। 'परमाणुवाद' के सम्बन्ध में कामायनी में वैशेषिक के प्रभाव का संकेत मिलता है। अन्यत्र इनको नगण्य मान्यता ही मिली है।

अनेक संस्कृत ग्रन्थों में से, जिन पर सांख्य का प्रभाव अधिक दीख पड़ता है, *मानव-धर्मशास्त्र, महाभारत और पुराण प्रमुख हैं।*[1] हिन्दी में सांख्य की छाया इन्हीं ग्रन्थों द्वारा आयी प्रतीत होती है। इसका सबसे अधिक श्रेय भागवत पुराण को मिलना चाहिये क्योंकि इसकी कथाएँ अनेक श्रद्धालुओं का कण्ठहार बनी हुई हैं। भागवत के अनेक कथाप्रसंग, न जाने, कितनी कविताओं के प्रेरणा स्रोत बने हैं। सांख्य का द्वितत्व एवं त्रिगुण सिद्धान्त अधिकांश संस्कृत और हिन्दी साहित्य का सामान्य धन है।[2]

हिन्दी साहित्य पर योग का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। योग का प्रधान लक्ष्य मनोनिग्रह है। अनेक उपनिषदों[3] ने योग की विवेचना अपने-

---

१. देखिये, इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, II, पृ० २५७
२ देखिये, इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, II, पृ० २५७
३ देखिये, बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ० ३४८

अपने ढंग से की है। "उपनिषद-साहित्य मे इक्कीस उपनिषद् ऐसे हैं जिनमे योग का सर्वांगीण विवेचन है।"[1] उनमे योग के समस्त आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, मुद्रा, नादानुसधान आदि विषयो का विस्तीर्ण तात्त्विक निरूपण है। अनेक तन्त्रो और पुराणो मे योग का प्रकरण आता है। योग-विवेचना के सम्बन्ध से श्रीमद्भगवद्गीता को तो कभी-कभी 'योगशास्त्र' ही कह दिया जाता है, परन्तु 'योग सूत्र' दार्शनिक प्रणाली का सबसे अधिक प्राचीन ग्रन्थ है। कालक्रम से योग-पद्धति का बहुत अधिक विकास हुआ। 'गोरक्ष-पद्धति,' 'हठयोगप्रदीपिका', 'शिवसंहिता' आदि मे उसका अर्वाचीन रूप ही दृष्टिगोचर होता है। इन ग्रन्थो मे वर्णित योग 'हठयोग' के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु गोरखनाथ आदि नाथपथी सिद्धो की योग-प्रक्रिया अधिकांशत: उपनिषन्मूलक है, बौद्धतन्त्रमूलक[2] कम।

'लोकायतन' और 'कृष्णायन' मे योग का सक्षिप्त उल्लेख मिलता है। 'साकेत' मे भी योग-सकेत मिलते हैं।

'साकेत,' 'प्रियप्रवास,' 'कामायनी,' 'कृष्णायन' आदि महाकाव्यो पर वेदान्त की विभिन्न शाखाओ का प्रभाव परिलक्षित होता है। उपनिषद् और वेदान्त मे कोई अन्तर नही है। वेदान्त दर्शन उपनिषदो के सिद्धान्तो का एक क्रम-बद्ध सग्रह है। बादरायण का 'ब्रह्मसूत्र' ही वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करता है। सूत्रशैली मे होने के कारण ब्रह्मसूत्र की अवगति बहुत दुष्कर है। विद्वानो ने अपने-अपने मत के अनुसार इसका भाष्य लिखा है और प्रत्येक भाष्य ने वेदान्त के अन्तर्गत किसी-न-किसी वाद-विशेष को जन्म अवश्य दिया है। उन अनेक वादो म स तीन अधिक विख्यात हैं, क्योकि शेष का उदय उन्ही मे कुछ परिवर्तन करने से हो गया है और वे तीन वाद हैं—'अद्वैतवाद', 'विशिष्टाद्वैतवाद' तथा 'द्वैतवाद'। इन मतो के परस्पर भेद के मूल बिन्दु निम्नलिखित हैं :—

(क) जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध

(ख) सृष्टि या जगत् और ब्रह्म का सम्बन्ध

(ग) मोक्ष

---

१ देखिये, बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ० ३४८

२. देखिये, वही, पृ० ३४८

यह धर्म-चिन्तना की सबसे बड़ी समस्या है। योग, मोक्ष आदि की समस्या का हल इसी समस्या के हल पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न मतों ने इस समस्या का हल जिस प्रकार निकाला है उसी प्रकार उनका नामकरण हुआ है।

(क) जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध

शङ्कर-मत अद्वैत इसलिए कहलाता है कि वह ब्रह्म और आत्मा की अनन्यता और उनकी भिन्नता के व्यावहारिक एवं अनित्यरूप का प्रतिपादन करता है। रामानुज के मत को 'विशिष्टाद्वैतवाद' अभिधा इसलिए मिली है कि उसमें आत्मा और ब्रह्म की मूल अनन्यता के साथ-साथ नित्यविशिष्टता का प्रचार है। मध्व के अनुसार जीव और ईश्वर में मौलिक भिन्नता है। दोनों पक्षों का समर्थन होने के कारण उनका मत 'द्वैतवाद' कहा जाता है।

(ख) सृष्टि या जगत्

इसके सम्बन्ध में द्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद, दोनों सहमत हैं कि जगत् ब्रह्म का परिणाम है, किन्तु अद्वैतवाद विवर्तवाद का समर्थक है।

(ग) मोक्ष

उपनिषदों के अनुसार मोक्ष की तीन श्रेणियाँ हैं सालोक्य, साष्टित्व और सायुज्य।[1] निर्वाण इसके बाद की दशा है। इसमें आत्मा और ब्रह्म की अनन्यता सिद्ध होती है।[2] मध्व का द्वैतवाद केवल सालोक्य एवं सायुज्य का ही स्वीकार करता है। सारूप्य उसे मान्य नहीं है। विशिष्टाद्वैतमत कुछ और आगे बढ़ा हुआ है। उसने सरूपता को भी मुक्ति की श्रेणियों में सम्मिलित कर लिया है।[3]

अद्वैतमत में मोक्ष (मुक्ति) के दो भिन्न रूप माने गये हैं क्रममुक्ति और निर्वाण। क्रममुक्ति के अन्तर्गत मुक्ति की उपर्युक्त तीनों श्रेणियाँ सम्मिलित कर ली गयी हैं, किन्तु आध्यात्मिक जीवन का चरम शिखर निर्वाण है। अद्वैतमत का यह सिद्धान्त औपनिषदिक सिद्धान्त के अनुरूप है।[4]

शंकर और रामानुज के मतों में मूल भेद

शंकर के मायावाद में भक्ति की स्थिति अनिश्चित थी, परन्तु रामानुज ने उसके लिए ठोस भूमि का निर्माण किया। रामानुज और शंकर के मतों में बहुत अन्तर है। रामानुज जीव और ईश्वर का अभेद स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार जीव दुःखत्रय से पीड़ित है, फिर ब्रह्म के साथ उसका अभेद कैसे माना जा सकता है? जीव तो ब्रह्म का अंश मात्र

---

१. छा० उप० २.२०.२ २. मुं० उप० ३.२.८

३. एस०सी० सेन दी मिस्टिक फिलासफी आफ दी उपनिषद्स, पृ० ७६

४. वही, पृ० ७६

है, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार स्फुलिंग अग्नि का। "अतः जीव-ब्रह्म में 'अ शाशीभाव' या 'विशेषणविशेष्यभाव' सम्बन्ध है। रामानुज के मत में भक्ति मोक्ष-साधन है ज्ञान नहीं। यहाँ शकर-मत के विपरीत जगत् की सत्ता को भी स्वीकार किया गया है। चित् (जीव), अचित् (जडजगत्) तथा पुरुषोत्तम, ये तीनों ही सत्य हैं। जीव और जगत् ईश्वर का शरीर हैं और वह उस शरीर की आत्मा है। इस प्रकार जीव और जगत् ईश्वर के विशेषण हैं।[1]

यो तो अधिकाश भारतीय साहित्य पर वेदान्त का प्रभाव है, किन्तु सस्कृत साहित्य तो उसका बहुत ही ऋणी है। इसका प्रमुख कारण भारतीय विचार-धारा पर उपनिषदो का प्रभाव ही हो सकता है। इधर शकराचार्य ने अपनी प्रतिभा के प्रकाश से वेदान्त को और भी अधिक चमका दिया। शकर के सिद्धान्तो ने अपने परवर्ती साहित्य को कितना प्रभावित किया, यह कहने ी बात नहीं है। शकर का सबसे अधिक प्रभाव नाथों और सतो पर पडा निकी विचार धारा हिन्दी साहित्य मे अब तक बही चली आरही है। आधु- क हिन्दी-महाकाव्यो की रगो मे भी वेदान्त का प्रभाव दौड रहा है। प्रिय- प्रवास, जयभारत, कृष्णायन, साकेत, साकेत-सत, कामायनी, पार्वती आदि अनेक महाकाव्य वेदान्त की गरिमा के गीत गा रहे हैं। लोकायतन ने भी वेदान्त की महिमा को उद्घाटित किया है। यह दूसरी बात है कि यदि कृष्णायन के गीताकाड म निष्काम भक्ति का उद्घोष है तो जयभारत मे निष्काम कर्म का, और यदि प्रियप्रवास मे द्वैत है तो साकेत मे विशिष्टाद्वैत। भक्ति का जो परिपार्श्व इनमे प्रस्तुत किया गया है वह वेदान्त की रश्मियो से द्योतित है।

स्मृति साहित्य

इस साहित्य का सम्बन्ध जीवन की नैतिक भूमिकाओ से है जिनमे प्रथाओ का भी सनिवेश है। इस साहित्य मे उन रचनाओं का विनिवेश है जिनको महापुरुषो ने श्रुति-शिक्षा के स्पष्टीकरण के लिए रचा था। स्मृति-ग्रन्थों में मनुष्य के लौकिक और आध्यात्मिक कल्याण से सम्बन्धित अनेक विषय हैं। यद्यपि स्मृतियाँ श्रुति-शिक्षा का प्रकाशन करती हैं, फिर भी उनका स्थान श्रुतियों से नीचा है, क्योंकि उनके लिए श्रुतियाँ प्रमाण हैं। भारतीयो के वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करने मे उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है।[2]

---

1. भारतीय दर्शन, (ब० उपा०) पृ० ४७१
2. देखिये, हि० सा० पर सं० सा० का प्रभाव, डा० एस०एस० शर्मा, पृ० १३

सामान्यतया धर्म-सूत्रो की शिक्षाएँ भी स्मृति-शिक्षाओ के अनुरूप थीं, परन्तु स्मृतियाँ छन्दोवद्ध और, विषय-क्षेत्र की दृष्टि से, अधिक विकसित और सम्पन्न हैं। अठारह स्मृतियो मे से अधिक प्राचीन और मान्य मनुस्मृति या मानवधर्मशास्त्र है। यह कृति इतनी लोकप्रिय एव सम्मानित है कि धर्म और आचरण के सम्बन्ध मे हिन्दू-जनता प्राय इसी को उद्धृत करती है।

प्रभाव की दृष्टि से दूसरा स्थान याज्ञवल्क्य स्मृति का है। इनके अतिरिक्त 'नारद स्मृति', 'पाराशर स्मृति' आदि अनेक स्मृति-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, किन्तु इन सबका प्रमुख आधार अधिकाशत मानव धर्मशास्त्र है।

स्मृतियो पर अनेक व्याख्याएँ और टीकाएँ भी लिखी गयी हैं। उनमे से मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति की टीकाएँ बड़े महत्त्व की हैं। आचरण शास्त्र की तीसरी सीढी धर्म-निवधो की है। उनमे विशेष उल्लेखनीय 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि', धमरत्न' और 'दायभाग' हैं।[1]

जिन आधुनिक महाकाव्यों पर वर्णाश्रमधर्म की आस्थाओ और आचरणिक मान्यताओ का प्रभाव हो सकता है उनमे साकेत, साकेतसत, कृष्णायन, पार्वती, जयभारत आदि प्रमुख हैं। इनमे से नैतिक भूमिका की सबसे प्रौढ धरा कृष्णायन और जयभारत मे दिखायी देती है।

पौराणिक साहित्य

सामान्यतया पुराणो की सख्या अठारह[2] मानी गयी है, किन्तु इतने ही उपपुराण माने गये हैं। इस प्रकार सस्कृत मे लिखे हुए इन पुराणों की कुल सख्या ३६ है। पुराण का अर्थ इतिहास है। 'प्राचीन आख्यान' का प्रयोग भी इसी अर्थ मे होता है। पुराण स्वभावत: शिक्षा मूलक और उद्देश्यत: साम्प्रदायिक हैं। इनमें प्राचीन कथाएँ हैं, जिनका उद्देश्य ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपासना की प्रशसा है। इनके अनेक प्रकरण एक से हैं।

---

१ देखिये, इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, II, पृ० २६२

२. ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, लिंग पुराण, गरुड पुराण, नारद पुराण, भागवत पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, स्कन्द पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामन पुराण, वराह पुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण।

कुछ विद्वान् महाभारत की गणना भी पुराणों में ही करते हैं और हरिवंश पुराण को इसका परिशिष्ट मानते हैं। महाभारत के लगभग पाचवें भाग में आधिकारिक कथा और शेष में प्रासंगिक कथाएँ हैं जिनमें मुख्य शाकुन्तलोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, रामकथा, ऋष्यशृंगकथा, उशीनरोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान तथा नलोपाख्यान हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत बहुत प्राचीन एवं मान्य रचना है। कुछ विपश्चित तो किसी अंश तक उसे अन्य पुराणों का कारण भी मानते हैं।

भारतीय साहित्य को महाभारत की देन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रचुर संस्कृत-साहित्य के निर्माण में महाभारत का योग रहा है। अभिज्ञान शाकुन्तल, नैषधीयचरितम्, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवध आदि साहित्यिक रचनाओं के निर्माण को महाभारत से ही प्रेरणा मिली है। अतएव हिन्दी साहित्य पर महाभारत का प्रभाव प्रत्यक्ष (direct) एवं अप्रत्यक्ष (indirect) दोनों प्रकार का है। "जयभारत" तो एकदम महाभारत की प्राण-परम्परा से ही जीवित है। 'कृष्णायन' पर भी महाभारत का प्रभाव है। 'नलनरेश' पर नैषधीयचरितम् का सीधा प्रभाव होते हुए भी महाभारत का प्रभाव अविस्मरणीय है। 'एकलव्य', 'उर्वशी' आदि रचनाओं की प्राण प्रतिष्ठा में भी महाभारत का योग अविस्मरणीय है। जिस गीता के दार्शनिक सिद्धान्त हिन्दी-महाकाव्यों पर छाये हुए हैं, वह महाभारत का ही अंग है। 'कृष्णायन' के गीताकाण्ड से गीता के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। निष्काम कर्म एवं निष्काम भक्ति की प्रतिष्ठा में गीता का स्थान अद्वितीय है।

इतर पुराणों ने भी हिन्दी-साहित्य को अपना अनुदान दिया है। आधुनिक महाकाव्यों के सम्बन्ध से विशेष रूप से उल्लेखनीय पुराण हैं भागवत-पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, शिवपुराण तथा अग्निपुराण। यों तो थोड़ा-बहुत और पुराणों का ऋण भी आधुनिक महाकाव्यों पर मिल सकता है, किन्तु सबसे अधिक प्रभाव भागवत पुराण का है। कृष्ण-काव्य को प्रभावित करने में यह पुराण बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। 'प्रियप्रवास' का [illegible] धरण बिलकुल नव्य होता हुआ भी कथा-सार ([illegible]) भागवत से लिये गये हैं। 'कृष्णायन' का अधिकांश [illegible] के आधार पर निर्मित हुआ है। 'दैत्यवंश' में भी [illegible]। इसी प्रकार 'शिवपुराण' का योग भी प्रकट है। [illegible]

एवं वर्णन-प्रणाली में कुमारसंभव के साथ-साथ शिवपुराण ने भी अपना योग दिया है। कृष्ण और राधा के प्रसंग को रूपायित करने में ब्रह्मवैवर्तपुराण एवं गर्गसंहिता को विशेष श्रेय प्रदान किया जाता है।

तन्त्र साहित्य

पुराणों से बहुत कुछ मिलता-जुलता साम्प्रदायिक ग्रन्थों का एक और वर्ग, जो मन्त्रमन्त्रादिसमन्वित एक विशिष्ट साधन-मार्ग का उपदेश देता है,[1] तन्त्र नाम से प्रसिद्ध है। 'तन्त्रों' को 'आगम' भी कहते हैं। "आगम वह शास्त्र है जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं। यह व्युत्पत्ति आगम और निगम के भेद को बतला रही है। कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को निगम (वेद) बतलाता है तथा इनके साधनभूत उपायों को आगम सिखलाता है।"[2]

'तन्त्रों के तीन भेद हैं ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र और जैनतन्त्र। उपास्य-देवता की भिन्नता के कारण ब्राह्मणतन्त्र भी तीन प्रकार के हैं—वैष्णवागम, शैवागम तथा शाक्तागम, जिनमें क्रमश विष्णु, शिव तथा शक्ति की परादेवता-रूप से उपासना विहित है।'[3]

"तान्त्रिक आचार एक नितान्त रहस्यपूर्ण व्यापार है। दीक्षा ग्रहण करने के समय शिष्य को गुरु-द्वारा इनका रहस्य समझाया जाता है। वैदिकी तथा तान्त्रिकी पूजा में अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक पूजा-पद्धति सर्वसाधारण के उपयोग के लिये है, वहाँ तान्त्रिकी पूजा केवल चुने हुए कतिपय अधिकारी व्यक्तियों के लिये ही है, अत वह सर्वथा गोप्य रखी जाती है।"[4]

हिन्दी भक्तिकाव्य पर तन्त्रों का व्यापक प्रभाव है। वल्लभसम्प्रदाय में कृष्ण की शक्ति के रूप में राधा की मान्यता का कारण वैष्णव-तन्त्रों का प्रभाव है। यदि कृष्णायन की राधा अथवा प्रियप्रवास की राधा को 'सूरसागर' या 'गीतगोविन्द' से भी सम्बद्ध करदें तो भी 'पंचरात्र' से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। 'गर्गसंहिता' को भी विद्वानों ने तन्त्रों में सम्मिलित किया है। राधा के स्वरूप का विस्तृत निरूपण गर्गसंहिता के श्रीकृष्णजन्मखण्ड की विशेषता है। 'कामायनी' भी शैवतन्त्र के प्रभाव से मुक्त नहीं है। 'कामकला' में जिस शक्ति की कल्पना की गयी है वह शैवागमों के प्रभाव से ही है।

---

१. भारतीय दर्शन, पृ० ५११ २ भा० द०, पृ० ५११
३. वही, पृ० ५२३ ४. वही, पृ० ५१४

महाकाव्य

संस्कृत महाकाव्य का इतिहास वाल्मीकि रामायण से प्रारम्भ होता है। यह ग्रन्थ 'रामकथा' से सम्बन्धित आदि कृति है। रूढ़ मान्यता तो यह भी है कि 'वाल्मीकि' आदि-कवि और 'रामायण' आदि-काव्य है। महाभारत की भाँति रामायण ने भी अनेक संस्कृत-काव्यों और नाटकों को जन्म दिया है, किन्तु संस्कृत के कुछ महाकाव्यों की रचना इतर स्रोतों से भी हुई है। अतः आधार के विचार से संस्कृत-महाकाव्यों के चार वर्ग दीखते हैं : महाभारतवर्ग, रामायणवर्ग, मिश्रवर्ग और अवैदिकवर्ग। मिश्रवर्ग का क्षेत्र बहुत सीमित रहा है। इस वर्ग के ग्रन्थों में 'राघवपाण्डवीय', 'राघवनैषधीय' प्रमुख हैं। अवैदिक वर्ग के प्रख्यात ग्रन्थ 'बुद्धचरित' 'सौन्दरानन्द' और 'यशोधराचरित' हैं, परन्तु कतिपय कारणों से शास्त्रीय कसौटी पर ये ग्रन्थ महाकाव्य नहीं उतर पाते। महाभारत वर्ग के प्रमुख महाकाव्यों में 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध', 'नैषधचरित' और 'नलोदय' उल्लेखनीय हैं। 'रघुवंशमहाकाव्य' और 'रावणवध' की ख्याति रामायणवर्ग में अधिक है। अन्य पुराणों पर आश्रित संस्कृत महाकाव्यों की संख्या बिलकुल नहीं के बराबर है। 'कुमारसम्भव', जिसकी प्रेरणा कालिदास को शिवपुराण से मिली, अपने ढंग का अद्वितीय उदाहरण है।

'साकेत', 'साकेतसंत', वैदेहीवनवास, 'रावण', 'उर्मिला' आदि महाकाव्यों का मूल स्रोत रामायण है, किन्तु परवर्ती राम-साहित्य जैसे 'रावणवध' आदि का प्रभाव भी उपेक्षणीय नहीं है। 'पार्वती' महाकाव्य पर 'शिवपुराण' और 'कुमारसम्भव' का प्रभाव है। 'सिद्धार्थ' पर 'बुद्धचरित' का प्रभाव ही प्रमुखता से मिलता है। कहीं-कहीं 'सौन्दरानन्द' एवं 'यशोधराचरित' की छाया भी मिल जाती है। 'नल-नरेश' एवं 'दमयन्ती' पर 'नैषधचरित' का प्रभाव है, कहीं-कहीं, किन्तु नगण्य, 'नलोदय' की छाया भी मिलती है।

खण्डकाव्य

संस्कृत साहित्य में अनेक खण्ड-काव्यों की रचना भी हुई है, किन्तु आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों पर उनका नगण्य प्रभाव है। फिर भी 'मेघदूत' जैसी कुछ कृतियों का यत्र-तत्र प्रभाव दिखायी देता है। 'प्रियप्रवास' में उस स्थल पर जहाँ राधा पवन को दूती बना कर कृष्ण के पास भेजती है मेघदूत की शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है।

एव वर्णन-प्रणाली मे कुमारसंभव के साथ-साथ शिवपुराण ने भी अपना योग दिया है। कृष्ण और राधा के प्रसंग को रूपायित करने मे ब्रह्मवैवर्तपुराण एव गर्गसहिता को विशेष श्रेय प्रदान किया जाता है।

पुराणो से बहुत कुछ मिलता-जुलता साम्प्रदायिक ग्रन्थो का एक और वर्ग, जो यन्त्रमन्त्रादिसमन्वित एक विशिष्ट साधन-मार्ग का उपदेश देता है,[1] तन्त्र नाम से प्रसिद्ध है।

तन्त्र साहित्य

'तन्त्रो' को 'आगम' भी कहते हैं। "आगम वह शास्त्र है जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि मे आते हैं। यह व्युत्पत्ति आगम और निगम के भेद को बतला रही है। कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को निगम (वेद) बतलाता है तथा इनके साधनभूत उपायो को आगम सिखलाता है।"[2]

'तन्त्रों के तीन भेद हैं : ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र और जैनतन्त्र। उपास्य-देवता की भिन्नता के कारण ब्राह्मणतन्त्र भी तीन प्रकार के हैं—वैष्णवागम, शैवागम तथा शाक्तागम, जिनमे क्रमश विष्णु, शिव तथा शक्ति की परादेवता-रूप से उपासना विहित है।"[3]

"तान्त्रिक आचार एक नितान्त रहस्यपूर्ण व्यापार है। दीक्षा-ग्रहण करने के समय शिष्य को गुरु-द्वारा इसका रहस्य समझाया जाता है। वैदिकी तथा तान्त्रिकी पूजा मे अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक पूजा-पद्धति सर्वसाधारण के उपयोग के लिये है, वहाँ तान्त्रिकी पूजा केवल चुने हुए कतिपय अधिकारी व्यक्तियों के लिये ही है, अत वह सर्वथा गोप्य रखी जाती है।"[4]

हिन्दी भक्तिकाव्य पर तन्त्रो का व्यापक प्रभाव है। वल्लभसम्प्रदाय मे कृष्ण की शक्ति के रूप मे राधा की मान्यता का कारण वैष्णव-तन्त्रो का प्रभाव है। यदि कृष्णायन की राधा अथवा प्रियप्रवास की राधा को 'सूरसागर' या 'गीतगोविन्द' से भी सम्बद्ध करें तो भी 'पचरात्र' से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न नही किया जा सकता। 'गर्गसहिता' को भी विद्वानो ने तन्त्रों में सम्मिलित किया है। राधा के स्वरूप का विस्तृत निरूपण गर्गसहिता के *श्रीकृष्णजन्मखण्ड की विशेषता है। 'कामायनी' भी शैवतन्त्र के प्रभाव से मुक्त* नही है। 'कामकला' मे जिस शक्ति की कल्पना की गयी है वह शैवागमो के प्रभाव से ही है।

---

१. भारतीय दर्शन, पृ० ५११ | २. भा० द०, पृ० ५११
३. वही, पृ० ५२३ | ४. वही, पृ० ५१४

महाकाव्य

सस्कृत महाकाव्य का इतिहास वाल्मीकि रामायण से प्रारम्भ होता है। यह ग्रन्थ 'रामकथा' से सम्बन्धित आदि कृति है। रूढ मान्यता तो यह भी है कि 'वाल्मीकि' आदि-कवि और 'रामायण' आदि-काव्य है। महाभारत की भाँति रामायण ने भी अनेक सस्कृत-काव्यो और नाटको को जन्म दिया है, किन्तु सस्कृत के कुछ महाकाव्यो की रचना इतर स्रोतो से भी हुई है। अतः आधार के विचार से सस्कृत-महाकाव्यो के चार वर्ग दीखते है : महाभारतवर्ग, रामायणवर्ग, मिश्रवर्ग और अवैदिकवर्ग। मिश्रवर्ग का क्षेत्र बहुत सीमित रहा है। इस वर्ग के ग्रन्थो मे 'राघवपाडवीय', 'राघवनैषधीय' प्रमुख हैं। अवैदिक वर्ग के प्रख्यात ग्रन्थ 'बुद्धचरित' 'सौन्दरानन्द' और 'यशोधराचरित' हैं, परन्तु कतिपय कारणो से शास्त्रीय कसौटी पर ये ग्रन्थ महाकाव्य नही उतर पाते। महाभारत वर्ग के प्रमुख महाकाव्यो मे 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध', 'नैपधचरित' और 'नलोदय' उल्लेखनीय हैं। 'रघुवशमहाकाव्य' और 'रावणवध' की ख्याति रामायणवर्ग मे अधिक है। अन्य पुराणो पर आश्रित सस्कृत महाकाव्यो की सख्या बिलकुल नही के बराबर है। 'कुमार-सम्भव', जिसकी प्रेरणा कालिदास को शिवपुराण से मिली, अपने ढग का अद्वितीय उदाहरण है।

'साकेत', 'साकेतसत', वैदेहीवनवास, 'रावण', 'ऊर्मिला' आदि महाकाव्यो का मूल स्रोत रामायण है, किन्तु परवर्ती राम-साहित्य जैसे 'रावणवध' आदि का प्रभाव भी उपेक्षणीय नही है। 'पार्वती' महाकाव्य पर 'शिवपुराण' और 'कुमारसभव' का प्रभाव है। 'सिद्धार्थ' पर 'बुद्धचरित' का प्रभाव ही प्रमुखता से मिलता है। कही-कहीं 'सौन्दरानन्द' एव 'यशोधराचरित' की छाया भी मिल जाती है। 'नल-नरेश' एव 'दमयन्ती' पर 'नैषधचरित' का प्रभाव है, कहीं-कही, किन्तु नगण्य, 'नलोदय' की छाया भी मिलती है।

खण्डकाव्य

सस्कृत साहित्य मे अनेक खण्ड-काव्यों की रचना भी हुई है, किन्तु आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यो पर उनका नगण्य प्रभाव है। फिर भी 'मेघदूत' जैसी कुछ कृतियो का यत्र-तत्र प्रभाव दिखायी देता है। 'प्रियप्रवास' में उस स्थल पर जहाँ राधा पवन को दूती बना कर कृष्ण के पास भेजती है मेघदूत की शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है।

मुक्तक काव्य

संस्कृत के मुक्तक काव्य को प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : धार्मिक मुक्तक, शृंगारिक मुक्तक तथा नीति एवं शिक्षामूलक मुक्तक। धार्मिक मुक्तकों के भी दो भेद हैं : भक्ति-मुक्तक एवं वैराग्य-मुक्तक। स्तुतिकुसुमांजलि, चण्डीशतक, सूर्यशतक, मुकुन्दमाला, सरस्वतीस्तोत्र, स्तोत्रावलि, शिवापराध, पद्मस्तोत्र, मंगलाष्टक, देवीशतक, महिम्नः स्तव, पंचस्तवी, आनन्दलहरी आदि रचनाएँ भक्ति-मुक्तक हैं। इन रचनाओं में किसी परिस्थिति, भाव-सौन्दर्य अथवा पवित्रता को किसी देव विशेष से संबद्ध किया गया है। वैराग्यपरक मुक्तकों में *भय, निराशा, जुगुप्सा* आदि भावों को प्रमुखता देकर काल की भयंकरता, संसार की असारता, शरीर की भंगुरता और लोक की स्वार्थपरता को चित्रित किया गया है। संस्कृत-साहित्य में वैराग्यशतक-जैसी स्वतन्त्र रचनाओं की विरलता दृष्टिगोचर होती है, किन्तु इस अभाव की पूर्ति पुराणों ने करदी है। 'योगवासिष्ठ'—जैसे धर्म-ग्रन्थों में भी वैराग्य-निरूपण ने परम्परागत सम्मान प्राप्त किया है।

इस वर्ग की काव्य-रचनाओं का प्रभाव आधुनिक हिन्दी-काव्य पर उतना तो नहीं है जितना मध्यकालीन काव्य-कृतियों पर है, फिर भी वैराग्यशतक, नारदभक्तिसूत्र एवं शाण्डिल्यसूत्र—जैसी कुछ रचनाओं का विकीर्ण प्रभाव आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों पर भी दिखायी देता है।

संस्कृत-मुक्तक-काव्य का दूसरा वर्ग शृंगारपरक है। इसका विषय प्रेम और सौन्दर्य है। इसमें कवि का लक्ष्य उच्च कला का प्रदर्शन रहता है। इस वर्ग की रचनाओं का प्रधान सौन्दर्य भाव या परिस्थिति के चित्रण में सन्निहित ध्वनि-उन्मेष में निहित रहता है। शृंगारतिलक, शृंगारशतक, *अमरुकशतक, गीतगोविन्द, चौरपंचाशिका, ऋतुसंहार, घटकर्पर, आर्यासप्तशती* आदि मुक्तक रचनाएँ इसी वर्ग की निधि हैं। आधुनिक महाकाव्यों में से कुछेक के वर्णनों पर ऋतुसंहार के ऋतुवर्णन की क्षीण छाया दिखायी पड़ती है। *'गीतगोविन्द' का राधाकृष्ण प्रेम-प्रसंग या तो भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में* होकर अथवा स्वतन्त्र रूप से 'कृष्णायन' और 'प्रियप्रवास' में उतर आया है, किन्तु बड़े क्षीण और छिन्न-विच्छिन्न रूप में।

तीसरे वर्ग में नीति एवं शिक्षामूलक मुक्तक हैं। नीतिशतक, हितोपदेश पंचतन्त्र, चारुचर्याशतक, नीतिमंजरी, मुग्धोपदेश, उपदेशशतक, नीतिरत्न, नीतिसार, नीति-प्रदीप, नीतिमंजरी, सुभाषित रत्न-संदोह, राजनीतिसमुच्चय, शुक्रनीति, चाणक्यनीति, राजेन्द्रकर्णपूर, चाणक्यराजनीति आदि रचनाएँ इसी

धर्म की हैं। इनमे से कुछ रचनाएँ राजनीति से सम्बन्धित हैं और कुछ सामान्य नीति से। सामान्यनीति की कुछ रचनाओ में राजनीति के और राजनीति की कुछ रचनाओ मे सामान्य नीति के प्रकरण भी मिलते हैं।

यहाँ यह कहना बहुत कठिन है कि आलोच्य महाकाव्यो मे सनिहित राजनीति और सामान्य नीति से सम्बन्धित उक्तियों पर अमुक ग्रन्थ का प्रभाव है। फिर भी 'कृष्णायन', 'वर्द्धमान', 'साकेतसत', 'महामानव', 'लोकायतन' आदि काव्यों मे सनिविष्ट नीत्युक्तियाँ सस्कृत-नीति-काव्य से प्रभावित दिखायी देती हैं। तुलनात्मक विवेचन से इस बात का पता चल जाता है। इनमे से पचतन्त्र, हितोपदेश, शुक्रनीति, नीतिशतक, चाणक्यनीति और मनुस्मृति का विशेष प्रभाव है।

कथा-साहित्य

सस्कृत साहित्य की कथाओ के दो स्थूल रूप देखने मे आते हैं। एक तो छोटी कथाएँ और दूसरी बडी कथाएँ। छोटी कथाएँ तीन शैलियों में मिलती हैं : 'गद्य', 'पद्य', और 'गद्य-पद्य' मे। वैतालपचविंशति, सिंहासनद्वात्रिंशिका तथा शुकसप्तति गद्य-कथाएँ हैं, तथा कथासरित्सागर और बृहत्कथामजरी पद्य-कथाएँ हैं। गद्य-पद्य-कथाएँ 'चम्पू' भी कहलाती हैं। हितोपदेश और पचतन्त्र इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

बडी कथाएँ गद्य मे लिखी हुई मिलती हैं। इनमे कथाँश गौण और वर्णनांश प्रधान है। शैली अलकारमयी एव सामासिक है। इनमें प्रमुख ग्रन्थ दशकुमारचरित, वासवदत्ता और कादम्बरी हैं।

आलोच्य महाकाव्यों में आये हुए कुछ वर्णनो जैसे—सरोवर, संध्या, वन, आश्रम, गोधूलि आदि पर कहीं-कहीं कादम्बरी का प्रभाव दिखायी देता है।

नाटक

सस्कृत का नाट्य-साहित्य बहुत सम्पन्न है। सस्कृत-नाटकों में कथोपकथन गद्य मे और किसी दृश्य और व्यक्ति का वर्णन पद्य मे मिलता है। अनेक स्थलो पर घटनाओ से ध्वनित चितन भी पद्य मे मिलता है। पात्रों की भाषा उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार होती है। इनकी विशेषता इनकी सुखान्तता है। इनकी रोचकता में विदूषक का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। रगमच पर किसी अश्लील आचरण, भोजन, निद्रा, युद्ध, मृत्यु आदि का अभिनय नही होता। कथानक प्राय इतिहास या पुराण से लिया जाता है। नायक धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् और प्रख्यातवश होता है। शृंगार और

वीर मे से कोई एक प्रधान रस होता है। नाटक का आरम्भ नान्दीपाठ से होता है। सस्कृत के कुछ प्रसिद्ध नाटक ये हैं—अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक, नागानन्द, उत्तररामचरित, महावीरचरितम्, मुद्राराक्षस, वेणीसंहार, रत्नावली, विद्धशालभजिका, बालरामायण, बालमहाभारत, चण्डकौशिक, हनुमन्नाटक, प्रबोधचन्द्रोदय, प्रसन्नराघव, तथा स्वप्नवासवदत्ता।

आलोच्य हिन्दी महाकाव्यों को प्रभावित करने वाले नाटको मे उत्तररामचरित का नाम प्रमुख है क्योकि 'वैदेही-वनवास' का अधिकाश ढाँचा इसी के आधार पर निर्मित हुआ है। रामकथा से सम्बन्धित काव्यो को प्रभावित करने मे महावीरचरित, हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव के नाम भी उल्लेखनीय हैं। 'उर्मिला', 'रावणमहाकाव्य', 'साकेत' आदि पर इनके बिखरे छीटे मिलते है।

काव्यशास्त्र

भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन प्रतीत होता है, किन्तु उसका प्रामाणिक स्वरूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में ही सामने आता है। इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय नाट्यशास्त्र होते हुए भी यह काव्यशास्त्र का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है। नाटकीय नियमो के अतिरिक्त इसमे काव्य और सगीत की भी पर्याप्त विवेचना है। काव्य-शास्त्र की परवर्ती रचनाओ के लिए इसने उद्गम-रूप मे आचरण किया है। अभिनय का आधार रस होने से इसमे रस की समुचित विवेचना है। नाट्यशास्त्र से रस को इतना बल मिला कि भरतमुनि के शताब्दियों बाद तक काव्य और नाट्य ग्रन्थों मे इसका बोलबाला रहा।

विक्रम की सातवी शताब्दी मे सस्कृत-काव्य-शास्त्र का एक नवीन युग प्रारम्भ हुआ जिसमे अलकार को प्राधान्य मिलने लगा। यो तो मूल अलकारों का जन्म भी नाट्य-शास्त्र मे ही हुआ था, परन्तु वहाँ उनका सम्मान रस के समान नही था। अलकार युग मे अलकारो की मान्यता रस से अधिक हो गयी। भामह इस युग के प्रतिनिधि होकर आये। ऐतिहासिक दृष्टि से भामह के 'काव्यालकार' का बडा महत्त्व है। इसके बाद दण्डी के 'काव्यादर्श' का उद्भव हुआ, जिसमे अलकारो के साथ रीति, गुण आदि की भी आवश्यकता स्वीकार की गयी, किन्तु दण्डी के अलकारो का स्वरूप परवर्ती विपश्चितो को मान्य न हुआ।

आठवीं शती के आसपास दण्डी के पश्चात् उद्भट और वामन के सिद्धान्तों का विकास हुआ। उद्भट ने भामह का अनुगमन किया। वामन ने अन्य काव्यांगों की अपेक्षा रीति को विशेष मान प्रदान किया। वामन के मत में रीति को काव्य की आत्मा स्वीकारा गया, परन्तु यह मत बाद के विद्वानों को अमान्य रहा। रुद्रट् अलंकारवादी के रूप में साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए। उन्होंने काव्य के आलंकारिक रूप पर बहुत जोर दिया।

परन्तु नवीं शती का पदार्पण अलंकारवाद के लिए घातक सिद्ध हुआ। इस समय रस, अलंकारवाद और रीतिवाद को पीछे धकेल कर ध्वनिवाद आगे बढ़ गया। इसके प्रवर्तक का नाम अब तक अज्ञात है। आनन्दवर्धन ने इसी अज्ञात लेखक के सूत्रों पर ध्वन्यालोक के नाम से टीका लिखी। अभिनव-गुप्त भी इस मत के समर्थक थे। ध्वनि सिद्धान्त के विकास से अलंकारवाद और रीतिवाद क्षीण हो गये, यहाँ तक कि प्राचीन रसवाद भी इसी में विलीन हो गया।

दसवीं शती में काव्यशास्त्र के क्षेत्र में दो रचनाओं को जन्म मिला: राजशेखरकृत 'काव्यमीमांसा' तथा धनंजयकृत 'दशरूपक'। काव्यमीमांसा में काव्य के सब अंगों की आलोचनात्मक शैली में विवेचना की गयी है। 'दस-रूपक' में नाट्यशास्त्र का निरूपण है।

ग्यारहवीं शती में कुंतक के 'वक्रोक्तिजीवित' ने ध्वनिसिद्धान्त का विरोध किया, किन्तु उसका मत विजयी न हो सका। इसी समय के आसपास मम्मट का 'काव्यप्रकाश' प्रकट हुआ।

बारहवीं शती में अलंकारवाद पुनर्जीवित होने लगा। रुय्यक ने अपने 'अलंकारसर्वस्व' में इसी मतवाद का समर्थन किया। इसी समय के लगभग जयदेव के 'चन्द्रालोक' को जन्म मिला जिसके पाँचवें मयूख में अलंकारों का सविस्तर वर्णन है। यही मयूख १६वीं शती में अप्पय्य दीक्षित के 'कुवलया-नन्द' का आधार बना। काव्य-शास्त्र की अधिक प्रामाणिक रचना विश्वनाथ-कृत 'साहित्यदर्पण' ने १४वीं शती में जन्म लिया। इसमें काव्यांगों की विस्तीर्ण विवेचना है।

यद्यपि नायिका-भेद का निरूपण भरतमुनि, व्यासदेव (अग्निपुराण में) रुद्रट, धनंजय, भोज, विश्वनाथ और रुय्यक ने भी किया है, परन्तु उसके आचार्य भानुदत्त ही माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने 'रसमंजरी' में उसका विस्तार

से वर्णन किया है। पी० वी० काणे के अनुसार भानुदत्त का समय विश्वनाथ से पहले का है।[1]

काव्यशास्त्र के सम्बन्ध मे अमरचन्द्रकृत 'काव्यकल्पलतावृत्ति' और केशवमिश्र कृत 'अलकारशेखर' विशेष उल्लेखनीय हैं। काव्यकल्पलतावृत्ति का समय १३वी शती के आसपास माना गया है।[2]

आलोच्य महाकाव्यो का उक्त काव्यशास्त्रीय रचनाओ से कोई सीधा सम्बन्ध नही है, किन्तु महाकाव्यों के रूप-निर्माण, वर्णन, उपमान-नियोजन, रसविधान आदि पर साहित्यदर्पण का विशेष प्रभाव दिखायी पडता है। दूसरे ग्रन्थों का प्रभाव भी हो सकता है, किन्तु वह इतना अप्रत्यक्ष है कि उसके सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

---

१. देखिये, सा० दर्पण, भूमिका
२. देखिये, काव्यकल्पलतावृत्ति, भूमिका, पृ० १

●●●●

महाकाव्यत्व की परीक्षा

२ | महाकाव्यत्व की परीक्षा

महाकाव्यत्व की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों के सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किये जाते हैं। 'खड़ीबोली के गौरवग्रन्थ' नामक पुस्तक मे श्री 'मानव' ने साकेत, प्रियप्रवास और कामायनी को महाकाव्य की कसौटी पर बहुत खोटा बतलाया है। इसके विपरीत डा० नगेन्द्र, डा० गोविन्दराम आदि ने इनको महाकाव्य की कोटि मे रखा है। ऐसी स्थिति मे 'मुण्डे मुण्डे मतीर्भिन्ना' की कहावत ही चरितार्थ होती दिखायी देती है। विद्वानो के मत-भेद के कारण प्रस्तुत-प्रबन्ध लेखिका के सामने भी निर्णय एक समस्या है। फिर भी लेखिका यह समझती है कि विधाता की सृष्टि मे सर्वगुणसम्पन्न यदि कोई है तो वह उसका कर्ता ही है, अन्यथा यह समग्र विश्व गुण-दोषमय है।[१] इसलिये कुछ अभावों के कारण हम किसी वस्तु, या व्यक्ति के गुणमय अस्तित्व को नही नकार सकते। हां, आलोच्य महाकाव्यों मे कुछ कृतियां ऐसी भी हैं, जिनकी पद-प्रतिष्ठा आग्रहमान है, उनमे महाकाव्य की योग्यता नही है। इस दृष्टि से लेखिका ने आलोच्य महाकाव्यों को तीन कोटियों मे विभाजित किया है: (क) प्रमुख महाकाव्य, (ख) सामान्य महाकाव्य, तथा (ग) तथाकथित महाकाव्य। आगे इनके नाम दिये जा रहे हैं :—

(क) प्रमुख महाकाव्य

नाम	रचना-काल (सन्)
१. प्रियप्रवास	१९१४
२. साकेत	१९१६
३. नलनरेश	१९३३
४. कामायनी	१९३५
५. वैदेही-वनवास	१९३६
६. कृष्णायन	१९४३

१. देखिये, तुलसीदास : रा० च० मा०—बा० कां०, दो. १२

७. साकेत-सन्त	१९४६
८. रामकथाकल्पलता	१९४८
९. दमयन्ती	१९५७

(ख) सामान्य महाकाव्य

१. नूरजहाँ	१९३५
२. सिद्धार्थ	१९३७
३. दैत्यवंश	१९४७
४. अंगराज	१९५०
५. वर्द्धमान	१९५१
६. रावण	१९५२
७. जयभारत	१९५२
८. पार्वती	१९५५
९. रश्मिरथी	१९५७
१०. मीरा	१९५७
११. एकलव्य	१९५८
१२. उर्मिला	१९५८
१३. तारकवध	१९५८
१४. सेनापति कर्ण	१९५८

(ग) तथाकथित महाकाव्य

१. रामचरितचिन्तामणि	१९२०
२. श्री रामचन्द्रोदय	१९३७
३. हल्दीघाटी	१९३९
४. श्रीकृष्णचरितमानस	१९४१
५. कुरुक्षेत्र	१९४३
३. आर्यावर्त	१९४३
७. जौहर	१९४५
८. महामानव	१९४६
९. विक्रमादित्य	१९४७
१०. जननायक	१९४९
११. जगदालोक	१९५२
१२. देवार्चन	१९५२

१३. झाँसी की रानी १९५५
१४ हनुमच्चरित १९५५
१५. प्रताप महाकाव्य १९५७
१६. युगस्रष्टा प्रेमचन्द १९५९
१७. श्री सदाशिवचरितामृत १९६१
१८. वाणाम्बरी १९६०
१९. लोकायतन १९६०

(क) प्रमुख महाकाव्य

प्रियप्रवास खड़ी बोली का सर्वप्रथम महाकाव्य घोषित किया गया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को शैलीगत प्रेरणा दो दिशाओं से मिली थी—महावीर प्रसाद द्विवेदी से और माइकेल मधुसूदनदत्तकृत मेघनादवध से। द्विवेदीजी खड़ी बोली मे रचनाएँ करने के लिए अपने युग के कवियो को बड़ी उदग्र प्रेरणा दे रहे थे। इधर मेघनादवध की संस्कृत-गर्भित बँगला भाषा ने भी जो अभित्राक्षर छंदों मे व्यवस्थित की गयी थी, हरिऔध जी को प्रभावित किया था। संस्कृतगर्भित खड़ीबोली और संस्कृत के भिन्नतुकान्त छंदों में प्रियप्रवास की रचना प्रेरणास्रोतो को बड़ी स्पष्टता से हमारे सामने ला देती है।

१. प्रियप्रवास

प्रियप्रवास का आविर्भाव भागवतपुराण की छाया मे होता हुआ भी आधुनिकता के उन्मेष से सुशोभित है। कृष्ण का सेवा-भाव राधा की सहिष्णुता एवं त्याग-भावना इस उन्मेष के प्रमुख पक्ष हैं। देश-सेवा और जाति हित के साथ स्वार्थ-विसर्जन का विराट् आदर्श महाकाव्य-भवन की प्रमुख सीढ़ी है।

महाकाव्य के परम्परागत लक्षणों के अनुसार प्रियप्रवास की रचना सर्गबद्ध काव्य के रूप में हुई है। इतिहास-प्रसिद्ध यदुवंशीय कृष्ण जो धीरोदात्त नायक के गुणों से विभूषित हैं, इसके नायक हैं।[१] इसमें प्रधान रस विप्रलम्भ-शृंगार है। करुण, वीर, शान्त, वात्सल्य आदि इसके सहायक गौण रस हैं। श्रीमद्भागवतपुराण पर आधृत कथानक लोक-प्रसिद्ध कृष्ण-चरित्र से सम्बन्धित है। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मे से धर्म की प्राप्ति ही इस महाकाव्य का अन्तिम लक्ष्य है।[२]

---

१. देखिये, साहित्यदर्पण, ६.३१५–६
२. वही, ६,३१८

कथानक बहुत छोटा है। इस कारण महाकाव्योचित पाँच नाटकीय सधियो का समावेश नही हो पाया है। घटना-विस्तार के अभाव से कार्य-व्यापारसबन्धी सधियो की योजना नही हो पायी है।

इसका आरम्भ वस्तु-निर्देशात्मक है जो महाकाव्य की परम्परा के अनुरूप है।[1] आरम्भ इस प्रकार होता है :—

> दिवस का अवसान समीप था।
> गगन था कुछ लोहित हो चला॥
> तरु-शिखा पर थी अब राजती।
> कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥[2]

आठ से अधिक सर्गों में प्रियप्रवास का वस्तु-विभाजन भी इसके महाकाव्यत्व की प्रस्थापना करता है। छन्द-प्रयोग की दृष्टि से प्रियप्रवास में शास्त्रीय नियम का कठोर अनुपालन नही हुआ। प्रथम सर्ग मे केवल द्रुतविलम्बित, द्वितीय मे द्रुतविलम्बित के बीच मे मालिनी और अंत मे शार्दूलविक्रीडित तथा चतुर्थ सर्ग से सत्रहवें सर्ग तक विविध छन्दो का प्रयोग नियमानुपालन मे उपेक्षा-भाव की सूचना देता है।

प्रियप्रवास अनेक वर्णनो (यथा संध्या, रात्रि, सूर्योदय, संयोग, वियोग, नगर, नदी, वन, पर्वत आदि) से सजा हुआ है जिनसे परम्परा की रक्षा हुई प्रतीत होती है। नाम-करण भी प्रतिपाद्य विषय के आधार पर हुआ है। व्रजप्रिय कृष्ण के प्रवास की प्रतिपाद्यता से 'प्रियप्रवास' अभिधा सार्थक है।

उक्त आवश्यताओ के अतिरिक्त महाकाव्य की कुछ और विशेषताएँ भी होती हैं और वे हैं : विषय की व्यापकता, विविध घटनाओ के साथ कथानक-अन्विति तथा जीवनविषयक गहनतम अनुभूतियो एवं उच्च आदर्शों की उद्भावना। प्रियप्रवास का विषय बहुत सकुचित होने से पहली विशेषता बाधित हो गयी है। इस कारण प्रियप्रवास मे मानव-जीवन का सर्वागीण चित्र भी प्रस्तुत नही हो सका है। इतर विशेषताओं का यथोचित विनिवेश है।

इस प्रकार प्रियप्रवास मे महाकाव्य के प्राय: सभी उपकरण विद्यमान हैं, किन्तु उनका बहुत सफल संयोजन न होने से शैली की वह मनोरमता एवं

---

१. आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा, साहित्यदर्पण—६.३१६
२. प्रिय प्रवास—१.१

रस की वह आस्वाद्यता नहीं है जो एक सफल महाकाव्य में होनी चाहिये। फिर भी कवि कालीन सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 'प्रियप्रवास' के महाकाव्यत्व के सम्बन्ध में कुछ उदारता बरतनी ही होगी। खड़ीबोली के महाकाव्य के रूप में हम उसके अग्रदूतत्व का विस्मरण नहीं कर सकते।

२. साकेत

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में श्री मैथिलीशरण गुप्त के साकेत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस रामकथा का सूत्रपात वाल्मीकि रामायण से हुआ और जिसके सबन्ध से मध्ययुग में 'रामचरितमानस' एवं 'रामचंद्रिका'-जैसी प्रबन्ध-रचनाएँ निर्मित हुईं उसी के सबन्ध से आधुनिक युग में 'साकेत' का प्रणयन हुआ। इस रचना में सांस्कृतिक भूमिका पर नूतन युगापेक्षी दृष्टिकोण की प्रस्थापना की गयी है। यह ठीक है कि 'साकेत' को 'रामचरितमानस' का सा धार्मिक और साहित्यिक धरातल प्राप्त नहीं हुआ है, फिर भी वह नव-चेतना से अनुप्राणित है, इसमें कोई सदेह नहीं है।

राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि बाँकीदासजी ने साहित्य-प्रणेताओं का ध्यान उर्मिला की ओर आकर्षित किया था। आधुनिक युग में रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने युग के कवियों को साहित्य के उपेक्षित पात्रों की ओर सचेत किया। परिणामत गुप्त जी का ध्यान उर्मिला और यशोधरा की ओर गया। साकेत का प्रणयन प्रमुखत उर्मिला को प्रकाश में लाने के लिये किया गया है।

साकेत को विद्वानों ने एक सफल महाकाव्य बतलाया है।[1] यह ठीक है कि यह एक सर्गबद्ध रचना है। इसमे बारह सर्ग हैं। इसके कथानक का आधार लोकविश्रुत है। लक्ष्मण धीरोदात्त नायक और कर्तव्यनिष्ठ तपस्विनी उर्मिला नायिका है। इसमे विप्रलम्भ शृगार प्रधान रस है। करुण, वीर, रौद्र आदि रस उसके सहायक हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से धर्म की सिद्धि साकेत का मुख्य लक्ष्य है। प्राचीन काव्यो की भाँति साकेत मे भी प्रभात, सध्या, रात्रि, नगर, वन, पर्वत, नदी, षड्ऋतु, युद्ध-यात्रा आदि के सुन्दर वर्णन वर्तमान हैं। साकेत के आदि में गणेश की वन्दना के रूप में मगलाचरण का विनिवेश है। इसके प्रायः प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द को प्रधानता दी गयी है और सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन

---

१. देखिये, डा० गोविन्दराम शर्मा : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १७९

भी किया गया है। महाकाव्य मे छन्द-प्रयोग सबन्धी नियम के अनुसार ह साकेत के नवम सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग भी दिखायी देता है। इ प्रकार साकेत में परम्परागत मुख्य लक्षणों का सामान्यतया निर्वाह दृष्टिग होता है।

साकेत एक चरित्रप्रधान महाकाव्य है क्योंकि इसमें चरित्र को अधिक महत्व दिया गया है। इसकी सभी घटनाएँ उर्मिला और लक्ष्मण की चारि त्रिक विशेषताओं को प्रकाश मे लाने मे अपना अमोघ योग देती हैं।

साकेत मे एक ओर जातीय जीवन की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओ उसमे कवि के व्यक्तित्व और काव्यशैली का कलात्मक चित्र भी प्रस्तुत हुअ है। इसलिए इसमे सकलनात्मक और कलात्मक, दोनो प्रकार के महाकाव्यो की विशेषताएँ वर्तमान हैं। फिर भी साकेत की गणना रामायण और महाभारत जैसे विशालकाय संकलनात्मक महाकाव्यों मे न करके रघुवश—जैसे कलात्मक महाकाव्यो की श्रेणी मे ही करनी चाहिये।[1]

बडी उदार दृष्टि से देखने पर ही साकेत को महाकाव्य की अभिधा प्रदान की जा सकती है, अन्यथा इसकी सफलता मे कई बाधाएँ प्रस्तुत हुई हैं। उनमे से एक है राम का प्रामुख्य। राम के सामने लक्ष्मण का चरित्र उभर कर प्रखर प्रकाश मे नही आ पाया है। साकेत मे राम की अवतारणा अपने पूर्व सस्कारों को लेकर हुई है। यहाँ राम ब्रह्म के अवतार हैं। उनकी साकारता उनकी लीला है।[2] इस प्रकार राम और उर्मिला को चारित्रिक प्राधान्य मिल गया है जो नायक-नायिका के परम्परागत सम्बन्ध की रक्षा नही कर सका है। इधर साकेत की सारी घटनाएँ उर्मिला के चरित्र को विकसित करती हैं।

साकेत को शैली में भी महाकाव्यत्व का बाधक-तत्त्व विद्यमान है। साकेत अपने मूल रूप मे श्रव्य काव्य है किन्तु उसकी अतिनाटकीयता ने उसे दृश्यकाव्य की ओर भी प्रवृत्त करा दिया है।

चरित्र-प्रधान काव्य होते हुए भी साकेत के कुछ वर्णन अति-दीर्घकाय हो गये हैं जिनके कारण कथा-प्रवाह बाधित हुआ है। उदाहरण के लिए साकेत के नवम सर्ग को ही ले सकते हैं जिसमें उर्मिला के विरह-वर्णन ने रीतिकालीन प्रवृत्तियो की आड मे कथाश का कठावरोध कर डाला है।

---

१. डा० गोविन्दराम शर्मा : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १७९–८०

२. देखिये, साकेत, "हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।" पृ० २

'साकेत' नाम को सार्थक बनाने के लिए साकेत (अयोध्या) में घटनाओं का जो घटाटोप आयोजित किया गया है उससे स्वाभाविकता बाधित होकर बाजीगरी का सा रंग आ गया है।

चरित्र-चित्रण में मौलिकता का रंग बहुत गहन है किन्तु उससे भी महाकाव्य की भारतीय परम्परा का उच्छेद हुआ है। साकेत में नायिका (उर्मिला) का चरित्र अधिक गरिमावान् हो गया है और राम के प्राधान्य से लक्ष्मण का चरित्र दब गया है। परिणामत नायक की परम्परागत प्रतिष्ठा को व्याघात पहुँचा है। काव्यकला की दृष्टि से यह स्थिति दोष-मुक्त नहीं है, किन्तु मौलिक उद्भावनाओं की संयोजना ने इन सभी दोषों को दबाकर 'साकेत' के महाकाव्यत्व का झण्डा ऊँचा किया है जिसका गौरव युगचेतना के प्रकाश से अधिक प्रखर दृष्टिगोचर होता है।

३ नलनरेश — इस रचना की कथावस्तु जितनी इतिहास-प्रसिद्ध है, उतनी ही लोक-प्रसिद्ध भी है। महाभारत में प्रादुर्भूत इस कथा को परवर्ती संस्कृत साहित्य में 'नैषधीयचरितम्' से विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। प्रबन्धकार ने इस रचना को महाकाव्य के सभी गुणों से विभूषित करने की चेष्टा की है जो बहुतांश में सफल है। यह कृति १६ सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक सर्ग छन्द-नियम से पोषित है। प्रारंभ में मंगलाचरण भी है। राजा नल धीरोदात्त नायक है और दमयन्ती इसकी नायिका है। सभी रसों का समावेश भी कुशलता से किया गया है। इसके अनेक वर्णन—ऋतु, प्रकृति, उत्सव, नगर, ग्राम, रूप आदि से सम्बन्धित बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किये गये हैं। भाषा अलंकारों और मुहावरों से परिपुष्ट बड़ी सरल और सरस है। वह जितनी सरस है उतनी ही प्रवाहपूर्ण भी है। संस्कृत के सरल शब्दों ने इसकी खड़ीबोली को मधुर बना दिया है। इसमें एक गरिमामय लक्ष्य संनिहित है। देश के लिए कल्याणमयी कामना करना सामयिक है। अन्तिम सर्ग के अन्तिम छंद हमारे देश के सुख, वैभव तथा शान्ति की कामना करते हैं। वे पंक्तियाँ प्रत्येक देश-प्रेमी के हृदय को स्पर्श करेंगी।[1]

अनेक विद्वानों ने इस रचना को हिन्दी के प्रारंभिक महाकाव्यों में परिगणित किया है। उनमें से स्वर्गीय श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी का मत प्रमुख है। उनके मत से यह एक महाकाव्य है। बड़ी सुन्दर-सरस-सुबोध प्रासादिक

---

१. देखिये, नलनरेश, सम्मति—कृष्णदेवप्रसाद गौड़।

कविता है। मैं धन्य हूँ जिसे जीते जी हिन्दी मे नलनरेश जैसा महाकाव्य देखने और पढने को मिल गया।[१]

मैं भी इस रचना को महाकाव्य मानती हूँ क्योकि इसमे प्रबन्ध-निर्वाह ढग से हुआ है, मार्मिक स्थलो का परिचय भी दिया गया है तथा दृश्यो की स्थानगत विशेषता का भी ध्यान रखा गया है। इन गुणो के अतिरिक्त इसमे सास्कृतिक गरिमा का पोषण और एक महान् सदेश का प्रेषण भी है। चरित्र-चित्रण मे कुशलता से काम लिया गया है और प्रसगो ने मूल कथानक के साथ समुचित सम्बन्ध का निर्वाह किया है। वर्णनो ने प्रसगो की सुषमा को सुरक्षित रखते हुए प्रमुख घटना को सही योग दिया है। हाँ, जीवन अपने समग्र रूप म प्रस्तुत नही हो सका है। फिर भी 'नलनरेश' एक सुमान्य महाकाव्य है।

४. कामायनी

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य-माला मे प्रसादकृत कामायनी एक महत्त्वपूर्ण भास्वर रत्न है। इससे पहले 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' की रचना हो चुकी थी, किन्तु कथावस्तु, शैली एव काव्य-कौशल की क्षमता की दृष्टि से कामायनी अनुपम कृति है। इसमे कवि ने विकीर्ण प्रसग-सूत्रों के सकलन से एक कथा-पट बुना है जिसमे ऐतिहासिक प्राचीनता है और उसी के आधार पर मानव-जीवन का चिरतन सार्वभौम रूप प्रस्तुत किया गया है। कामायनी एक ओर तो नूतन मानव-सृष्टि के विकास की कहानी उपस्थित करती है और दूसरी ओर मानव-हृदय की शाश्वत मनोवृत्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से कामायनी मे इतिहास और मनोविज्ञान का सुन्दर सामजस्य है।

इसम महाकाव्य की प्राचीन विशेषताओ मे नवीन प्रवृत्तियों और धारणाओ का सुन्दर गुफन दृष्टिगोचर होता है। व्यापक मानव-जीवन के मूल तत्त्वो की पृष्ठभूमि मे मनोविज्ञान की कलात्मक अभिव्यजना कामायनी की अपनी विशेषता है। कामायनीकार ने भौतिक आवरणो मे मनोलोक की उदात्त भावनाओं का प्रकाश किया है। अपनी इस विशेषता के कारण कामायनी एक अनूठी कृति है।

महाकाव्य के सम्बन्ध मे कामायनीकार के कला-नैपुण्य ने क्रान्ति को पुरस्कृत किया है। भारतीय और पाश्चात्य, पुरातन और नवीन मान्यताओ के विलक्षण सामजस्य से किसी विशेष पद्धति के आलोचक को एक हिचक पैदा हो सकती है, किन्तु सामजस्य को सहानुभूति की आँखों से देखने वाला

---

१. देखिये, नलनरेश पर श्री म० प्र० द्विवेदी की सम्मति, आरभ में।

आलोचक इस कृति में एक नवीन महाकाव्य-शैली को अवगति से सिहरे बिना नहीं रह सकता।

कामायनी में देश-काल की सीमाएँ मिटकर व्यापक मानव-जीवन के गंभीर तल रूपायित हुए हैं, अतएव कामायनी के महाकाव्यत्व में देश-विशेष या युगविशेष के निर्दिष्ट लक्षणों का भी अतिक्रमण हुआ है। फिर भी उसमें कितने ही परम्परागत लक्षण मिल जाते हैं। कामायनी का कथानक ऐतिहासिक है। नायक पौराणिक महापुरुष है जो मानव सृष्टि का आदिपुरुष है। शृंगार के साथ अनेक रसों का संयोजन करते हुए कामायनीकार ने काव्य का अवसान शान्त में किया है जो भारतीय आदर्शों के अनुसार जीवन की चरम परिणति है। पाँचों नाटकीय संधियाँ भी उपलब्ध होती हैं। 'आशा' से 'श्रद्धा' सर्ग तक मुख-संधि, 'काम' से 'कर्म' तक प्रतिमुख, 'ईर्ष्या' से 'इडा' तक गर्भ, 'स्वप्न' से 'निर्वेद' तक विमर्श तथा 'दर्शन से 'आनन्द' सर्ग तक निर्वहण-संधि की योजना दिखायी पड़ती है। चतुर्वर्ग में से मोक्ष की प्राप्ति कामायनी का लक्ष्य है जो समरसताजन्य शान्ति से अभिन्न है। सन्ध्या, रजनी, सूर्योदय, नदी, पर्वत, संयोग, वियोग, युद्ध, नगर आदि के वर्णन भी कामायनी के महाकाव्यत्व को समुचित सहयोग दे रहे हैं। पन्द्रह सर्गों में विभक्त कामायनी के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु सर्गान्त म छन्द-परिवर्तन के नियम का अनुपालन नहीं हुआ है, फिर भी कृति अपनी सहज सरसता एवं रोचकता को अक्षुण्ण रख रही है।

कामायनी के सामान्य विश्लेषण से हमें कामायनी में ये तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं[१] —(१) कथानक की महानता, (२) महान् चरित्रों की सृष्टि, (३) रसात्मकता, (४) वर्णन-विविधता, (५) भाषा-शैली की उदात्तता, (६) सर्वांगीण जीवन की अभिव्यक्ति, (७) जातीय भावनाओं, आदर्शों और संस्कृति की व्यंजना, (८) चिरंतन भाव राशि का समावेश तथा (९) महान् उद्देश्य।

कामायनी के ये तत्त्व प्राच्य और पाश्चात्य दोनों आदर्शों को आत्मसात् करते दिखायी देते हैं। यह ठीक है कि कामायनी का कथानक बहुत व्यापक नहीं है, फिर भी उसमें सम्पूर्ण जीवन को व्यक्त करने की क्षमता है। आदि पुरुष मनु और आद्या नारी श्रद्धा के जीवन में महानता क साथ-साथ सरलता भी है। प्रासंगिक कथाएँ थोड़ी हैं, किन्तु उनका सम्बन्ध-निर्वाह बड़े

१. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० २५१

सहज रूप में हुआ है। माना कि कथावस्तु में धारावाहिकता नहीं है, फिर भी महाकाव्योचित अविच्छिन्नता विद्यमान है। रूपक-शैली मे कथानक दो परि-पार्श्व प्रस्तुत करता है · ऐतिहासिक एव मनोवैज्ञानिक। दोनों परिपार्श्वों का सम्यनिर्वाह बहुत सुन्दर बन पड़ा है। सम्पूर्ण मानवता को आत्मसात् करने की क्षमता ने कथानक की महानता को और भी अधिक उत्कर्ष प्रदान कर दिया है।

कहा जा चुका है कि कामायनी मे प्रधान रस शृंगार है जिसकी परि-णति शान्त में हुई है। संयोग और वियोग, दोनों पक्षों ने शृंगार को स्वस्थ रूप मे प्रस्तुत किया है। मांसलता के अभाव ने शृंगार को एक अनूठी गरिमा प्रदान की है। प्रकृति के विविध रूपो और मनोभावों के विविध परिपार्श्वों मे कवि ने जो तालमेल पैदा किया है वह हिन्दी के अन्य किसी महा-काव्य में दुर्लभ है। प्रसाद की दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य पर उतनी नहीं रही है जितनी आंतरिक सौंदर्य पर। वास्तव मे प्रकृति के विविध उपकरण विविध मनोवृत्तियों के प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त हैं।

ऐतिहासिक एव मनोवैज्ञानिक—लौकिक एवं आध्यात्मिक—धाराओं मे बहती हुई कामायनी की वस्तु-सरिता मे जीवन का सर्वांगसुन्दर प्रवाह रूपा-यित हुआ है। लाक्षणिक प्रयोगों की प्रचुरता से भाषा-शैली को जो गरिमा और उदात्तता उपलब्ध हुई है वह महाकाव्य के लिए सर्वथा उचित है। प्रौढ़ अभिव्यंजना से सुसज्जित समृद्ध भाषा सूक्ष्मतम भावो के व्यक्त करने में समर्थ सिद्ध हुई है। कामायनी की प्रतीकात्मक शैली हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में नवीनता की अग्रगण्य प्रस्थापना है।

सांस्कृतिक धरातल पर कामायनी भारतीय आदर्शों को प्रकाशित करती हुई भी सार्वभौम मानव-संस्कृति की प्रतीष्ठा करती है। मानवतावादी विचार-धारा को प्रवाहित करने मे महाकाव्य के रूप मे कामायनी का स्थान अद्वितीय है।

अनेक देशों और कालो, अनेक परिस्थितियो और वातावरणों में जीने वाले अनेक मनुष्यों को एक ही भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने की क्षमता से भी कामा-यनी महाकाव्य—भूषण बन गई है। मनु, श्रद्धा और इड़ा, भारतीय संस्कृति के प्रतीक होते हुए भी—देश, काल और जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए भी विश्व—मानव को सामने लाते हैं। इस प्रकार शाश्वत मनोभावों का प्रति-रूपण कामायनी के महाकाव्यत्व की प्रस्थापना मे अमोघ योग देता है।

कामायनी का महान् उद्देश्य सूर्य की भाँति भास्वर है। जीवन को सुख दुःख, हर्ष विषाद, आशा-निराशा आदि द्वन्द्वो की स्थिति से ऊपर उठाकर उसे समरसता की भूमिका पर अखंड आनन्द मे निमग्न करना कामायनी का उच्च-

तम लक्ष्य है। प्रसाद की यह मान्यता है कि बुद्धि भौतिकता को उत्कर्ष प्रदान करती है, किन्तु वह मानव जीवन को संघर्ष में धकेलती है जहां समरसता का बाध होने से अशान्ति का 'तांडव' होता है। हृदय की कोमल आस्थामयी वृत्तियों के अभाव में वह संघर्ष मानव को विनाश की ओर प्रेरित कर रहा है। मनुष्य—जीवन जब तक अपने उद्गम (आनन्द) की ओर नहीं मुड़ेगा तब तक वह वेग से विनाश के पथ पर बहता चला जायेगा और तब तक अशान्तिमय संताप से वह मुक्त नहीं हो सकेगा। अपनी बौद्धिकता को आस्थामयी हृदय वृत्ति (श्रद्धा) से संतुलित करके ही मानव व्यावहारिक और आध्यात्मिक जीवन में सामंजस्य स्थापित कर सकता है और तभी वह अखंड आनन्द को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है[1]।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कामायनी में महाकाव्य की शास्त्रीय परंपरा का बाध होने पर भी सभी उदात्त एवं व्यापक तत्त्वों का समावेश है जो उसे महाकाव्य की प्रतिष्ठा देने में सक्षम हैं। रामचरितमानस के पश्चात् मानव-जीवन का परम सम्पन्न चित्र प्रस्तुत करने वाला महाकाव्य कामायनी ही है[2]।

५ वैदेही—वनवास

यह हरिऔध का दूसरा महाकाव्य माना जाता है। यह ठीक है कि खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य होने के कारण प्रियप्रवास ने वैदेही-वनवास से अधिक ख्याति प्राप्त की है, किन्तु वैदेही-वनवास प्रियप्रवास से अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें कवि का झुकाव संस्कृत शब्दावली और वर्णवृत्तों की ओर न रहकर सरलता एवं स्वाभाविकता की ओर रहा है। इसलिए इसकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक सरल और भावानुसारिणी है और शैली कृत्रिमता एवं दुरूहता से मुक्त है। हिन्दी छन्दों ने इसे युग के अधिक समीप ला दिया है। यह कृति भी आर्य-संस्कृति के आदर्शों को युगावश्यकताओं में प्रतिष्ठापित करती है। नवीन व्याख्याओं में प्राचीन आदर्श हमारे जाने-पहचाने से लगते हैं। भावनात्मक अलौकिकता ने बुद्धिसंगत स्वाभाविकता को तथा "असंभव" ने 'संभव' को स्थान देते हुए 'आदर्श' को यथार्थ भूमिका प्रदान की है, किन्तु बुद्धिवाद कल्पना-विरहित नहीं है।

हम वैदेही-वनवास को प्राचीन शास्त्रीय कसौटी पर कस कर 'महाकाव्य अभिधा नहीं दे सकते, फिर भी इसमें महाकाव्य के अधिकांश लक्षण मिलते हैं।

---

१. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० २५३
२. वही , पृ० २५३

यह एक सर्गबद्ध रचना है। क्षत्रिय-कुल-भूषण राम जो लोकप्रसिद्ध महापुरुष हैं, इसके नायक हैं। इसमें शृंगार, वीर और शान्त में से कोई भी रस प्रधान न होकर 'करुण' को प्राधान्य मिला है और शृंगार, वात्सल्य, शान्त आदि रस उसके सहायक हैं। इस नवीनता को हम भवभूति की क्रान्ति की ही एक कड़ी मान सकते हैं। धर्म की सिद्धि इस काव्य का प्रमुख लक्ष्य है। सर्ग-संख्या (अठारह) भी लक्षणों के अनुकूल है। प्रत्येक सर्ग में किसी एक छन्द को स्थान देकर अन्त में दोहा दिया गया है। इस प्रक्रिया में भी लक्षण-व्यतिक्रम नहीं है। पाँचवें छठे और सातवें सर्ग में विविध-छन्द-प्रयोग में नवीनता का आग्रह प्रतीत होता है। प्रातःकाल, सूर्योदय, सन्ध्या, चन्द्र, वन, आश्रम, पर्वत, संयोग, वियोग, मुनि, पुत्र-जन्म, वर्षा, शरद, वसन्त आदि के वर्णनों ने इसके महाकाव्यत्व की रक्षा में समुचित सहयोग दिया है। इन वर्णनों के अतिरिक्त कवि के आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुरूप दाम्पत्य-प्रेम की महत्ता, राजा-प्रजा-संबंध, नारी-चरित्र की पवित्रता आदि विषयों को नवीन व्याख्याओं में प्रस्तुत करने का प्रयत्न भी है। प्रमुख घटना के आधार पर इसका नाम-करण भी लक्षणोचित है। इसी प्रकार सर्गों के नाम भी उनमें वर्णित, घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। इन परिपार्श्वों में 'वैदेही-वनवास' 'महाकाव्य' अभिधा को सार्थक करता है, किन्तु कुछ लोगों का तर्क है कि इसमें विषय-व्यापकता का अभाव है, इसलिए इसकी गणना महाकाव्यों में नहीं होनी चाहिये। मैं समझती हूँ कि इस प्रकार का निर्णय उदारता से वंचित है। विचारों की उदात्तता एवं सांस्कृतिक शालीनता की धरा पर यह कृति अपने महाकाव्यत्व के गौरव को सुरक्षित रखती है। अतएव अनेक गुणों और लक्षणों की पृष्ठभूमि में वैदेही-वनवास को 'महाकाव्य' का पद देना अनुचित नहीं है।

इस कृति की सृष्टि में रामायण की प्रेरणा रही दीख पड़ती है और यह बात इसके नाम से पुष्ट हो जाती है। जिस प्रकार रामायण में राम-कथा कही गई है। उसी प्रकार इसमें कृष्ण-कथा कही गयी है।

६. कृष्णायन

रामचरितमानस की शैली से मुग्ध होकर द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने कृष्ण-कथा का प्रणयन दोहा चौपाई-शैली में किया है जिसमें स्थान-स्थान पर सोरठे भी टँके हुए हैं। मानस की भाँति इसकी भाषा भी अवधी है। मिश्र जी ने मानस के आकर्षण को इन शब्दों में स्वीकार किया है —

तुलसी-शैलहिं मोहिं प्रिय लागी।
भाषहु बिनु विवाद रस-पागी॥[1]

---

१. कृष्णायन—अवतरण कांड, दोहा ४

हिन्दी कवियों में से किसी ने इस रचना से पूर्व कृष्ण के समग्र जीवन को लेकर प्रबन्ध–रचना नहीं की। अनेक कृष्ण–भक्तों ने अपने इष्टदेव की बाल–लीला और यौवन–लीला को लेकर विविध गीतों और मुक्तक काव्यों की रचना की। अधिक से अधिक उनका प्रयत्न किसी खण्डकाव्य के सृजन की दिशा में हुआ। उन्होंने कृष्ण–जीवन के जिस रूप को अपनाया वह महाकाव्य की भूमि पर पल्लवित न हो सका, कारण कि उसमें मानव–जीवन की अनेकरूपता को व्यक्त करने की क्षमता न थी। प्रियप्रवास भी इस अभाव की पूर्ति न कर सका क्योंकि उसमें भी कृष्ण मुख्यतया गोपीवल्लभ के रूप में ही हमारे सामने उपस्थित हुए। श्री मिश्र ने इस अभाव की पूर्ति की दिशा में प्रशसनीय प्रयत्न किया। उन्होंने कृष्ण-जीवन की समग्रता (जन्म से स्वर्गारोहण तक) को ध्यान में रखकर अपने काव्य का ताना-बाना तैयार किया और अनेक परिपार्श्वों पर प्रकाश डालने के लिए उपयुक्त प्रसगों का सकलन किया। कृष्णायन के कृष्ण अपने व्यापक रूप में समग्र कथानक को सरसित कर रहे हैं।

कृष्णायन में महाकाव्य सम्बन्धी प्राय सभी शास्त्रीय निर्देशों का अनुपालन मिलता है, हाँ, सर्ग-सख्या और छन्दोविधान में ढिलाई अवश्य दिखायी देती है।

कृष्णायन की कथावस्तु ऐतिहासिक (पौराणिक) एव लोक-विश्रुत है। रामचरितमानस के अनुकरण पर यह कृति सात काडों में विभक्त है, किन्तु कथानक की व्यापकता से यह प्रभावपूर्ण हो जाती है। धीरोदात्त गुणों से युक्त श्रीकृष्ण इसके नायक हैं। शृगार, शान्त और वीर इसके तीन प्रधान रस हैं, किन्तु इन तीनों में भी वीर रस की ही प्रमुखता दिखायी देती है। अन्य रसों ने वीर को समुचित सहायता दी है। रचना का उद्देश्य धर्म में समाहित है। इस रचना में केवल तीन छन्दों को ही अपनाया गया है, किन्तु छन्द-परिवर्तन का (जो कथा की सरसता में योग देता है) अभाव खटकता नहीं है। छन्द-परिवर्तन का नियम बाधित होते हुए भी इन तीनों छन्दों के उलट-फेर से ही कहीं-कहीं निर्वाहित हुआ है।

परम्परागत महाकाव्यों की अनुकृति में आरम्भ में मगलाचरण का विनिवेश भी हुआ है। ऋतु, सस्कार, युद्ध आदि के सरस वर्णन भी इसके महाकाव्यत्व की रक्षा करते हैं। इस प्रकार महाकाव्य के स्थूल नियमों का अनुपालन इसमें हुआ है, किन्तु इसके महाकाव्यत्व की कसौटी यह नियमानुपालन

ही नहीं है, वरन् जातीय जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति, कथानक की अविच्छिन्नता चरित्रांकन की कुशलता तथा भाषा-शैली की सरसता भी है और इस कसौटी पर कृष्णायन का खरापन सिद्ध है।

इसमे भारत की प्राचीन संस्कृति तथा नूतन युग की राष्ट्रीय चेतना पूर्णतः मुखरित हुई है। कृष्ण-चरित को व्यापक रूप देकर कवि ने मौलिकता का परिचय दिया है। कथानक में विविध प्रसंगों का स्पर्श हुआ है। चरित्र-योजना भी महाकाव्य की गरिमा के अनुकूल है तथा भाषा-शैली में प्रौढ़ता के अतिरिक्त मनोहारिता भी है। ये विशेषताएँ कृष्णायन को महाकाव्य-पद पर प्रतिष्ठित करने मे समर्थ हुई हैं।

७. साकेत-संत

भरत का चारित्रिक गौरव किसी से छिपा नहीं है। साकेतसंत मे भरत के प्रति डा० बलदेव प्रसाद मिश्र की भावना का साकार स्वरूप प्रतिफलित हुआ है। यो तो रामकथा को लेकर आधुनिक युग मे 'साकेत' जैसे महाकाव्य की रचना हो चुकी थी और उसमे भरत के चरित्र का उत्कर्ष प्रशस्य है, किन्तु उसमे भरत को महाकाव्य के नायक का पद नहीं मिला। संभवतः इस भावना ने डा० मिश्र को 'साकेत-संत' लिखने की प्रेरणा दी। 'साकेत-सन्त' नाम इस बात का प्रमाण है कि इसके प्रणेता ने साकेत से कुछ प्रेरणा अवश्य ली है। 'संत' शब्द इस बात का द्योतक है कि कवि ने भरत को गौरव दिया है और वह गौरव जो साकेत के बड़े पूरक का काम करता है। इसी गौरव मे भरत का नायकत्व निहित है। जिस प्रकार गुप्त जी ने साकेत मे उर्मिला और लक्ष्मण के चरित्र को प्रधानता देने का उपक्रम किया है उसी प्रकार साकेत-संत मे भरत और माण्डवी को चारित्रिक प्राधान्य दिया गया है।

प्राचीन शास्त्रीय कसौटी पर साकेत-सन्त एक सफल महाकाव्य है। यह एक सर्गबद्ध रचना है जिसका नायक धीरोदात्त गुणो से युक्त एक ख्यातवश महापुरुष है। इसकी कथावस्तु, इतिहास-प्रसिद्ध एवं लोक-विश्रुत है। इस रचना मे शान्त रस की प्रधानता है। अन्य रस अंग रूप मे विद्यमान हैं। धर्म इसका प्रमुख उद्देश्य है। प्रारम्भ मे भरत की स्तुति ही मंगलाचरण है। आठ से अधिक (चौदह) सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग की रचना एक ही छन्द मे हुई है। अन्त मे छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन किया गया है। चौदहवें सर्ग में विविध छन्दो का प्रयोग किया गया है। विविध प्रसगों और प्राकृतिक दृश्यो के वर्णनो ने भी इसके महाकाव्यत्व की रक्षा की है।

इन अनेक दृष्टिकोणों से साकेत-संत एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, किन्तु कथावस्तु सीमित है, इसलिये महाकाव्योचित संपूर्ण जीवन एवं उसकी विविध विशेषताओं की सम्यक् अभिव्यक्ति नहीं होने पायी है। इस प्रकार का अभाव तो शिशुपालवध, नैषधीयचरित आदि महाकाव्यों में भी देखा जा सकता है, किन्तु उनको महाकाव्य का पद दिया गया है। अतएव कथावस्तु की व्यापकता का अभाव साकेत संत को भी महाकाव्यत्व से वंचित नहीं कर सकता। कथा-शृंखला, वर्णन-सौष्ठव, जातीय आदर्शों और भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति सांस्कृतिक भूमि तथा शैली की गरिमा की दृष्टि से साकेत-संत का महाकाव्यत्व अवश्य ही प्रतिष्ठित हो जाता है।

८. रामकथा कल्पलता

इस कृति के प्रणेता कविवर श्री नित्यानन्द जी हैं। इस कृति में मानवता का शाश्वत संदेश है। मानव-भावना की ग्रंथियों के कुशल उच्छेदन ने आदर्श के निरूपण में पर्याप्त योग दिया है। भारतीय संस्कृति ने इसकी भाव-गरिमा में मंजुल अंगड़ाई ली है और भारतीयता का निरूपण बड़ी प्रांजल पद्धति से हुआ है।

यों तो राम-काव्य-परम्परा में खड़ीबोली के अनेक प्रबन्धकाव्य लिखे गये हैं जिनमें से कुछ तो महाकाव्य के पद पर आसीन हैं, किन्तु शास्त्रानुमोदित लक्षणों का निर्वाह जिस कौशल से इस कृति में हुआ है वैसा इतर आधुनिक कृतियों में दुर्लभ है। हाँ, मंगलाचरण कुछ अधिक विस्तृत है। इसमें कवि ने राम, सीता, हनुमान, शारदा, तुलसी, वाल्मीकि, शिव आदि के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की है। इस मंगलाचरण में कवि की मान्यताओं का स्पष्ट संकेत है। इसके पश्चात् कथानुबन्ध के प्रकृत विषय की ओर उन्मुख होकर कवि अपने महाकाव्य का श्रीगणेश अयोध्यापुरी के वर्णन से करता है।

कथानक, सर्ग, नायक, छंद, वर्णन आदि अनेक दृष्टिकोणों से यह रचना महाकाव्य की कसौटी पर पूरी उतरती है। कथानक में प्रवाह, समन्वयात्मक विकास और सहज वेग है। प्रसंग-व्यवस्था में सामंजस्यपूर्ण गहनता है। प्रासंगिक पीठिका पर गौण कथा के विस्तृत होने की संभावना होने पर शीघ्र ही प्रधान कथावस्तु तक आ जाना कवि-कौशल का प्रमुख अंग रहा है। कथा-प्रसंग कथोपकथनों से प्राणवान् हो उठे हैं। रावण-अंगद-संवाद[1] और परशुराम-लक्ष्मण-संवाद[2] इस बात के प्रमाण हैं।

---

१. देखिये, रा० क० क०, २३, ६०–७७

२. वही, २२, १११

महाकाव्यकार भपनी कृति मे भपनी सस्कृति और भपने नैतिक दृष्टिकोण का पुट दिये बिना नही रहता। इनको वह सकुचित भूमि पर प्रतिष्ठित न करके व्यापक मानवता की भूमि प्रदान करता है। इस दृष्टि से मानव सस्कृति और भारतीयता में विशेष अन्तर नही है। जिस सस्कृति का स्वर 'अहिंसा परमो धर्म' अथवा 'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया.' हो, उसमे मानव सस्कृति तो पहले से ही सनिविष्ट है। इस दृष्टि से २०वें प्रतान के ४ से ६ तक के पद्य देखने योग्य हैं। आगे २८ से ४६ तक के पद्यों मे मारीच तथा २२वें प्रतान के १३४ से १३७ तक के पद्यो में विभीषण का नैतिक दृष्टिकोण भारतीय सस्कृति का ही नही, मानव सस्कृति का उद्घोषक है। सांस्कृतिक वातावरण की यह शीतल छाया तथा नैतिक भादर्शों की यह दीप्ति महाकाव्य की गरिमा के पोषण मे भमोघ योग प्रदान करती है।

इस रचना में रस-निर्वाह भी बड़े कौशल से किया गया है। भवसरोपयुक्त रस-निष्पत्ति कराने में कवि को अमोघ सफलता मिली है। यो तो इस रचना मे सभी रस मिलते हैं, किन्तु 'वीर' प्रधान है। शृंगार, हास्य, करुण, शान्त आदि ने अ ग-रूप में वीर को पूर्ण सहायता दी है। अतएव 'रामकथा-कल्पलता' एक सफल महाकाव्य है।

६. दमयन्ती

'दमयन्ती' का कथानक अपने मूल रूप मे महाभारत के 'नलोपाख्यान' में मिलता है। उसके बाद उसमे कल्पनाओ के योग से परिवर्तन होता गया। कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। कवि का प्रयत्न इसे नायिका-प्रधान बनाने का रहा है। इसमे सदेह नही कि दमयन्ती उदात्तगुणो से विभूषित है। समग्र रचना १४ सर्गो मे विभाजित है। मगलाचरण ने इसे परम्परा से युक्त रखा है। छन्द नियमों का अनुपालन भी परम्परागत है। ऋतु, प्रकृति, उत्सव आदि अनेक वर्णन भी महाकाव्योचित गरिमा के पोषक हैं।

प्रस्तावना-लेखक का कहना है कि 'दमयन्ती में एक सुसबद्ध लोकविश्रुत नल-दमयन्ती की प्रेम-कथा के साथ साथ, अनुभूति की एकतानता, एक स्पष्ट जीवन-दर्शन, सफल प्रकृति-चित्रण, अत्यन्त प्राजल एव परिष्कृत भाषा एव तटस्थ चरित्रांकन के दर्शन होते हैं।' 'नवीन काव्यगत मान्यताओं को अस्वीकार करके भी वे नवयुग की प्रमुख-प्रमुख समस्याओं से पूर्ण परिचित हैं और स्थान-स्थान पर इस प्रबन्ध में उनकी समुचित अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि साम्यवाद, समाजवाद, सभी की यत्किंचित् गूँज उनकी कृति मे है, फिर भी

गांधीवादी विचार-धारा विशेष रूप से अहिंसा, सहकारिता, अस्पृश्यता और मानववाद का प्रभाव उन पर विशेष रूप से है और यही वस्तुतः इस प्रबन्ध काव्य की दर्शन-भित्ति है।'[१]

प्रस्तावना-लेखक की मान्यताओं से मैं भी सहमत हूँ। यद्यपि कथानक की प्रासंगिक योग्यता कुछ क्षीण एवं शिथिल रही है, किन्तु महाकाव्य के इतर गुण, जिनमें चरित्रोत्कर्ष प्रमुख है, इसको महाकाव्य-पद पर प्रतिष्ठित करा देते हैं।

(ख) सामान्य महाकाव्य

१. नूरजहाँ

श्री गुरुभक्तसिंह-रचित 'नूरजहाँ' प्रबन्ध काव्यों में बहुत प्रसिद्ध कृति है। इसका कथानक इतिहास-संबद्ध है और इतिहास-प्रसिद्ध मुगल सम्राज्ञी नूरजहाँ इसकी नायिका है। अठारह सर्गों में विभक्त कथावस्तु प्रसंगों की सहायता से सहज रूप में प्रवाहित हुई है। प्रकृति-वर्णन इस कृति की विशेषता है। सरल छंद और मुहावरेदार भाषा ने प्रवाह को तरंगमय मोहकता प्रदान की है। ये बातें महाकाव्यत्व के अनुकूल होती हुई भी, इसमें महाकाव्योचित गरिमा नहीं है। नायक का चरित्र महाकाव्योचित धीरोदात्तता से वंचित है। रचना की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि भी महाकाव्य के अनुकूल नहीं है। जिस जीवन का चित्रण हुआ है वह भी छिछला है। जीवन को व्यापक एवं गंभीर बनाने वाले परिपार्श्वों का इस कृति में अभाव रहा है। फिर भी हम इसे सामान्य कोटि के महाकाव्यों में परिगणित किये बिना नहीं रह सकते क्योंकि कथावस्तु में प्रवाहमय निर्वाह, प्रकृति-वर्णनों में वैविध्यपूर्ण आकर्षण तथा भाषा-शैली में सरलता, तरलता एवं लयात्मक प्रवाह का उत्कर्ष है।

२. सिद्धार्थ

श्री अनूपशर्मा की यह कृति महाकाव्यों में गिनी जाती है। इसकी रचना महाकाव्य के परम्परागत लक्षणों के अनुसार की गयी है। इसका कथानक इतिहास-प्रसिद्ध है। धीरप्रशांत गुणों से युक्त क्षत्रिय-वंशीय राजकुमार सिद्धार्थ इसके नायक हैं। इसमें शृंगार रस को प्रमुखता दी गयी है। शान्त, वात्सल्य आदि अन्य रसों का सहयोग भी शृंगार को मिला है। प्रकृति के सुन्दर वर्णनों से यह रचना आकर्षक बन गयी है। कुछ उत्सवों के वर्णन (पुत्र-जन्म आदि) भी बड़े सुन्दर बन पड़े हैं।

---

१. देखिये, दमयन्ती, प्रस्तावना

कथानक अठारह सर्गों में विभाजित है। कवि, हरिऔध के प्रियप्रवास की शैली से प्रभावित हुआ है, इसलिए उसने खड़ी बोली और संस्कृत के भिन्न-तुकान्त वर्णिक वृत्तों को स्थान दिया है। कथानक सुसबद्ध है। राजकुमार सिद्धार्थ की विरक्ति, साधना और सिद्धि से संबंधित आधिकारिक कथा के साथ विविध घटनाओं की अन्विति दृष्टिगोचर होती है। वर्णनों में कवि का मन अधिक रमा दिखाई देता है। उनसे कथावस्तु को मनोरमता अवश्य प्राप्त हुई है, किन्तु कथावस्तु के प्रवाह में विराम उपस्थित होता है। फिर भी कथासूत्र कहीं टूटता नहीं है। यह कवि-कौशल की देन है।

इन सब गुणों के आधार पर सिद्धार्थ को महाकाव्य का पद दिया जाना चाहिये। यद्यपि इस कृति में जीवन-विषयक गंभीरता का अभाव है, किन्तु चरित्रात्मक गरिमा ने उसकी पूर्ति कर दी है।

३. दैत्यवंश

श्री हरदयालुसिंह—कृत दैत्यवंश महाकाव्य अठारह सर्गों में विभक्त है। इसकी रचना ब्रजभाषा में हुई है। इस काव्य में हिरण्याक्ष से लेकर स्कन्द तक समग्र दैत्य वंश महाकाव्य का विषयाधार बनाया गया है। दैत्यवंश के रचयिता ने दैत्यों की चरित्रगत विशेषताओं को प्रकाश में लाने की दिशा में अटूट प्रयत्न किया है इस रचना में दैत्यों के प्रति मानव-सहानुभूति जाग्रत करने का सफल प्रयत्न है।

इस महाकाव्य की रचना शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर की गयी है, किन्तु नायक के सम्बन्ध में प्राचीन परम्परा का पालन नहीं हुआ। कवि ने दैत्यों में ही धीरोदात्त गुणों की उद्‌भावना करके उन्हें नायक का पद दिया है।

४. अंगराज

श्री आनन्दकुमार की यह स्थूल काव्यकृति पच्चीस सर्गों में विभक्त है। इसमें महाभारत के प्रसिद्ध सेनानी दानवीर कर्ण को नायक बनाया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कौरव-दल में कर्ण एक ऐसा प्रभावशाली चरित्र है जिसकी प्रशंसा युधिष्ठिर, अर्जुन और कृष्ण जैसे विपक्षियों ने भी मुक्तकंठ से की है। इसी महिमामय चरित्र ने 'अंगराज' के सृजन को प्रेरणा दी है।

'अंगराज' में महाकाव्य शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह समुचित रूप से हुआ है। इसका कथानक इतिहास-प्रसिद्ध है, नायक उदात्त गुणों से संपन्न है, सर्गरचना और छंद-संबंधी नियमों का कुशलता से पालन किया गया है। रसों

में वीररस प्रमुख है, जिसको शृंगार, करुण, शान्त, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों से सम्यक् सहायता मिली है। प्रकृति-वर्णन में भी परम्परा का अनुपालन हुआ है। प्रकृति-चित्रण के अतिरिक्त विविध दृश्यों के वर्णन भी बड़े रोचक एवं सप्राण हैं। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है जिसकी स्वाभाविकता को अप्रचलित शब्दों ने बाधित कर दिया है, किन्तु इससे 'अंगराज' का महाकाव्यत्व अबाधित रहता है।

५. वर्द्धमान इस महाकाव्य के प्रणेता श्री अनूप शर्मा हैं। यह कृति सत्रह सर्गों में विभाजित है। इसमें भगवान् महावीर (वर्द्धमान) का जीवन-चरित्र एक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाराज सिद्धार्थ और उनकी पत्नी त्रिशला के दाम्पत्य-जीवन, त्रिशला के गर्भ से महावीर की उत्पत्ति, उनके बाल्य-जीवन, गृह-त्याग, तपश्चर्या, ज्ञानोदय, धर्मोपदेश आदि के वर्णनों से इस रचना को पूर्ण चरितकाव्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। 'सिद्धार्थ' की भाँति कवि ने इस रचना में भी संस्कृत महाकाव्यों की परिपाटी का अनुसरण किया है। यों तो इसमें वंशस्थ, मालिनी, द्रुतविलम्बित आदि अनेक वर्ण-वृत्तों का प्रयोग हुआ है, किन्तु प्रधानता वंशस्थ की ही है। इसकी भाषा-शैली प्रियप्रवास से बहुत मिलती है।

महाकाव्य-शैली के अनुकरण में इसमें अनेक वर्णनों का विनिवेश है। वर्णन जीवन से भी संबन्धित हैं और प्रकृति से भी। मनुष्य की भाँति प्रकृति भी उपेक्षित नहीं हुई है। सिद्धार्थ के यश, त्रिशला के रूप और गुण तथा वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि ऋतुओं के वर्णनों से यह रचना सजीव हो उठी है। इसमें शांत रस की प्रधानता है। शृंगार के लिए इस रचना में कोई स्थान न होते हुए भी महाराज सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के दाम्पत्य-प्रेम के सरस निरूपण के कारण यह महाकाव्य शृंगार से वंचित नहीं होने पाया है। इस काव्य में नायिका का अभाव है। इसकी पूर्ति कवि ने रानी त्रिशला के नखशिख और रति-क्रिडा के परम्परागत वर्णनों से की है। चरित्रात्मक महाकाव्यों में इस कृति की गणना करने में अधिक संकोच की बात नहीं दिखायी पड़ती।

६. रावण रावण महाकाव्य में रामकाव्य के प्रतिनायक रावण को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। उदात्त गुणों का बाध होने पर भी—सीताहरण के कलक से लांछित होने पर भी—कवि ने रावण के चरित्र की गरिमा प्रतिपादित की है।

इसका कथानक सत्रह सर्गों मे विभाजित है। अनेक वर्णन इस काव्य की शोभावृद्धि में योग दे रहे हैं। प्रकृति के मनोरम चित्रों से भी काव्य की शोभा बढ़ रही है। विन्ध्याटवी, तद्गत सरोवर, सन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रभात आदि के वर्णन महाकाव्योचित गरिमा के सहयोगी हैं। वर्णनों पर कादम्बरी,[1] मेघदूत[2] रघुवंश[3] आदि का प्रभाव स्पष्टत दिखायी दे रहा है।

यह रचना युग-परिस्थितियों से भी अनुप्राणित है। विजयलक्ष्मी पंडित एवं सरोजनी नायडू आदि आधुनिक नारियों के समानान्तर शूर्पणखा जनस्थान के राज्यपाल के रूप मे अंकित हुई है। स्थान-स्थान पर सत्याग्रह, प्रजातन्त्रीय शासनपद्धति आदि की झलकियों से इस प्रबन्ध काव्य ने महाकाव्य की गरिमा को विक्षत नही होने दिया।

रावण महाकाव्य की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। कवित्त, घनाक्षरी, सवैया, रोला आदि प्राचीन छदों का प्रयोग रसानुकूल दिखायी देता है। अन्य रसों के साथ शृंगार और वीर रस का परिपाक सराहनीय है। वीर की झलकियाँ और भी उत्कर्षमयी हैं।

विशेषता की बात यह है कि अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियो की अनुकृति करते हुए भी कवि अन्धानुकरण के दोष से मुक्त रहा है। उसने कहीं-कहीं तो अपने पूर्ववर्ती कवियो के भावों को अधिक आकर्षक एव मनोहारी बना दिया है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि 'रावण' की गणना आधुनिक रीतिबद्ध महाकाव्यों की पंक्ति में ही की जा सकती है।

७. जयभारत — *श्री मैथिलीशरण गुप्त की यह रचना हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यो मे गिनी जाती है। इसमें प्रसिद्ध महाभारत की कथा का प्रणयन किया गया है। सम्पूर्ण कथा नहुष, यदु और पुरु, योजनगन्धा, कौरव-पाण्डव, बन्धु-विद्वेष, द्रोणाचार्य, एकलव्य, परीक्षा, याज्ञसेनी, लाक्षागृह आदि सैंतालीस सर्गों में* विभाजित है। युधिष्ठर को नायक बनाया गया है। उनकी सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणता परम्परागत है। चरित्र-विकास मे कवि-कौशल कहीं-कहीं स्खलित हो गया है। भीष्म के चरित्र को जयभारत में सम्यक् प्रकाश नहीं

---

१. सुल० को०-कादम्बरी-विन्ध्याटवी एवं सरोवर-वर्णन :
२. सुल० को०-मेघदूत मेघनाद का चन्द्र द्वारा सुलोचना को संदेश-प्रेषण
३ सु० को०-रघुवंश-सुदक्षिणा से गर्भभारालसा मन्दोदरी की।

मिला है। इधर महाभारत का दुर्योधन यहाँ सुयोधन बन गया है। संभवतः इसके मूल में कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण रहा हो।

प्रकृति वर्णनों को 'जयभारत' में विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ, फिर भी कुछ वर्णन[1] अच्छे बन पड़े हैं।

'जयभारत' में शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, आदि सभी रसों का समावेश हुआ है, किन्तु शान्त, शृंगार, वीर और करुण की व्यंजना अच्छी हुई है।

भाषा प्रसंगानुकूल, प्रवाहमयी और प्रसाद-सम्पन्न है। छन्द-क्षेत्र में कोई खटकने वाली बात नहीं है। अलंकार-प्रयोग भी स्वाभाविक है। कुछ वर्णनों में कवि का हृदय हिलोरें लेने लग गया है। उदाहरण के लिये पाण्डवों के देहपात का चित्र जितना मर्मस्पर्शी है सत्यवती का रूप वर्णन भी उतना ही भावपूर्ण है।[2]

कथानक में धारावाहिकता के अभाव, इतिवृत्तात्मकता के उभार तथा कुछ चरित्रों के ह्रास आदि के कारण 'जयभारत' के महाकाव्यत्व की भूमिका में कई घाटियाँ आ गयी हैं, फिर भी उसे कुछ उदारता से देखना होगा और तब वह महाकाव्य-कोटि में आ सकेगा।

८. पार्वती

डा० रामानन्द तिवारी की यह रचना पुराण-विख्यात पार्वती को लेकर चली है। लोक-प्रसिद्ध कथानक सत्ताईस सर्गों में विभक्त किया गया है। अभिषेक, विजय, पुर-स्थापना, शिव-धर्म, शिव-नीति, शिव-संस्कृति आदि के वर्णनों से कथानक को पुष्ट, रोचक एवं महाकाव्योचित बनाया गया है। पर्वत, सरोवर, वन आदि के वर्णनों में वसन्त आदि ऋतुओं के वर्णनों ने सोने में सुहागे का काम किया है। आश्रम, युद्ध आदि के वर्णन भी बड़े मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिमालय वर्णन तो बहुत ही प्रभावशाली एवं सजीव है। उसकी भीमाकार शिलाएँ और विशाल कन्दराएँ मन की आँखों में एक विराट् चित्र प्रस्तुत कर देती हैं।[3] पार्वती के रूप-वर्णन में भी कवि-प्रतिभा

---

१. देखिये, जयभारत, द्रौपदी और सत्यभामा पृ०—१७५

२. देखिये, जयभारत, योजनगन्धा, पृ० २२

३. पार्वती, १.३२

खूब रमी है। नख-शिख[1] की योजना से शृंगार का धरातल बड़ी पटुता से तैयार किया गया है। करुण, वात्सल्य आदि अनेक रसों की विशद योजना में शृंगार और वीर को प्रमुख स्थान मिला है। पार्वती-निहित शृंगार[2] उदात्त एवं शिष्ट है। इसमें कुमारसंभव की सी अश्लीलता नहीं है। अन्त में छन्द-परिवर्तन के नियम का अनुपालन न होता हुआ भी, प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है। कथावस्तु के समुचित निर्वाह, रस के कुशल विनिवेश, अलंकारों की मनोहर योजना तथा प्रकृति, ऋतु आदि के सजीले वर्णनों से रचना में सजीवता आ गयी है। कहने का आशय यह है कि इसमें महाकाव्य-सम्बन्धी परम्परागत तत्त्वों का समुचित नियोजन हुआ है और कतिपय इतिवृत्तात्मक स्थलों के विद्यमान होते हुए भी पार्वती में मार्मिक एवं रसात्मक प्रसंगों का-अभाव नहीं है। इसमें कवि- हृदय को प्रकट होने का अच्छा अवसर मिला है। भारतीय संस्कृति और जातीय आदर्शों की अभिव्यक्ति भी पार्वती को महाकाव्य का पद प्रदान करती है।[3]

६. रश्मिरथी

'दिनकर' की यह रचना बड़ी लोकप्रिय कृति है। महाभारत के प्रसिद्ध महारथी कर्ण को इसमें नायक का स्थान दिया गया है। कर्ण का कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। इसको सात सर्गों में विभक्त किया गया है। संस्कृत कवियों के हाथों में कर्ण के प्रति न्याय का अभाव सा रहा, दिनकर ने उसी का परिमार्जन करने के लिए तथा ऐतिहासिक कथानक को युगोचित साँचे में ढालने के लिए 'रश्मिरथी' की रचना की।

श्री आनन्दकुमार ने 'अंगराज' की रचना में युधिष्ठिर और द्रौपदी के के चरित्र को गिराकर कर्ण को ऊपर उठाने के लिए जो प्रयत्न किये उनसे न केवल 'श्रद्धा' को ठेस पहुँची है, वरन् ऐतिहासिक मान्यता को भी धक्का लगा है। 'रश्मिरथी' में कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठाया गया है, किन्तु युधिष्ठिर और द्रौपदी के चरित्र पर आक्रमण नहीं किया गया। हाँ, रूढ़िवादी अभिजात वर्ग की तिरस्कार-भावना के आधार का उन्मूलन अवश्य किया गया है। इससे 'रश्मिरथी' युग-चेतना के प्रकाश से दीप्त हो उठी है।

---

१. पार्वती, २·६०
२. वही, १२.२६६
३. द्रष्टव्य, पार्वती, २५.२२४

इसमें सात सर्ग हैं। प्रकृति के कुछ भव्य चित्र भी हैं, किन्तु प्रकृति-वर्णनों को महाकाव्योचित अवसर नहीं मिला है। कवि-हृदय प्रकृति की रम्यस्थली में बिहार करने के स्थान पर समाज की ऊबड़-खाबड़ गलियों में घूमने लग गया है। फिर भी परशुधर के आश्रम, कर्ण-कुन्ती के मिलन आदि के वर्णन बड़े मनोरम और सजीव बन गये हैं। दूसरे प्रसंग में रात्रि के संश्लिष्ट चित्र से कवि की प्रकृति-चित्रण-क्षमता का, जिसका इस रचना में समुचित उपयोग नहीं किया गया, अनुमान लगाया जा सकता है :—

अम्बर पर मोती-गुथे चिकुर फैला कर,
अंजन उँडेल सारे जग को नहला कर,
साड़ी में टाँके हुए अनन्त सितारे,
थी घूम रही तिमिरांचल निशा पसारे।[1]
थी दिशा स्तब्ध, नीरव समस्त अग जग था,
कुंजों में अब बोलता न कोई खग था।
झिल्ली अपना स्वर कभी-कभी भरती थी,
जल में जब-तब मछली छप-छप करती थी।[2]

इस रचना में जितना वीर रस उभरा है उतना कोई अन्य रस नहीं उभर पाया है। कर्ण के वीर-चरित्र के चित्रण में 'दिनकर' को पर्याप्त सफलता मिली है। वे वास्तव में वीर रस के ही सफल कवि माने जाते हैं। अन्य रसों को महाकाव्योचित प्रतिष्ठा नहीं मिली है।

'दिनकर' ने 'रश्मिरथी' में विविध छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु शास्त्रीय परम्परा का अनुपालन नहीं है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द हो और अन्त में छन्द बदल जाये, यह नियम इसमें नहीं निभाया गया। अन्तिम सर्ग में तो अनेक छन्दों का क्षिप्र नर्तन दिखाई देता है।

भाषा विषय के अनुकूल है। उसमें प्रवाह और प्रांजलता है। दुरूहता से मुक्त जनभाषा ने इसकी लोकप्रियता को बढ़ा दिया है। भारती के शब्दों के अभाव तथा फारसी-अरबी के प्रचलित शब्दों से भाषा में चटपटापन आ गया है। वाच्यार्थ की प्रधानता, प्रसादगुण युक्त है। स्थान-स्थान पर ओज को भी प्रतिष्ठा मिली है। अलंकार-विधान सरल एवं स्वाभाविक है। अलंकारों में सादृश्य मूलक अलंकारों को ही विशेष गौरव मिला है।

---

१. रश्मिरथी, सर्ग, ५, पृ० ६३
२. रश्मिरथी, सर्ग ५, ६३

रश्मिरथी पर युग की छाप है। इसमे मानवीय गुणो की प्रतिष्ठा के लिए कृत्रिम भेद-भाव के उन्मूलन की दिशा दिखाई गयी है। रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह और मूक पीडितो के उद्धार की भावना मुखर हो उठी है।

यह सब होते हुए भी रश्मिरथी मे न तो वह सांस्कृतिक थाती है और न वह वस्तु-प्रसार है जिसमे महाकाव्य की गरिमा निहित रहती है। प्रसगों में सम्बध-श्रंखि न होकर सदर्भ-योग्यता है। इन सब कारणो से रश्मिरथी महाकाव्य का स्थान पाने मे असमर्थ है। कथावस्तु की व्यापकता एवं वैविध्यपूर्ण जीवन के सर्वाङ्गीण चित्रण के अभाव के होते हुए भी रश्मिरथी कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा महाकाव्य की सीमा के अधिक निकट है। इसे हम प्रबन्ध के पद पर सरलता से प्रतिष्ठित कर सकते हैं। मुझे विस्मय होगा कि रश्मिरथी एकार्थ काव्य का पद प्राप्त करने मे भी असमर्थ है!

१० मीरां

परमेश्वर द्विरेफ ने अपनी इस कृति मे 'मीरां' को नायिका का पद प्रदान किया है। मीरां की कथा इतिहास और साहित्य के माध्यम मे लोक प्रसिद्ध हो गयी है। भक्ति सम्प्रदाय ने मीरां को अधिक ख्याति प्रदान कर दी है।

'मीरां' के कवि ने ईंट-रोडो को जोड कर भानुमती का कुनबा जोडने का प्रयत्न किया है। वह यह भूल गया है कि महाकाव्य प्रसगों का जमघट नहीं है, उसमे कथानक का सहज स्वाभाविक विकास होना चाहिये। विकास के लिए वस्तु में प्रसरणशीलता भी होनी चाहिये जो मीरां की वस्तु मे नही है। कवि का ध्यान मीरां के चरित्र पर केन्द्रित रहा है, इसलिए उससे हट कर उसने अन्य चरित्रो की ओर विशेष ध्यान नही दिया। अन्य पात्रों के साथ महाकाव्योचित न्याय नहीं हुआ। इसलिए उनके समुचित विकास को अवकाश नहीं मिला।

वस्तु-वर्णन और प्रकृति-चित्रण मे कविकौशल विशेष सन्नद्ध है। जीवन की अनेक अवस्थाओं और परिस्थितियों के साथ प्राकृतिक शोभा के प्रतिरूपण में कवि की पर्यवेक्षण-क्षमता काफी सहयोगिनी सिद्ध हुई है। प्रकृति का उपयोग कवि ने कहीं रसोपकरण जुटाने के लिए किया है तो कही अलकरण के लिए।

यह रचना विप्रलभ शृङ्गार की दृष्टि से अनूठी है। सयोग को अवसर न देकर कवि ने विप्रलभ को ही अवसर देने का प्रयत्न किया है। फिर भी सयोग के कुछ सयत एव उदात्त चित्रों ने कृति की शोभा को बढाने मे अपना समुचित योग प्रदान किया है।[1] शृगार के साथ करुण रस की व्यजना भी अच्छी

१. देखिये, मीरां सर्ग ७, पृ० १२६

हुई है। भोजराज के निधन के वर्णन में[1] करुण रस का मार्मिक विनिवेश कवि की मर्मस्थल-संवेदनशीलता का ज्वलन्त उदाहरण है। करुण और विप्रलम्भ शृङ्गार के अतिरिक्त इस रचना में वात्सल्य और वीर रस की तरंगें भी दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु इन सब में प्रवाहमयता नहीं है। वे प्रगाङ्गो-सम्बन्ध की दृष्टि से प्रशस्य नहीं हैं।

कवि जहाँ प्रमुख कथानक के प्रवाह से मुख मोड़ कर उपदेशत्व की ओर प्रवृत्त हुआ है वहीं कवित्व अपने पद से भ्रष्ट होकर नीरसता में मिल गया है।[2]

भाषा-शैली की दृष्टि से कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सरल, भावपूर्ण भाषा प्रसादगुण से सम्पन्न है। शब्दों में भावों का वहन करने की पर्याप्त क्षमता दृष्टिगोचर होती है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सामान्य अलकारों की भङ्गिमा ने काव्य के सौष्ठव में मनोहर योग-दान दिया है। मुहावरों ने भाषा-सौन्दर्य को अच्छी तरह निखार दिया है।[3]

तत्कालीन समाज का साक्षात्कार कराने में भी इस रचना के कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कुछ प्रसंग पढ़ते ही उस समय का राजस्थान हमारी आँखों में आ झूलता है।

सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि महाकाव्य की शास्त्रीय कसौटी पर 'मीराँ' महाकाव्य पूरा नहीं उतरता। कथावस्तु के प्रवाह में कई स्थलों पर शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त इसमें जीवन का वैविध्य-पूर्ण सर्वांगीण चित्र भी नहीं मिलता। इसका प्रमुख कारण रहा है घटना-विस्तार का अभाव और इसके कारण जीवन के विविध परिपार्श्व अप्रकाशित ही रह गये हैं। अनेक सामाजिक समस्याएँ समाधान खोजती-सी रह गयी हैं। इस कारण कई स्थलों पर नीरसता का समावेश हो गया है।

इन सब त्रुटियों के बावजूद भी पाठक इसके कुछ गुणों पर पानी नहीं फेर सकता। चरित्र चित्रण, वर्णन-विविधता, मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि और भाषा शैली की रम्यता की दृष्टि से 'मीराँ' को आधुनिक महाकाव्यों की श्रेणी में स्थान देना ही चाहिये।

---

१. वही, सर्ग ६ पृ० ७ १६८

२ देखिये मीराँ, सर्ग २, पृ० २६, सर्ग ७ पृ० १२२, सर्ग १२, पृ०२२६

३ वही, सर्ग २, पृ० २२ सर्ग ४, पृ०७६,, सर्ग ५, पृ० ६१, सर्ग ७, पृ० १२७

११. एकलव्य

इसके यशस्वी प्रणेता डा० रामकुमार वर्मा ने इसे महाकाव्य के रूप में तैयार किया है। 'एकलव्य' का नामकरण प्रधान पात्र के नाम के आधार पर हुआ है। नायक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति है, किन्तु वह उच्चवंशीय नही है। उसमे उदात्त गुणो की प्रचुरता है। महाभारत की ३० श्लोको की कथा को १४ सर्गों में फैला कर डा० वर्मा ने अपनी मौलिक उद्भावनाओ से प्रभावित कर दिया है। नव्योद्भावनाओ को प्राचीन कथानक के साथ इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि उसमे नयी दृष्टि और नवयुग की माँग की पूर्ति दृष्टिगोचर होती है। द्रोणाचार्य के चरित्र पर जो कलक लग रहा था उसका परिमार्जन भी कवि को अभिप्रेत रहा है। इस प्रकार कवि ने कथानायक का चरित्र भी ऊँचा किया है और गुरु-चरित्र पर लगे हुए कलक का परिमार्जन भी किया है।

महाभारत मे एकलव्य के चरित्र मे केवल गुरुभक्ति की उज्ज्वलता ही दृष्टिगत होती है, किन्तु 'एकलव्य' मे गुरुभक्ति के साथ मातृभक्ति और दीन-दलितो के प्रति सहानुभूति भी है।

अनेक प्रसगो की योजना ने इस प्रबन्ध को प्रशस्य बना दिया है। प्रकृति के कुछ चित्र भी सुन्दर बन पड़े हैं।[1] धृतराष्ट्र की राजसभा, राजकुमारों का अस्त्राभ्यास, एकलव्य की साधना, एकलव्य की माता का पुत्र-वियोग आदि प्रसगो मे वर्णन-कौशल के साथ मार्मिकता का परिचय भी मिलता है। कही-कही प्रकृति और मानवहृदय का सुन्दर सामजस्य भी दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति ने कुछ स्थलो पर विविध घटनाओ की पृष्ठभूमि बनाने मे भी योग दिया है। कवि की छायावादी दृष्टि ने कुछ स्थलो पर प्रतीक-योजना को भी प्रोत्साहित किया है। मानवीकरण[2] की योजना भी *कवि-कीर्ति की वृद्धि मे योग दे रही है।*

---

१. देखिये, एकलव्य प्रभात, सन्ध्या, रात्रि, ग्रीष्म, और वर्षा के सक्षिप्त वर्णन।

२. एकलव्य देखता है प्रकृति-किरीटिनी,
पुष्प छींट वाली कसे हरी पत्र-कचुकी।
नीलाम्बर धार कर वायु का प्रतोद ले,
सृष्टि-रथ आगे बढ़ा, आ रही है सुन्दरी॥
—एकलव्य, साधना, पृ० २०१

एकलव्य की रचना अभित्राक्षर स्वच्छन्द छन्दों मे हुई है। महाकाव्य के शास्त्रीय नियमो की प्रणालियो मे कवि मानो भटकता हुआ घूम रहा है। वह नवचेतना की प्रेरणा से महाकाव्य के नायक-सम्बन्धी नियम की उपेक्षा तो कर ही गया है साथ ही उसने छन्दोयोजना-विषयक नियम की अवहेलना भी की है। एक ओर सर्ग-सख्या की पूर्ति, वर्णनो की योजना, प्रसग-व्यवस्था महाकाव्योचित ढग से हुई तो दूसरी ओर उक्त उपेक्षा उसकी प्रतिभा में नवोन्मेष से प्रेरित दीख पड़ती है।

भावपूर्ण विषयानुसारिणी प्रौढ भाषा और अलकारों की उपयुक्त व्यवस्था के होते हुए भी भाषा-शैली मे कुछ दोष भी दिखायी देते हैं। व्याकरणिक एव काव्यशास्त्रीय सदर्भो से कही-कही भाव-दीप्ति दुरूहता से दब गयी है।[1] इसी प्रकार एकलव्य की माता के वियोग-वर्णन मे विरह की दस दशाओं का वर्णन काव्यशास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शनमात्र है, सहजाभिव्यक्ति बाधित हो गयी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि 'एकलव्य' में शास्त्रीय लक्षणों का व्यतिक्रम है। युग-दृष्टि से नायक आदि के सबध मे बदली हुई मान्यताएँ स्वीकार की जा सकती हैं, किन्तु विषय व्यापकता, वैविध्यपूर्ण जीवन की सर्वांगीण व्याख्या और रसात्मकता के अभाव की पूर्ति किसी दृष्टि से सभव नही है। एकलव्य के कथानक के आधार पर कवि महाकाव्य की रचना करने मे सफल सिद्ध नही हुआ है।

१२ उर्मिला

सस्कृत ग्रथों में उर्मिला का उल्लेखमात्र हुआ है। उसके चरित्र की ओर दृष्टि सस्कृत के कवियों की नही गयी, अतएव उससे सम्बधित कथानक के विस्तार का भी कोई प्रश्न नहीं उठता। जैसा कि 'साकेत' के अन्तर्गत दिखाया गया है, नवयुग ने दलितो की ओर दृक्पात करने के साथ-साथ उपेक्षितो पर भी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि डाली और परिणामत साकेत, अगराज, एकलव्य, उर्मिला, यशोधरा आदि रचनाएँ सामने आयी।

उर्मिला की कथावस्तु ६ सर्गो मे विभाजित है। रामकथा की शीतल ऐतिहासिक छाया में 'उर्मिला' की नवीन उद्‌भावनाओ को जन्म लेने का अवसर

---

१ देखिये, एकलव्य, द्वन्द्व-पृ० २५१, प्रदर्शन-पृ० १०२,१०८ आत्मनिवेदन-पृ० ११८,१२२, धारणा पृ० १३६,१४१ साधना-पृ० २०५-६ लाघव-पृ० २४८

प्राप्त हुआ है। जहाँ तक कथावस्तु के विकास का सम्बन्ध है 'उर्मिला' की कथा-वस्तु मे महाकाव्योचित घटना-विस्तार, विविध प्रसगो मे सबध-निर्वाह और कथानक मे धारावाहिकता नही पायी जाती। उर्मिला के अन्तिम तीन सर्गो मे कथा-सूत्र छिन्न हो गया है। चतुर्थ और पचम सर्ग मे केवल विरह वर्णन को स्थान दिया गया है। उनमे घटनाओ का सर्वथा अभाव है। पचम सर्ग मे ब्रज-भाषा-विलास है और दोहा-सोरठा-शैली प्रतिष्ठित हो गयी है। यहाँ प्रबन्ध की गति क्या, नाम भी नही है।

हाँ, उर्मिला के चरित्र-चित्रण मे नवीन जी काफी सफल हुए हैं। उनकी उर्मिला सरलहृदया होने के साथ-साथ बुद्धिमती भी है, भावुक अबला होने के साथ-साथ वीर नारी भी है। उसके चरित्र मे गम्भीरता, धैर्य, त्याग, उत्साह, सहिष्णुता और कर्तव्यपरायणता का अनूठा सामजस्य है।

कथानक की सीमाओ मे नवीन जी ने विविध वर्णनो को स्थान देकर वर्णन-कौशल का परिचय भी दिया है। नगर आदि के चित्रो के साथ प्रकृति के भावपूर्ण चित्रो ने काव्य-सौष्ठव बढने मे अपना पूर्ण योग प्रदान किया है।

नवीन जी अधिकाशत शृ गार के विविध परिपार्श्वों की झाँकियाँ प्रस्तुत करते रहे हैं। वे शृ गार के सयोग और वियोग दोनों पक्षो के चित्रण मे सफल हुए हैं। प्रारम्भ मे उर्मिलागत शृ गार मांसल एव स्थूल दिखायी देता है, किन्तु अन्त में उसने आध्यात्मिक मोड ले लिया है।

उर्मिला की भाषा प्रौढ, भावमयी एव अलकृत है। भावव्यजना प्रसाद-मयी है।

'उर्मिला' मे समुचित घटना-विस्तार का अभाव है। प्रबन्ध-निर्वाह बाधित हो गया है और वैविध्यपूर्ण जीवन की व्याख्याओ का अभाव है, किन्तु मार्मिक प्रसगो की सृष्टि मे चरित्र-चित्रण को सफलता मिली है और उद्देश्य की महानता ने उसे सम्यक् योग दिया है। इसलिए इस कृति को 'सामान्य महा-काव्यों' मे स्थान दिया जा सकता है।

१३ तारकवध

श्री गिरिजादत्त शुक्ल'गिरीश' ने अपनी इस रचना को एक रहस्यवादी महाकाव्य बतलाया है। इसमे व्यक्ति ही नही, सम्पूर्ण समाज परम सत्य मे विलयोन्मुख दृष्टिगोचर हो रहा है। इसका कथानक प्राचीन और पुराण-प्रसिद्ध है। वह तारकासुर के वध से सबद्ध है। प्राचीन पौराणिक कथानक को नयी भाव-भूमिका पर प्रस्तुत करने मे कवि ने बडे कौशल का परिचय दिया है। यह कथा-

नक कई ग्रन्थों की आधार-भूमि बन चुका है। कालिदास के कुमारसंभव और भारतीनन्दनकृत पार्वती की प्रेरणा का स्रोत यही कथानक है। जबकि पूर्ववर्ती काव्यों में तारकवध हिंसात्मक अस्त्रों से दिखाया गया है, गिरीश जी ने उसे (तारकवध) को आसुरी वृत्तियों की पराजय के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने शृंगी ऋषि द्वारा अहिंसात्मक प्रयोगों से तारकासुर के वध के स्थान पर हृदय-परिवर्तन कराते हुए प्राचीन कथानक को युगभावना के मनोरम साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है।

यह कृति मनुष्य की एक बहुत बड़ी समस्या का हल प्रस्तुत करती है। देव, दानव और मनुष्य एक ही परम सत्य के तीन रूप हैं। इन तीनों रूपों के समन्वय से मानव-जीवन की पूर्णता सिद्ध हो सकती है। दानव हेय ही नहीं, प्रेय भी हो सकता है। वह जीवन के समुचित विकास में अपना योग भी दे सकता है। मानव-जीवन में देवत्व और दानवत्व के समन्वय द्वारा मानव-सभ्यता और संस्कृति की जटिल और गम्भीर समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हुए कवि ने मानव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। इस प्रकार प्राचीन निष्प्राण कथानक गांधी-युग के जीवन-दर्शन के बल से नव चेतना से अनुप्राणित हो गया है

शृङ्गी ऋषि इस महाकाव्य के नायक तथा शान्ता नायिका है। दोनों में उदात्त गुणों का प्राचुर्य है। नायक प्रसिद्ध एवं उच्च कुल का है। कथानक के विकास में स्वाभाविकता है। शृङ्गी ऋषि और तारक से सम्बन्धित मुख्य कथा विविध प्रसंगों से दृढ़ सम्बन्ध बनाये हुए है। इस कृति के पात्रों में भी पर्याप्त सजीवता एवं स्वाभाविकता है। १६ सर्गों के इस महाकाव्य में प्रकृति के मनोरम दृश्य प्रतिफलित हुए हैं। आश्रम के वर्णन में भी प्रकृति का सहज-सौंदर्य मानों राशि-राशि बिखर पड़ा है। ग्रीष्म, पावस, शरद, वसन्त आदि ऋतुओं के वर्णन भी बड़े सजीव हैं। अष्टम सर्ग का पावस-चित्रण एवं उन्नीसवें का वसन्त-चित्रण आँखों में मनोरमता की प्रतिमा निर्मित कर देता है।

यों तो 'तारकवध' में और भी कई रसों का विनियोग है, किन्तु शृंगार, शान्त और वीर प्रमुख हैं। शृंगार के दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है। स्थान-स्थान पर उत्साह-भाव में रति आदि के सहयोग से अपनी प्रमुखता सिद्ध करके वीर रस की प्रधानता स्थापित की है।

अलंकारों के प्रयोग से भाषा-सौन्दर्य निखर गया है। प्रौढ़, प्रांजल और बोधगम्य भाषा काव्य की विशेषता है। कुछ अलंकारों के प्रयोगों (जैसे–उपमा,

रूपक, उत्प्रेक्षा आदि) में कवि की मनोवृत्ति बहुत रमी है। छन्दों की विविधता भी महाकाव्य की दिशा का परिचय दे रही है।

युग की अनेक समस्याओं को लेकर सस्कृति के अनेक परिपार्श्वों को मगलमयी परिस्थितियों मे प्रस्तुत करके कवि ने युग-जीवन के नये मोडों की आदशमयी प्रस्थापना की है। इस कृति में गांधीवाद और साम्यवाद का स्वस्थ सम्मिलित रूप उभर कर सामने आया है। इन अनेक दृष्टिकोणो से यह रचना महाकाव्य के पद को पाने का अधिकार रखती है।

१४ प्रताप महाकाव्य — यह रचना इतिहास प्रसिद्ध भारतवीरशिरोमणि परम प्रणरक्षक महाराणा प्रताप की यशोगाथा लेकर लिखी गई है। इसके यशस्वी रचनाकार, ठाकुर रणवीरसिंह ने इसको महाकाव्य की अभिधा प्रदान की है। प्राचीन भारतीय महाकाव्य के लक्षणों के अनुरूप इसमे आठ से अधिक सर्ग हैं। कवि ने इस रचना को इक्कीस सर्गों मे आबद्ध किया है। नियमानुसार छन्द-व्यवस्था की गई है। नायक को धीरोदात्त गुणो से विभूषित किया गया है। प्रसाद और ओज गुणो के सहयोग से वीररस प्रधान है। भाषा-शैली सरल, सरस और आकर्षक है। अनेक प्रसग मार्मिकता से युक्त होकर प्रधान कथानक को समुचित सहयोग प्रदान कर रहे हैं। कितने ही वर्णन बड़े मोहक बन पड़े हैं। नियम के अनुसार रचना का प्रारम्भ मगलाचरण से और उपसहार सत् कामनाओ से हुआ है।

इन सब गुणो के होते हुए भी हमे इस प्रबध के कथानक में महाकाव्योचित विस्तार और जीवन-वैविध्य नहीं मिलता। चरित्र-चित्रण भी, प्रताप को छोड़कर, महाकाव्योचित गरिमा प्राप्त नही कर सका है। पढने पर विज्ञ पाठक इसके महाकाव्यत्व से तुष्ट नही हो पाता है। अतएव इसे हम तथाकथित महाकाव्यो मे ही स्थान दे सकते हैं।

१५. सेनापति कर्ण — इस कृति के प्रणेता श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र हैं। यह एक अधूरी काव्य-कृति है। इसमे महारथी कर्ण को नायकत्व प्रदान किया गया है, किन्तु उसके चरित्र का सांगोपाग चित्र प्रस्तुत नही हो सका। इतने पर भी कवि इस महान् चरित्र की उदारता, शूरता, आदर्श मैत्री आदि विशेषताओ के मौलिक चित्र प्रस्तुत करने मे सफल हुआ है। अधूरी होने पर भी इस रचना मे कवि-प्रतिभा का उत्कर्ष तो दर्शनीय हो जाता है। इसके महाकाव्यत्व के सम्बन्ध मे कुछ निर्णय देना असम्भव है।

(ग) तथाकथित महाकाव्य

इस वर्ग को प्रस्तुत करने की आवश्यकता इसलिए पड़ी है कि वास्तव मे मेरी दृष्टि मे तो ये महाकाव्य हैं नही, किन्तु कुछ लोगों ने इन्हें महाकाव्य स्वीकार किया है। किसी-किसी कवि ने ही अपनी कृति को महाकाव्य घोषित कर रखा है। ऐसी स्थिति में इनके सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करती हुई मैं किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न कर रही हूँ।

मेरी यह मान्यता है कि बाह्य उपकरणों के जुटा देने से किसी काव्य-कृति को महाकाव्य घोषित करना वैसा ही अनर्थकर कार्य होगा जैसा सिंहचर्म मे आवृत गर्दभ को सिंह कहना। सर्ग-संख्या और छंद-योजना आदि से सम्बधित लक्षणों के निर्वाह से जिन रचनाओं को महाकाव्य कह डाला गया है उनमे शाश्वत एव अनिवार्य लक्षणों का अनुपालन नही हुआ है। इसलिए प्रस्तुत-प्रबन्ध-लेखिका ने इस स्थान पर उनकी समीक्षा प्रस्तुत की है।

१ रामचरित-चिन्तामणि

इसके प्रणेता श्री रामचरित उपाध्याय हैं। यह द्विवेदी-युगीन काव्य-कृति है। इसका प्रणयन प्रियप्रवास के पश्चात् हुआ। सस्कृतगर्भित खडीबोली में मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के मिश्राक्षर छन्दो मे इसकी रचना हुई है।

इस कृति में भारतीय महाकाव्य-विषयक लक्षणों के अनुसरण की चेष्टा की गयी है। इसका कथानक रामकथा से सम्बधित है, अतएव लोकविश्रुत है। राम नायक हैं जो धीरोदात्त गुणो से सम्पन्न हैं। सर्ग विभाजन, विविध-दृश्य-व्यवस्था एव प्रसग-विनिवेश महाकाव्य के स्वरूप के अनुरूप हुआ है, किन्तु इसमें स्थायी और विशिष्ट सिद्धान्तों का अनुपालन नही हुआ।

इसका कथानक सुगठित नहीं है। मुख्य कथा तथा प्रासगिक घटनाओं में अन्विति नहीं है। प्रसगों को अति सक्षेप में प्रस्तुत करके कवि ने मानो एक भार टाला है, चरित्र-चित्रण भी महाकाव्योचित नहीं हुआ। ईश्वर के रूप में स्वीकृत राम का चरित्र सहज रूप से विकास को प्राप्त नहीं हुआ। राम के आदर्श-गुणों की प्रतिष्ठा न होने से चरित्र-चित्रण उज्ज्वल प्रकाश प्राप्त नही कर सका है। राम कही उपदेशक से दीख पड़े हैं और कही अनुतापी के रूप मे प्रस्तुत होते हैं।[1] यदि राम के चरित्र का मूल्याकन इसी रचना के आधार पर किया जाय तो चरित्र मे अनेक विकृतियाँ और असगतियाँ दृष्टिगोचर होंगी।

---

१. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४५८

इसी प्रकार सीता, भरत, लक्ष्मण आदि की चारित्रिक विशेषताएँ भी विकसित हो कर उभर नहीं पायी हैं।

यह रचना नीरस प्रसगो की एक प्रदर्शनी सी बन गयी है। इसके कई मार्मिक अ श भी रसोद्रेक करने मे अत्यन्त दुर्बल दिखायी देते हैं। ऐसा लगता है कि कवि को मार्मिक स्थलो की पहचान ही नही है, फिर सौन्दर्य सृजन की चेष्टा का प्रश्न ही कहाँ उठता है? वाल्मीकिरामायण और रामचरितमानस मे जिन प्रसगो मे महाकाव्योचित कवित्व और रसात्मकता विद्यमान है वे इस रचना मे नीरस और प्रभावहीन हैं। सीता-स्वयंवर, रामवन गमन, दशरथ-मरण भरत-विलाप, सीता-परित्याग आदि मार्मिक स्थलो पर कवि की भावुकता सोती सी रह गयी है।

यहाँ प्रकृति-वर्णन केवल प्रकृति-वर्णन के लिए ही दीख पड़ते हैं। ऋतुएँ चित्रित हुई हैं, किन्तु वर्णन मे हृदय की पकड़ का अभाव है। न तो उनमे महाकाव्योचित गम्भीरता है और न मनोहरता। उपदेशात्मकता ने तो कहीं-कहीं प्रकृति-छटा का मानो गला ही घोट डाला है। परम्परागत प्रकृति-वर्णन रूखेपन का भडार-सा बन गये हैं।

अ लकारो की स्वाभाविकता को पांडित्य-प्रदर्शन ने कहीं-कहीं बहुत बुरी तरह दबोच डाला है। जहाँ अ लकार-विनिवेश प्रयत्न-जन्य नही है, वहाँ सरसता अवश्य आयी है, किन्तु सामान्य रूप से भाषा-शैली की गरिमा अ ल-कारो की अस्वाभाविकता से आहत हो गयी है। अनेक स्थलों पर यमक और अनुप्रास की यत्नज योजना ने काव्य के सहज सौन्दर्य को बड़ा भारी धक्का दिया है।

२ श्री रामचन्द्रोदय काव्य श्री रामनाथ ज्योतिषी की यह कृति ब्रजभाषा की रचना है। परम्परागत रामकथा पर आधारित यह काव्य सोलह कलाओं मे विभक्त है।

इसका कथानक लोकविश्रुत, नायक धीरोदात्त, शृ गार-रस प्रधान और वर्णनो की विविधता है, किन्तु महाकाव्योचित प्रबन्धात्मकता का अभाव खटकता है। कथानक के विविध अ ग समुचित रूप से सम्बद्ध नही हैं। इसकी प्रथम आठ कलाओ मे तो कथा-वस्तु का कुछ निर्वाह हुआ भी है, परन्तु अन्तिम आठ कलाओ मे तो प्रबन्धात्मकता बिल्कुल लुप्त हो गयी है। इस भाग में इसको मुक्तक से अधिक मान्यता नहीं दी जा सकती। स्थल-स्थल पर कथा-सूत्र छिन्न मिलता है जिससे रामचन्द्रिका के कथासूत्र का स्मरण आ जाता है।

चरित्र-चित्रण भी एक प्रकार से असफल ही रहा है। इस कृति मे राम और सीता को साधारण प्रेमी–प्रेमिका के स्तर पर प्रतिष्ठित करके कवि ने एक बड़े सास्कृतिक आदर्श को उपेक्षित कर दिया है। पुष्पवाटिका की सीता का चित्र एक प्रेयसी के चित्र से भिन्न नही है :—

> संग सलीन के लाज-भरी छलकी वह प्रीति प्रतीत समूली
> मैन जके से थके रहिगे अंग अङ्गन जोतिसो बाटिका फूली
> बात अजान की भांति करैं तनको तनको न सँभार अतूली
> राम सुजान को देखि छटा, सुधि जानकी जान की, जानकी भूली[1]

इस काव्य मे नगर, नदी, उपवन, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि अनेक वर्णनों का प्राचुर्य है; किन्तु उनमे मोहकता नही है, वे केवल खानापूरी करते-से दिखायी देते हैं। उनमें महाकाव्योचित गरिमा तथा रोचकता का अभाव है। हाँ, कवि-कल्पना की उत्कृष्ट खेला इनमें अवश्य दिखायी दे जाती है, जिससे रीतिकालीन शृंगारी कवियों की शैली सामने आ जाती है। सच तो यह है कि इस रचना को महाकाव्यत्व का गौरव न मिल कर, इसके कवि को शृंगारी मनोवृत्ति और पाडित्य-प्रदर्शन का अवसर कहीं-कहीं अच्छा मिल गया है। रामकथा के साथ यह नवीनता कृष्ण-काव्य को सामने ला देती है।

३. हल्दीघाटी इसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध, सत्रह सर्गों मे विभक्त, नायक धीरोदात्त गुणो से युक्त महाराणा प्रताप, (जो इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुष हैं) और रस 'वीर' है। स्वय कवि ने इसे 'वीर-रस-प्रधान आदि महाकाव्य' घोषित किया है, सच तो यह है कि पाण्डेय जी इसे महाकाव्योचित गरिमा के कारण नही, प्रत्युत वीरशिरोमणि महाराणा प्रताप की यशोगाथा के कारण महाकाव्य मान बैठे हैं। एक स्थान पर तो भूमिका मे कवि स्वय एक संशयात्मक स्वर मे कह गया है :—

'महान् ! इन्ही कतिपय घटनाओं को मैने कविता का रूप दिया है। यह खड काव्य है अथवा महाकाव्य इसमे सदेह है, लेकिन तू तो नि.सदेह महाकाव्य है। तेरे जीवन की एक-एक घटना ससार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्व के लिए गर्व की वस्तु।[2]

---

१. देखिये, श्री रामचन्द्रोदय-काव्य, कला ५, पृ० ६७
२. हल्दीघाटी, भूमिका, पृ० २२

इससे स्पष्ट है कि कवि ने हल्दीघाटी के महाकाव्यत्व की घोषणा इसके नायक की महानता के आधार पर ही की है। वह इसके 'महाकाव्यत्व' के सम्बन्ध मे स्वय सदेह करता है।

इस रचना मे कवि ने महाराणा प्रताप के जीवन की युद्ध से सम्बन्धित घटनाओ को ही अपनाया है, उनके जीवन के अन्य पहलुओ को उन्होने छोड दिया है। इसलिए रचना मे जीवन के सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत नहीं हो सके हैं। यह अभाव महाकाव्यत्व के लिए घातक है। फिर भी इस रचना के उन कवित्वमय स्थलो की उपेक्षा नही की जा सकती जो इतिवृत्तात्मक प्रसगो के बीच-बीच मे विद्यमान हैं। वीर रस का परिपाक और प्रकृति के कतिपय चित्र रचना की विशेषता हैं। भाषा की सजीवता, मुहावरो का सुयोग, ओजस्विनी अभिव्यक्ति और उर्दू की मर्सिया-पद्धति से प्रभावित शैली ने कृति को अधिक रोचक तो बना दिया है, किन्तु इनसे कथावस्तु की सुसबद्ध योजना, जीवन की सर्वांगीणता का प्रतिरूपण और प्रवाहपूर्ण रसात्मकता आदि के अभावो की पूर्ति नहीं हो सकी है। इसलिए 'हल्दीघाटी' को हम महाकाव्यो मे स्थान नही दे सकते।

४. श्री कृष्ण-चरितमानस

रामचरितमानस की भाषा-शैली के अनुकरण मे इस कृति का प्रणयन हुआ है। श्री प्रद्युम्न दु गा ने श्री कृष्ण के चरित को इस काव्य का विषय बनाया है। इसमे कृष्ण-जीवन को समग्र रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न है, इसलिए इसके कृष्ण को हम व्रज-जन-प्रिय आदर्श महापुरुष, असुरसंहारक वीर, राजनयकुशल नेता और धर्म-सस्थापक के रूप मे देखते हैं। यह कृति 'कृष्णायन' से मिलती-जुलती है, किन्तु कृष्णायनकार ने कही भी श्री 'कृष्णचरितमानस' का अन्धानुकरण नही किया।

रामचरित मानस की भाँति यह कृति भी सात कांडो मे विभक्त है। इसमे दोहा-चौपाई-शैली को अपनाया गया है। कथावस्तु के प्रसार में इतिवृत्तात्मकतामात्र है। इसमे महाकाव्योचित चरित्र-चित्रण-कौशल, रसात्मक अभिज्ञान, वर्णन-विविधता, और भाषा-शैली की गरिमा दृष्टिगोचर नही होती। इसमे कृष्ण के जीवन के विविध पक्षो पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयत्न अवश्य है, किन्तु क्षेत्रीय सकीर्णता के कारण कृष्णचरित का सर्वांगीण विकास नही हो सका है। चरित्र के इतिवृत्तात्मक विस्तार ने महाकाव्यत्व की सम्भावनाओं पर बड़ा आघात किया है। पात्रों के चरित्र मे परिस्थितियों को मनो-

वैज्ञानिक आधार नहीं मिल सका है। इसमें न तो कथावस्तु के मर्मस्थलों को पहचानने की चेष्टा है और न व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण है। अतएव इसमें महाकाव्योचित गरिमा भी नहीं है और मार्मिक प्रसंगों में भी विवरणात्मकता के सन्निवेश ने सरसता को भी अपहृत कर लिया है। कृष्ण-मथुरागमन, उद्धव-गोपी संवाद, रुक्मिणी-परिणय, द्रौपदी-स्वयंवर, कृष्ण-सुदामा-मिलन, द्रौपदी-चीर-हरण आदि प्रसंग भी नीरस बन गये हैं। विविध-कथा-प्रसंगों में मोहक वर्णनों के सन्निवेश के लिए अच्छा अवसर था, किन्तु कवि का मन उनमें बहुत कम रमा है और वस्तु-परिगणना[1] में उलझ कर युक्तवोचित भूल-भुलैयों में फँस गया है।

इस कृति की भाषा भी प्रौढ़ एवं प्रांजल नहीं है, अवधी भाषा पर अधिकार न होने पर भी, कवि 'अवधी' को अपना बैठा है। लगता है वह अज्ञता के धक्के खा रहा हो। स्थल-स्थल पर ब्रज, खड़ी बोली और तत्सम शब्दावली के विलक्षण मिश्रण से भाषा की स्वाभाविकता क्षीण हो गयी। कहीं-कहीं तो शब्दों को भाषा और छन्दों के ढाँचे में लाने के लिए कवि ने उन पर तोड़ फोड़ का हथौड़ा भी चलाया है।

धार्मिक भावना की प्रधानता ने रचना के काव्य-सौन्दर्य को उभरने नहीं दिया।

इन सब कारणों से हम श्रीकृष्णचरित-मानस को एक साधारण श्रेणी का वर्णनप्रधान प्रबन्धकाव्य ही कह सकते हैं, इसे महाकाव्य कहना कदापि उचित न होगा।

५ कुरुक्षेत्र

उर्वशी और परशुराम की प्रतीक्षा की भाँति 'कुरुक्षेत्र' में भी युग-समस्या की प्रेरणा रही है। 'कुरुक्षेत्र' की मूल समस्या आज की सार्वभौम समस्या है। पढ़ने पर ऐसा आभासित होता है कि कुछ पात्र और कुछ घटनाएँ सामने प्रस्तुत हैं, किन्तु वस्तुत इन दोनों से कवि के विचारों का ही पोषण होता है। इनके माध्यम से समस्या प्रस्तुत और विकसित होती है। यदि कवि कुछ घटनाओं का संकेत न करता तो युधिष्ठिर और भीष्म का अस्तित्व पाषाण-प्रतिमाओं से अधिक न होता।

---

१. उदाहरण के लिए देखिये, श्रीकृष्णचरितमानस, पंचम कांड, पृ० १७२

इससे स्पष्ट है कि कवि ने हल्दीघाटी के महाकाव्यत्व की घोषणा इसके नायक की महानता के आधार पर ही की है। वह इसके 'महाकाव्यत्व' के सम्बन्ध मे स्वय सदेह करता है।

इस रचना मे कवि ने महाराणा प्रताप के जीवन की युद्ध से सम्बन्धित घटनाओं को ही अपनाया है, उनके जीवन के अन्य पहलुओ को उन्होने छोड दिया है। इसलिए रचना में जोवन के सर्वागीण चित्र प्रस्तुत नहीं हो सके हैं। यह अभाव महाकाव्यत्व के लिए घातक है। फिर भी इस रचना के उन कवित्वमय स्थलों की उपेक्षा नही की जा सकती जो इतिवृत्तात्मक प्रसगों के बीच-बीच मे विद्यमान हैं। वीर रस का परिपाक और प्रकृति के कतिपय चित्र रचना की विशेषता हैं। भाषा की सजीवता, मुहावरो का सुयोग, ओजस्विनी अभिव्यक्ति और उर्दू की मसिया-पद्धति से प्रभावित शैली ने कृति को अधिक रोचक तो बना दिया है, किन्तु इनसे कथावस्तु की सुसबद्ध योजना, जीवन की सर्वागीणता का प्रतिरूपण और प्रवाहपूर्ण रसात्मकता आदि के अभावो की पूर्ति नही हो सकी है। इसलिए 'हल्दीघाटी' को हम महाकाव्यो मे स्थान नही दे सकते।

४. श्री कृष्ण-चरितमानस

रामचरितमानस की भाषा-शैली के अनुकरण मे इस कृति का प्रणयन हुआ है। श्री प्रद्युम्न दुगा ने श्री कृष्ण के चरित को इस काव्य का विषय बनाया है। इसमे कृष्ण-जीवन को समग्र रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न है, इसलिए इसके कृष्ण को हम व्रज-जन-प्रिय आदर्श महापुरुष, असुरसंहारक वीर, राजनयकुशल नेता और धर्म-सस्थापक के रूप मे देखते हैं। यह कृति 'कृष्णायन' से मिलती-जुलती है, किन्तु कृष्णायनकार ने कहीं भी श्री 'कृष्णचरितमानस' का अन्धानुकरण नही किया।

रामचरित मानस की भाँति यह कृति भी सात कांडों मे विभक्त है। इसमे दोहा-चौपाई-शैली को अपनाया गया है। कथावस्तु के प्रसार मे इतिवृत्तात्मकतामात्र है। इसमे महाकाव्योचित चरित्र-चित्रण-कौशल, रसात्मक अभिव्यञ्जना, वर्णन-विविधता, और भाषा-शैली की गरिमा दृष्टिगोचर नही होती। इसमे कृष्ण के जीवन के विविध पक्षो पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयत्न अवश्य है, किन्तु क्षेत्रीय सवोर्णता के कारण कृष्णचरित का सर्वांगीण विकास नही हो सका है। चरित्र के इतिवृत्तात्मक विस्तार ने महाकाव्यत्व की सभावनाओ पर बडा आघात किया है। पात्रो के चरित्र मे परिस्थितियों को मनो-

वैज्ञानिक आधार नहीं मिल सका है। इसमें न तो कथावस्तु के मर्मस्थलों को पहचानने की चेष्टा है और न व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण है। अतएव इसमें महाकाव्योचित गरिमा भी नहीं है और मार्मिक प्रसंगो में भी विवरणात्मकता के सन्निवेश ने सरसता को भी अपहृत कर लिया है। कृष्ण-मथुरागमन, उद्धव-गोपी संवाद, रुक्मिणी-परिणय, द्रौपदी-स्वयंवर, कृष्ण-सुदामा-मिलन, द्रौपदी-चीर-हरण आदि प्रसंग भी नीरस बन गये हैं। विविध-कथा-प्रसंगों में मोहक वर्णनों के सन्निवेश के लिए अच्छा अवसर था, किन्तु कवि का मन उनमें बहुत कम रमा है और वस्तु-परिगणना[1] में उलझ कर मुक्तकोचित भूल-भुलैयों में फँस गया है।

इस कृति की भाषा भी प्रौढ़ एवं प्रांजल नहीं है, प्रबंधी भाषा पर अधिकार न होने पर भी, कवि 'अवधी' को अपना बैठा है। लगता है वह अज्ञता के धक्के खा रहा हो। स्थल-स्थल पर ब्रज, खड़ी बोली और तत्सम शब्दावली के विलक्षण मिश्रण से भाषा की स्वाभाविकता क्षीण हो गयी। कहीं-कहीं तो शब्दों को भाषा और छन्दों के ढाँचे में लाने के लिए कवि ने उन पर तोड़ फोड़ का हथौड़ा भी चलाया है।

धार्मिक भावना की प्रधानता ने रचना के काव्य-सौन्दर्य को उभरने नहीं दिया।

इन सब कारणों से हम श्रीकृष्णचरित-मानस को एक साधारण श्रेणी का वर्णनप्रधान प्रबन्धकाव्य ही कह सकते हैं, इसे महाकाव्य कहना कदापि उचित न होगा।

५ कुरुक्षेत्र

उर्वशी और परशुराम की प्रतीक्षा की भाँति 'कुरुक्षेत्र' में भी युग-समस्या की प्रेरणा रही है। 'कुरुक्षेत्र' की मूल समस्या आज की सार्वभौम समस्या है। पढ़ने पर ऐसा आभासित होता है कि कुछ पात्र और कुछ घटनाएँ सामने प्रस्तुत हैं, किन्तु वस्तुतः इन दोनों से कवि के विचारों का ही पोषण होता है। इनके माध्यम से समस्या प्रस्तुत और विकसित होती है। यदि कवि कुछ घटनाओं का संकेत न करता तो युधिष्ठिर और भीष्म का अस्तित्व पाषाण-प्रतिमाओं से अधिक न होता।

---

१. उदाहरण के लिए देखिये, श्रीकृष्णचरितमानस, पंचम कांड, पृ० १७२

रचना का नाम बहुत अर्थ-गर्भित है। स्थान से अधिक कुरुक्षेत्र का घटना-संकेत बहुत महत्त्वपूर्ण है। युद्ध का आदि भी समस्या है और अन्त भी समस्या है। कुरुक्षेत्र का कवि युद्ध को सार्वकालिक अनिवार्यता स्वीकार नही करता, किन्तु वह उसे आधुनिक युग की अनिवार्य समस्या अवश्य मानता है।

इस समस्या के अनेक पहलुओं की परीक्षा करता हुआ कवि मानव-जीवन की अनेक समस्याओं का संकलन कर लेता है। वस्तुतः कवि का लक्ष्य *महाभारत के किसी प्रसंग का वर्णन करना नही है और न वह किसी पात्र के* चरित्र के आकर्षण से ही 'कुरुक्षेत्र' लिखने के लिए प्रेरित हुआ है, वरन् युग ने कवि की चेतना को इतना अभिभूत कर लिया है कि वह उसका प्रेरणा-स्रोत बन गया है।

कुरुक्षेत्र एक सर्गबद्ध वैचारिक प्रबंध माना जाता है। इसमें संदेह नही कि इस कृति मे व्यावहारिक जीवन के अनेक पहलू उत्क्षिप्त हुए हैं, जिनमे जीवन दर्शन का महत्त्वपूर्ण रूप पाठक के समक्ष आ जाता है, किन्तु जीवन-दर्शन की धरा पर कवि की भावोर्मियों का मूल्यांकन करना कुरुक्षेत्र के कवित्व को अस्वीकार करना है। नीचे के उदाहरण से इसकी अवगति करने की चेष्टा की जाती है —

> पापी कौन ? मनुज से उसका न्याय चुराने वाला ?
> याकि न्याय खोजते विघ्न का शीश उड़ाने वाला ?[१]

इसे पढ़ कर पाठक की अनुभूति सहानुभूति और परानुभूति मे विभक्त हो जाती है, पाठक के मन मे न्याय चोर के प्रति क्षोभ और घृणा का बवंडर उठ खड़ा होता है। न्याय और अन्याय विचारों की कठोर भूमि से ऊपर भाव की कोमल भूमिका पर प्रतिष्ठित हैं जिससे जीवन-दर्शन भावाभिव्यंजना मे ऐसा घुल-मिल गया है कि वह हमारे मन मे सिहरन पैदा कर देता है। इसमे रस का परिपुष्ट रूप हमारे सामने नही आता, कहीं कहीं उत्साह, घृणा, दया, आक्रोश, भय आदि भाव उभर कर रह जाते हैं। रस परिपाक की स्थिति नहीं होती इसलिए अधिकांश स्थल रसाभास की स्थिति तक ही सीमित हैं।

यदि इस काव्य को चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखें तो हमे निराश ही होना पड़ेगा। इस कृति मे वस्तु का वह आश्रय नही है जिसका विन्यास पात्रों की गतिशीलता से होता है और जिसमे चरित्र विकास के लिए संघर्ष की घाटियाँ पार करनी पड़ती हैं। संघर्ष की जिस चिनगारी से इस कृति का 'अथोद्‌भव' होता

१. कुरुक्षेत्र, पृ० ३७

; वह मन की मन में ही बुझ जाती है। जीवन मे प्रत्यक्ष होने के स्थान पर वह मन की उड़ती हुई भस्म मे ही एक अंगड़ाई लेकर रह जाती है। जर्जर वजय विशीर्ण आकांक्षाओं को सहला कर जिस घुटे निर्वेद को व्यक्त करती है उसके अर्थ में आगे बढ़ने के लिए कोई गुंजाइश नही है।

युधिष्ठिर की निर्वेदापन्न स्थिति की ऐतिहासिक पीठिका मे ही संघर्ष संकुल व्यापारों के लिए कोई अवकाश नही था और न महाभारत को दुहराना ही कवि का उद्देश्य था। कवि के सामने उसका मौलिक कथ्य था। युधिष्ठिर और भीष्म के प्रसग के बिना भी उसकी अभिव्यक्ति मे कोई अन्तर न आता, किन्तु प्रबन्ध की आकांक्षा ने कवि के विचारों को प्रसग-सम्पृक्त होने के लिए प्रेरित किया है।

कवि ने युधिष्ठिर और भीष्म के प्रसंग को लिया अवश्य है, किन्तु प्रबन्ध-रचना के लिए वह बहाना-भर है; दोनों पात्रों मे न कोई गति है, न चेष्टा है। विचारों को कसौटी पर चढ़ाने के लिए—प्रामाणिकता के परिपार्श्व मे रखने के लिए युधिष्ठिर और भीष्म का सहारा नही लिया गया, सहारा लिया गया है विचारों को सूत्रबद्ध करने के लिए। महाभारत के जो सदर्भ कुरुक्षेत्र मे दिए गये हैं उनसे न तो प्रबन्धत्व की पुष्टि होती है और न पात्रों के चरित्र-विकास का ही कोई क्रम स्पष्ट होता है।

सात सर्गों से इसे प्रबन्धत्व नही मिल पाया है। छठा सर्ग किसलिए रखा गया है, यह भी एक समस्या है। इसमे कथावस्तु के अभाव के साथ-साथ रस-परिपाक का अभाव भी खटकता है। इसमे न चारित्रिक गरिमा है, न प्रासगिक सुषमाएँ हैं। घटना-वैचित्र्य का तो यहाँ कोई प्रश्न ही नही है। युद्ध के सिवा जीवन के अन्य परिपार्श्वों की घोर उपेक्षा भी दिखायी देती है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र मे महाकाव्योचित तत्त्वों का अभाव ही दिखायी देता है। हम इसे 'वैचारिक काव्य-निबन्ध' की ही अभिधा दे सकते हैं, प्रबन्ध काव्य की नही।

६. आर्यावर्त

श्री मोहनलाल महतो कृत 'आर्यावर्त' तेरह सर्गों मे विभक्त है। इसमें महाराज पृथ्वीराज और चन्द्र कवि के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का प्रतिरूपण किया गया है। ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना-रँग में रँग कर कवि ने उन्हें हृदयग्राही और प्रभावशाली बनाने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है। इसकी रचना अमित्राक्षर स्वच्छन्द छंदों में की गयी है।

इस कृति मे युग के नवोन्मेष की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। राष्ट्रीय विचारो एव आर्य-सस्कृति के सुन्दर उदात्त आदर्शों को इस रचना मे प्रमुख स्थान मिला है। वस्तुवर्णन भी गम्भीर है। अनेक स्थलो पर उच्चकोटि का काव्य सौन्दर्य भी दृष्टिगत होता है। भाषाशैली मे रीतिबद्ध महाकाव्यो की परम्परा न होकर नवीन प्रगतिशील दृष्टिकोण की झाँकी मिलती है।[1]

इन सब गुणो के कारण श्री रामदोहन मिश्र ने आर्यावर्त की भूमिका मे इसे महाकाव्य घोषित किया है। मेरी दृष्टि मे इस रचना मे 'चन्द्र' को, जो नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है, महाकाव्योचित प्राधान्य नही मिला। कई सर्गों मे तो उसको गौण स्थान ही मिला है। दूसरे, चौथे, आठवें तथा नवें सर्ग मे चन्द्र का कही उल्लेख तक नही है। कुछ अन्य सर्गों मे भी उसके नायकत्व की उपेक्षा है। चन्द्र न तो विविध परिस्थितियों मे प्रकट होता है और न उनका सामना करता हुआ लक्ष्य की ओर बढता दिखायी देता है।

इसके अतिरिक्त चरित्र-चित्रण भी दोषपूर्ण है। न जाने क्यो कवि ने गोरी और जयचन्द के चरित्र मे भी दोषो का अभाव ही दिखाया है। इसलिए प्रतिनायक की सर्जना सदोष है। विविध परिस्थितियो के अभाव मे पात्रो की मनोदशा का वैविध्यपूर्ण चित्र भी इस रचना मे लुप्त है। जीवन का जो चित्र इसमे चित्रित किया गया है उसमे व्यापकता एव सर्वांगसपन्नता का अभाव है। इस कारण इस कृति को महाकाव्य-पद देना उचित नही है।

७. जौहर

'जौहर' एक नायिका-प्रधान प्रबन्ध-रचना है। इतिहास-प्रसिद्ध रानी पद्मिनी इसकी नायिका है। इसकी कथावस्तु इक्कीस चिनगारियो मे विभक्त है।

जौहर मे वीर और करुण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। प्रकृति-चित्र भी बडे मोहक और प्रभावशाली बन पडे है। चन्द्रोदय, अन्ध निशा, ग्रीष्म, वसन्त आदि के चित्रों ने काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि में समुचित योग दिया है।

भाषा मुहावरेदार, भावानुसारिणी और प्रवाहमयी खडी बोली है। छन्दो की योजना भी विषयानुकूल है।

वस्तुतः इस काव्य की रचना महाकाव्य के परंपरागत लक्षणो को ध्यान में रखकर की गई है और स्वय कवि ने इसे वीर-करुण-रस-सिक्त अद्वितीय महा-

---

१. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४६६

काव्य कहा है, किन्तु क्या हम महाकाव्य के मार्ग में आने वाली अनेक कमियों को भुला सकते हैं ?

चरित्र-विकास में स्वाभाविकता नहीं है। आखेट के समय पद्मिनी के चितारोहण के सम्बंध में भविष्यवाणी सुनकर रतनसिंह का मूर्च्छित होकर गिर पड़ना,[1] चिता पर जलने के लिए तैयार पद्मिनी के अन्तर में रतिभाव का उदय होना,[2] तथा चित्तौड़ के किले में चारों ओर बिखरी लाशों के बीच खड़े अलाउद्दीन के हृदय में कामवासना की तृप्ति के लिए पद्मिनी को प्राप्त करने की विकलता[3] आदि वर्णन बड़े अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। रतनसिंह के चरित्र की विशेषताएँ उभरकर पाठक के सामने नहीं आ पायी हैं। नीरसता और इतिवृत्तात्मकता से भी इसके कई प्रसंग और वर्णन दूषित हैं।

पद्मिनी का जीवन सिकुड़ा-सा रह गया है। जीवन के विविध अंगों को प्रकाश नहीं मिला है। महाकाव्योचित समग्र जीवन की उपेक्षा इस रचना में बड़ी खटकती रही है। इन सब कारणों से हम इसे महाकाव्य नहीं कह सकते।

८. महामानव

श्री ठाकुरप्रसाद सिंह ने इस कृति में महात्मा गांधी को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया है। महात्मा गांधी लोक-विश्रुत महापुरुष हैं, इनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ ही इस कृति की वस्तु-कला में योग दे रही हैं। स्वयं श्री सिंह ने इसे 'जनजागरण की महागाथा' कहा है।

इसका कथानक १५ सर्गों में विभाजित है किन्तु उसकी प्रसंगयोजना और सम्बन्ध-निर्वाह दोषपूर्ण हैं। नायक के चारित्रिक विकास में कुछ कमियाँ हैं। कवि गांधी जी के जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है। कथा के मार्मिक अंश उपेक्षित हैं। संभवतः कवि उनकी कल्पना भी नहीं कर पाया। महाकाव्योचित वस्तुवर्णन और प्रकृति-चित्रण भी प्रभावग्रस्त हैं। काव्य-सौन्दर्य एवं रसात्मकता का अभाव कवि की असफलता नहीं तो क्या है ?

निष्कर्ष यह है कि शृंखलाहीन कथानक, अस्वाभाविक चरित्र-चित्रण, मार्मिक स्थलों के अभाव और रसात्मकता की हीनता के कारण हम 'महामानव' को महाकाव्य के पद पर कभी प्रतिष्ठित नहीं कर सकते।

---

१. जौहर, चिनगारी ४, पृ० २१
२. वही, चिनगारी १५, पृ० ८६
३ वही, चिनगारी, २० पृ० ११२

नूरजहाँ के यशस्वी कवि श्री गुरुभक्तसिंह की यह दूसरी रचना है।

९. विक्रमादित्य विक्रमादित्य में विख्यात भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय को नायक पद प्रदान किया गया है। ध्रुवदेवी इसकी नायिका है। कथानक ४४ भागो मे विभक्त है। इसके कथानक में धारावाहिकता नही है। कथोपकथनों की अधिकता तथा विस्तीर्णता कथा-प्रवाह में बाधक सिद्ध हुई है। क्षत्रपकुमारी वीणा और वीरसेन के प्रसग चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी की मूलकथा से अन्वित नही हो सके हैं। चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता बाधित हो गयी है, ध्रुवदेवी का प्रेम एकांगी बन गया है। ध्रुवदेवी के स्वभाव का विभाजन-सा हो गया है। आरम्भ में वह विलासिनी के रूप मे दिखाई गयी है, किन्तु अन्त मे वह एक राष्ट्र-निर्मात्री वीरागना के रूप में चित्रित की गयी है। चन्द्रगुप्त का चरित्र भी अन्त मे आदर्श भ्रष्ट सा दिखाया गया है। हाँ, नूरजहाँ की भाँति विक्रमादित्य में भी प्रकृति-चित्रण कई स्थलों पर अच्छा बन पडा है। इस रचना में शृ गार रस प्रधान है। वीर, हास्य, करुण आदि अन्य रसो का निर्वाह भी बडी निपुणता से किया गया है। भाषा, सरल, सरस और मुहावरेदार है। कई स्थलो पर कवि की उत्कृष्ट कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। इस रचना में हमें काव्य और नाटक, दोनों का सम्मिश्रित आस्वाद प्राप्त होता है।

सक्षेप में यही निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि कथोपकथनो की अधिकता, कथानक-बाध, भारतीय नायक की गरिमा का ह्रास इन सबके कारण विक्रमादित्य के महाकाव्यत्व को क्षति-ग्रस्त होना पडा है।

१० जननायक यह कृति महात्मा गांधी की आत्मकथा से सबन्धित है। गाधी जी इसके नायक हैं। लोक-विश्रुत महापुरुष हैं। यह चरित काव्य ३१ सर्गों मे विभक्त है। इस कृति में महाकाव्य के अनेक नियमो का अनुपालन मिलता है यथा कथावस्तु का सर्गों मे विभाजन, आरम्भ मे मगलाचरण, प्रत्येक सर्ग में मुख्यतया एक ही छन्द का प्रयोग और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन, लोक-विश्रुत कथावस्तु, धीरोदात्त नायक आदि।

इन कुछ लक्षणो के होते हुए 'जननायक' महाकाव्य नही है क्योंकि यह महाकाव्योचित व्यवस्था से वचित है। महात्मा गाधी की आत्म-कथा का एक छन्दोबद्ध रूपान्तर है। इसमे मौलिकता का अभाव है। कवि के समय का विषय होने से इसमे कवि की मौलिकता निष्क्रिय रही है।

इतिवृत्तात्मकता और ऐतिहासिकता से कवि-कल्पना को उभरने का अवसर ही नहीं मिला। इस कारण रसात्मकता का अभाव है। ऐसा लगता है कि कुछ कहना है, उसे कवि सुनाये चला जा रहा है और पाठकों का उसे तनिक भी ध्यान नहीं रहा है। नीरस उपदेशों में कवि स्थल-स्थल पर उलझ गया है। मद्यपान और मांसाहार-जैसे प्रसगों की निंदा तथा सत्सग और ब्रह्मचर्य जैसे प्रसगो की महिमा के वर्णन में कवि उपदेशक बनकर कहता चला गया है। कवि मार्मिक प्रसगों की उद्भावना नही कर पाया है। गाधी जी का अफ्रीका-प्रस्थान, सत्याग्रह, कारावास, कस्तूरबा की मृत्यु-जैसे कितने ही प्रसग मर्मस्पर्शी बन सकते थे, किन्तु कवि-कल्पना इधर झुकी ही नहीं है। प्रकृति आदि के वर्णनो मे भार टालने की-सी प्रवृत्ति दिखायी देती है। वे सरसता एव सप्राणता से वचित हैं। चरित्र-चित्रण में विवरणात्मकता की पीठिका होने से मनोवैज्ञानिक भूमिका को अवसर नही मिला है। परिणामत: मन की पकडने की क्षमता इस कृति से दूर ही रही है। गाधी जी-जैसे जननायक की प्रारम्भिक भूमिका पर कामातुर व्यक्ति के रूप मे चित्रित करके कवि ने उनके प्रति श्रद्धा का उच्छेदन ही किया है।[1] इस प्रकार 'जननायक' मे कवि-स्वशक्ति का उत्कर्ष एव शैलीगत गभीरता का अभाव है। अनेक स्थलो पर रमणीयता भटकी हुई मिलती है। इसलिए यह कृति 'महाकाव्य' का पद नहीं पा सकी है।

११. जगदालोक इस कृति के प्रणेता डा० गोपालशरणसिंह हैं। इसमें महात्मा गांधी के जीवन की प्रमुख घटनाओं को व्यवस्थित करके प्रबन्धकाव्य का रूप दिया गया है। इसकी कथावस्तु बीस सर्गों में विभक्त है। काव्य का प्रारम्भ हिमालय के वर्णन के साथ होता है। शिव जी पार्वती के प्रश्न के उत्तर में गाधी जी के जन्म का सकेत करते हैं।

इसमें महाकाव्य के आकार से सम्बन्ध रखने वाले कुछ लक्षण अवश्य मिलते हैं, जैसे—कथानक, सर्गसख्या, वर्णन आदि, किन्तु वस्तु-सगठन अच्छी तरह नही हुआ। विविध घटनाओं में श्रृंखलाबद्धता का अभाव खटकता रहा है। वैविध्यपूर्ण जीवन-विस्तारों के स्थान पर विवरणात्मकता आ गयी है। कथानक मे गाधी जी के जीवन के कुछ पहलू ही उभर पाये हैं। सत्य,

---

१. जननायक, सर्ग २, पृ० ३१

अहिंसा, दया, उदारता आदि गुणात्मक विशेषताएँ भी नायक के जीवन-परिपार्श्वों में उभर नहीं पायी हैं। स्वाभाविकता के बाध और रसात्मकता की न्यूनता के कारण जगदालोक महाकाव्य-पद से गिर गया है।

१२. देवार्चन

श्री करील जी ने महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों को ध्यान में रखकर इस काव्य की रचना की है। कथानक १७ सर्गों में विभक्त है। धीरप्रशांत गुणों से युक्त महात्मा तुलसीदास इसके नायक हैं। इसमें अनेक पर्वों, उत्सवों और प्रकृति के वर्णनों का विनियोजन भी है। ऋतु-वर्णनों में कवि का उत्साह झलकता है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग भी हुआ है, किन्तु इस कृति में महाकाव्योचित रसात्मकता नहीं है। अधिकांश प्रसंगों की कवित्वहीनता ने रसात्मकता को भी धक्का दिया है। गृहस्थ-जीवन, गृहत्याग, सन्यासी वेश में रत्ना से तुलसी की भेंट आदि प्रसंग बड़े मर्मस्पर्शी हो सकते थे, किन्तु रसहीनता से ये भी व्यथित हैं। कवि ने इतिहास और जनश्रुति की उपेक्षा करके कुछ मौलिक उद्भावनाएँ की हैं, जो पाठकों के गले नहीं उतर पाती हैं। तारक और उसकी मृत्यु की कल्पना—जैसे प्रसंग न तो इतिहास-सम्मत हैं और न जनश्रुति से अनुमोदित ही। तुलसीदास के चरित्र-विकास में भी कई झटके आ गये हैं जिनसे विकास टूटा नहीं तो जर्जर अवश्य हो गया है।[1]

इन सब दोषों के कारण कुछ शास्त्रीय लक्षणों के निर्वाहित होने पर भी हम 'देवार्चन' को महाकाव्य की संज्ञा देने में हिचकते ही हैं।

१३. झाँसी की रानी

श्री श्यामनारायणप्रसाद की यह कृति इतिहास-प्रसिद्ध वीरांगना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से सम्बंधित है। इसकी कथावस्तु २३ खंडों में विभक्त है। प्रथम २२ खंडों को 'हुंकार' और अंतिम को 'महाप्रस्थान' नाम दिया गया है।

इस कृति में निरूपित घटनाओं में सम्बन्ध-निर्वाह बड़ी कुशलता से किया गया है, किन्तु कथावस्तु में महाकाव्योचित विस्तार और व्यापकता नहीं है और न जीवन की विविधता ही है। हाँ, नायिका की चारित्रिक विशेषताएँ कुशलता से उभारी गयी हैं। शौर्य, साहस, निर्भीकता, आत्मबल, आत्मसम्मान, देशप्रेम और आत्मबलिदान रानी के चरित्र को भास्वर बनाने वाले गुण हैं। यह कृति सुन्दर प्रकृति चित्रों से स्थान-स्थान पर सुशोभित है। प्रकृति-वर्णनों ने घट-

१. देखिये, देवार्चन, ७ ५४–५५ तथा ११. १०९–१११

नायकों से गहन सम्बन्ध स्थापित करके रचयिता की कुशलता का परिचय दिया है। 'वीर' इसका प्रधान रस है। भाषा सरल एवं ओजपूर्ण है। सहज अलंकरण ने भाषा को निखार दिया है।

निष्कर्ष यह है कि कुछ विशेषताओं के होते हुए भी 'झाँसी की रानी' महाकाव्योचित क्षमताओं के अभाव से युक्त है। इसमें मानव जीवन अपने पूर्ण रूप में व्यक्त नहीं हुआ। महाकाव्योचित चरित्रों का भी इसमें अभाव है। मार्मिक प्रसंग भी कम ही हैं, जहाँ इतिवृत्तात्मकता है वहाँ रसात्मकता भी बहिष्कृत सी प्रतीत होती है। भाषा-शैली प्रौढ़ता और गम्भीरता के अभाव से पीड़ित है। अतएव इसे वर्णनात्मक प्रबन्ध की श्रेणी में ही रखना उचित होगा।

१४. हनुमच्चरित डा० रणवीरसिंह ने अपनी इस कृति को भक्तिरस से सरसित करके समाज को अर्पित किया है। यह कृति दोहा-सवैया-कवित्त शैली में निर्मित हुई है। उलट-फेर से इन्हीं छन्दों का प्रयोग है।

इसका कथानक महाकाव्योचित नहीं है। भक्ति और वीर रस के निरूपण में कवि ने बड़े दत्तचित्त होकर कवित्व को प्रकाशित किया है, किन्तु रस-परिपाक सहज रूप से नहीं हुआ। जीवन-वैविध्य और सर्वाङ्गीणता के अभाव से यह काव्य महाकाव्यत्व प्राप्त नहीं कर सका है। चरित्र अविकसित ही रह गया है। सांस्कृतिक परिपार्श्व ने भी इसके महाकाव्यत्व को आहत किया है। यह काव्य मात्र एक चरितकाव्य है जो दस सर्गों में विभाजित है। इन सब कारणों से यह कृति महाकाव्य पद नहीं पा सकी है।

१५. युग स्रष्टा : प्रेमचन्द श्री परमेश्वर 'द्विरेफ' की यह दूसरी प्रबन्ध कृति है। कवि ने इसे महाकाव्य घोषित किया है। इस रचना में आठ सर्ग हैं। लोकप्रसिद्ध कथाकार श्री प्रेमचन्द जी को इसका नायक बनाया गया है। प्रेमचन्द जी के जीवन की ओट में कवि सामाजिक जागरण, सामाजिक रूढ़ियों, कुप्रथाओं, ग्राम-जीवन आदि के वर्णनों में प्रवृत्त हो गया है। इसमें कथावस्तु उपेक्षित हो गयी है। विविध वर्णनों के बीच कथा-सूत्र भग्न-सा प्रतीत होता है। चतुर्थ और पञ्चम सर्ग में तो कथा-सूत्र का पकड़ना ही कठिन हो गया है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह रचना अधिक गरिमावती नहीं है। घटना-विस्तार का अभाव भी खटकता है। भाषा शैली भी प्रौढ़ता और गरिमा से रहित है। मार्मिक प्रसंग भी कवि की दृष्टि से ओझल हो रहे हैं। इन सब कारणों से यह कृति महाकाव्यत्व पाने में असमर्थ प्रतीत होती है।

१६. श्रीसदाशिव-चरितामृत

इसमें सर्गबद्धता है, छन्दानेकता है, विशाल आकार है, वर्णन हैं, किन्तु न तो प्रबन्धत्व का निर्वाह है, न कवि की मार्मिक स्थलो का परिचय है और न दृश्यों की स्थानगत विशेषता है। कथा-सूत्रो मे सम्बद्धता नहीं है। घटनाएँ विकीर्ण और विच्छिन्न हैं। नायकत्व, चरित्र-विकास और वस्तु-निबंधन वर्णन-मोह और अतिभावुकता में भटक गये हैं। इस प्रकार यह रचना महाकाव्य तो क्या प्रबंधकाव्य कहलाने योग्य भी नहीं है।

१७ बाणाम्बरी

श्री रामावतार 'अरुण' का यह प्रबन्धकाव्य बाणभट्ट की कथा को लेकर २० सर्गों में लिखा गया है। इसका नायक बाण इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष है। कथानक इतिहास और कल्पना का मिश्रत स्वरूप प्रस्तुत करता है। रचना में अनेक छन्दों का प्रयोग है। उत्सव, सस्कार एव प्रकृति से सम्बंधित अनेक वर्णनो की योजना भी है। भाषा मे सरलता और प्रवाहशीलता भी है, किन्तु विविध प्रसगो में सुनियोजना की शिथिलता है। द्वादश सर्ग के कथानक में कुछ दम लगता है। बाद मे आठ सर्गों मे तो कवि हवा में उड़ने लगा है। ऐसा लगता है कि कवि के पास अब वस्तु-धरातल का अभाव है। इसलिए वह कथन के लिए विषय टटोल रहा है। इसी का परिणाम परवर्ती वर्णन हैं।

ऐसी स्थिति मे जबकि कथानक व्यापकता के अभाव से व्यथित है, वर्णित जीवन में सर्वाङ्गीणता का अभाव है, व्यापक सांस्कृतिक परिपार्श्वों एव आदर्शों की कमी है, हम इस कृति को महाकाव्य का पद देने मे हिचकिचाहट का अनुभव करते हैं। प्रासगिक तालमेल का अभाव भी इस निर्णय की पुष्टि मे योग दे सकता है।

१८ लोकायतन

'लोकायतन' पत के चिरसचित स्वप्न का साकार रूप है। यह कृति दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खड को कवि ने बाह्य परिवेश का नाम दिया है और द्वितीय को तस्चैतन्य का नाम दिया है। प्रथम खण्ड के चार भाग हैं और द्वितीय के तीन। प्रथम खण्ड का प्रथम भाग पूर्वस्मृति (आस्था) नाम से अभिहित किया गया है। दूसरे और तीसरे भाग को कवि ने क्रमश जीवनद्वार और सस्कृतिद्वार अभिधा प्रदान की है। चौथा भाग मध्यबिन्दु (ज्ञान) है। द्वितीय खड के प्रथम भाग का नाम कलाद्वार और द्वितीय का ज्योतिद्वार है। अन्तिम भाग उत्तर स्वप्न (प्रीति) है। इस प्रकार प्रथम खण्ड में पूवस्मृति और मध्यबिन्दु के

बीच दो द्वार हैं। उनमें से जीवनद्वार को कवि ने तीन प्रसंगों में विभाजित किया है :— (१) युगभू (२) ग्राम शिखर और (३) मुक्तिमन्त्र। दूसरा द्वार संस्कृति भी तीन प्रसंगों में विभाजित है:–(१) आत्मदान(२) संक्रमण और(३) मधुस्पर्शी। द्वितीय खण्ड में पहले दो द्वार हैं और अन्त में उत्तरस्वप्न है। इसके प्रथम कलाद्वार में (१) कला-संस्थान (२) द्वन्द्व और(३) विज्ञान नामक प्रसंग हैं। इसी प्रकार दूसरे भाग ज्योतिद्वार के (१) अन्तरविकास (२) अन्तर-विरोध (३) उत्क्रान्ति नामक प्रसंग हैं। पूर्व स्मृति, मध्यबिन्दु और उत्तर-स्वप्न का कोई अङ्ग नहीं है। अवशिष्ट भागों के तीन-तीन अङ्ग हैं। संक्रमण को भी कवि ने ह्रास, विघटन और विकास नामक तीन प्रसंगों में विभक्त किया है।

इस विवरण से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि कवि ने सर्ग-दृष्टि से महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का अनुशासन न करके नये ढंग से कथा का विभाजन किया है। ६८० पृष्ठों के इस महत्काय काव्य की रचना प्रबन्ध-शैली में प्रस्तुत की गयी है। कवि ने इसे 'नव्यकल्प का मनगढ़ आदि काव्य' माना है।[1] इसका परिचय ज्ञातव्य में देते हुए कवि ने स्वयं कहा है। 'ग्रामघरा के प्रबल से, जन-भावना के छन्द से बँधी, युगजीवन की, इस शाश्वत कथा को काव्य-प्रेमी पाठकों को भेंट करने में मुझे प्रसन्नता है। युग जीवन के सबन्ध में लिखना कठिन होता है, क्योंकि उनके स्तर वर्तमान पीढ़ियों की चेतना के भीतर होते हैं। इसलिए मैंने कथावस्तु के चयन एवं संयोजन में अत्यन्त संयम से काम लेकर केवल अनिवार्य तत्वों एवं घटनाओं का ही समावेश किया है। गाधीजी के अतिरिक्त इसके शेष पात्र कल्पित होने पर भी उनके द्वारा मेरे कवि जीवन की अनुभूति एवं सत्य को वाणी मिली है। इसके चरित्र केवल मानव चेतना के पालकीवाहक मात्र हैं।'[2]

इससे स्पष्ट है कि कवि ने महात्मा गांधी के चरित्र को प्रमुखता दी है, किन्तु चरित्र में विकास नहीं है। अन्य पात्रों के चरित्रों की भी यही दशा है। घटनाओं का अनुबन्ध भूल-भुलैयों में खोया हुआ-सा लगता है। वैचारिक वर्णनों के घटाटोप में जिस प्रकार कथा-सूत्र को असफलता का सामना करना पड़ा है उसी प्रकार चरित्र विकास को भी छन्द और सर्ग-वैविध्य से अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती थी।

---

१. लोकायतन, पृ० ५

२. लोकायतन-ज्ञातव्य

कवि का आदर्श अवश्य महान् है, किन्तु रचना के प्रणयन में एकमात्र उसी का योग होने से उसने सांस्कृतिक इतिहास का रूप धारण कर लिया है। निस्संदेह सांस्कृतिक इतिहास के परिपार्श्व में कवि ने नवचेतना की स्फूर्ति करके एक नूतन भविष्य की कल्पना की है। इसमें मंगलाचरण[1] भी है और शुभ कामना भी।[2]

कतिपय लक्षणों के अनुपालन के होते हुए भी हम इस महाकाय कृति को महाकाव्य नहीं कह सकते क्योंकि इसमें चरित्र विकास का अभाव है। घटनाओं का समुचित संयोजन नहीं है और न ही है इसके कथानक में महाकाव्योचित गरिमा। रस-परिपाक भी किसी विकास-क्रम से नहीं हुआ। इसमें केवल शैली और विचारों का अच्छा सम्बंध विस्फुटित हुआ है, किन्तु वह स्वयं महाकाव्य का उत्तरदायित्व लेने में असमर्थ है।

विवेचन की उपर्युक्त धरा पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आलोच्य महाकाव्यों में महाकाव्यत्व का शास्त्रीय मापदण्ड कुछ ढीला और लचीला हो गया है। थोड़ी सी छूट तो पहले भी ले ली जाती थी। मानसकार ने सर्ग आदि की व्यवस्था में ऐसी ही छूट ले ली थी, किन्तु आजकल कुछ अधिक छूट से काम लिया गया है। इसका कारण एक तो यह है कि पाश्चात्य पैमाने ने हमारे कवियों को किसी-न-किसी सीमा तक प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त कुछ कवि नवीनता के लोभ का संवरण भी नहीं कर सके हैं।

---

१ देखिये, लोकायतन, पृ० ५

२. देखिये, लोकायतन, पृ० ६८०

●●●●

लोकनायक का रूप पाने मे समर्थ हुए हैं। भागवत के दावानल-पान[१] जैसे प्रसग सामान्य भाव-भूमि पर उतरकर लोक-बुद्धि के लिए ग्राह्य बन गये हैं।

इस प्रकार कवि ने कथावस्तु मे स्वाभाविकता लाने के लिए लोकमनो-भूमि का सामान्यतम आधार ग्रहण किया है। फिर भी प्रियप्रवास की कुछ त्रुटियाँ उपेक्षणीय नही हैं : एक तो यह कि कथावस्तु व्यापक और विस्तृत नहीं है, अतएव उसमे महाकाव्य की क्षमताओं का अभाव है; दूसरी यह है कि कथावस्तु में विविध घटनाओ का सामजस्य नहीं है और तीसरी बात यह कि कथावस्तु में एकरसता व्याहत हो गयी है। उद्धव के समक्ष अनेक गोप-गोपियों का जाना और अपनी-अपनी राम-कहानी कहना[२] एक कठपुतली का सा खेल लगता है जिसमें पात्रों की स्वतन्त्रता नहीं है। इन त्रुटियो ने प्रियप्रवास की वस्तु-विषयक विविधता, प्रवाहशीलता एव रोचकता को क्षीण और कई स्थलों पर समाप्त कर दिया है।

२. साकेत

साकेत की कथावस्तु का मूलाधार वाल्मीकिकृत रामकथा है जिसके आधार पर प्रायः सभी रामकाव्यो की रचना हुई है। तुलसीकृत रामचरितमानस भी इसी की आधार-भूमि पर निर्मित है, किन्तु इस बात को नकारा भी नहीं जा सकता है कि कवि-लोग सदैव अपनी मौलिक उद्‌भावनाओ का उपयोग करते रहे हैं। प्रासगिक वर्णनो, चारित्रिक निर्मितियो, घटनात्मक स्थानान्तरों एवं वर्णनात्मक विनिवेशो मे साकेतकार की मौलिकताएँ साहित्यिक एव सामाजिक भूमिका पर अविस्मरणीय महत्त्व रखती हैं। प्राचीन रामकथा को नवीन परिपार्श्व देकर गुप्तजी ने 'साकेत' को अनूठी कृति बना दिया है।

'साकेत' की कथावस्तु बारह सर्गों मे विभाजित है। 'साकेत' की कथा राम के राज्याभिषेक की तैयारियों से प्रारम्भ होती है। इस वर्णन को लक्ष्मण-उर्मिला के विनोद-संवाद ने अधिक सजीव बनाकर मौलिक भूमिका प्रस्तुत की है। कथा का पर्यवसान चिरविरह के पश्चात् उर्मिला के लक्ष्मण से मिलने के साथ न होकर रामराज्य की प्रतिष्ठा के साथ होता है। इस प्रकार साकेतकार ने एक ओर मौलिकता का निर्वाह किया है और दूसरी ओर कथा की परम्परा की रक्षा की है।

---

१. देखिये, प्रियप्रवास ११. ६४-६५. तुलनीयः भागवत – १०. १६. १२, १४

२ देखिये, प्रियप्रवास, ११.५५ तथा १२.७५ आदि।

कथावस्तु-संबंधी एक मौलिकता तो यही है कि उसका आरम्भ रघुकुल-परम्परा तथा राम-जन्म से न होकर राम के राज्याभिषेक की तैयारी और उर्मिला लक्ष्मण के संवाद से हुआ है। साकेत के प्रथम सर्ग में उर्मिला-लक्ष्मण-विनोद-संवाद कवि की अपनी सूझ है। राम के जीवन की घटनाओं का क्रम-विकास वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस के घटना क्रम से भिन्न है। साकेतकार ने राम-कथा के कुछ मार्मिक स्थलों का चयन करके कथावस्तु की योजना की है। प्रारम्भ से भरत मिलाप तक की घटनाएँ साकेत में आयोजित की गई हैं।

राम के राज्याभिषेक की तैयारी से पूर्व की घटनाएँ उर्मिला के चरित्र को उभारने में अधिक सहायक न समझ कर कवि ने उनका उल्लेख दशम सर्ग में उर्मिला द्वारा कराया है। चित्रकूट में भरत मिलाप के बाद की घटनाएँ हनुमान एवं वसिष्ठ द्वारा वर्णित हुई हैं। जिस प्रकार तुलसीदास ने मानस की कथा के तीन वक्ता (शिव, याज्ञवल्क्य तथा काकभुशुण्डि) चुने हैं, उसी प्रकार गुप्त जी ने हनुमान, वसिष्ठ और उर्मिला को कथा-वक्ता के रूप में प्रस्तुत किया है, किन्तु साकेतकार ने कथा के एक अंश के वर्णन का अधिकार स्वयं भी ले लिया है।

वास्तव में उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र की महत्ता प्रतिष्ठित करने के लिए ही साकेत की रचना की गयी है, इसलिए साकेतकार ने रामायण तथा मानस की केवल उन्हीं घटनाओं को मुख्य रूप में अपनाया है जो उर्मिला के निर्मल चरित्र को गौरव प्रदान करने की क्षमता रखती हैं।[1]

जिस प्रकार प्रथम सर्गगत उर्मिला-लक्ष्मण-संवाद कवि की मौलिक भावुकता और कल्पनाशक्ति का परिचायक है उसी प्रकार कैकेयी और मंथरा का संवाद भी पर्याप्त मौलिकता का सूचक है जिसमें अलौकिकता का निवारण एवं मनोवैज्ञानिक धरातल की प्रतिष्ठा है। साकेत का कैकेयी-मंथरा-संवाद मानस की भाँति बड़ा नहीं है। जहाँ वाल्मीकि और तुलसीदास की मंथरा वाचाल है, साकेत की मंथरा गम्भीर है।

रामचरितमानस में कैकेयी के राम-वनवास और भरत के राज्याभिषेक का वर माँगने के पश्चात् राम और लक्ष्मण दशरथ के पास बुलाए जाते हैं, किन्तु साकेत के राम-लक्ष्मण नित्य नियमानुसार पितृवन्दना के लिए स्वयं पिता

---

१. देखिये, डा० गोविन्दराम शर्मा : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १८४

है पास पहुँचते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता में वन-गमन के निश्चय के प्रवसर पर साकेत मे उर्मिला की विवशता और मूक वेदना का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह रामायण और मानस मे अलभ्य है।

साकेत मे उर्मिला और लक्ष्मण तथा वसिष्ठ और दशरथ के वार्तालाप में राम के अभिषेक के समय भरत की अनुपस्थिति के कारणो की मौलिक उद्भावना की गयी है।

दशरथ की मृत्यु के वर्णन में भी साकेतकार ने मौलिकता का गहन पुट दिया है। रामायण और मानस में उर्मिला की वह शोकाकुलता नहीं है जो साकेत मे मुखर हुई है ? यहां इस अवसर पर शोकाकुल उर्मिला मूर्च्छित होकर कैकेयी के आगे गिर जाती है।[1] यह स्थिति परिस्थिति को अधिक गम्भीर बना देती है और कैकेयी के हृदय पर तीव्र आघात पहुँचता है। इस अवसर पर रानियो के सती होने का प्रस्ताव भी कवि की मौलिक कल्पना है। रामायण और मानस मे इस प्रकार का कोई प्रस्ताव नहीं है। वसिष्ठ के साथ भरत भी रानियो के समझाने मे अपना योग देते हैं। यह उद्भावना प्रासगिक औचित्य से वचित नहीं है।

चित्रकूट मे भरत और राम के मिलन-प्रसग मे कैकेयी का पश्चात्ताप काव्य की बड़ी मार्मिक अभिव्यजना है। साकेतकार ने कैकेयी के चरित्र को पश्चात्ताप की अग्नि मे तपा कर समग्र सभा की दृष्टि मे ऊँचा उठा दिया है।[2] किसी आधार-ग्रथ मे कैकेयी के चरित्र मे यह चारित्रिक उज्ज्वलता नहीं मिलती। सीता की चतुरता से चित्रकूट की पर्णकुटी मे उर्मिला–लक्ष्मण का क्षणिक मिलन भी कवि की मौलिक उद्भावना है।

साकेत का नवम सर्ग तो नितान्त मौलिक है। इसमे तपस्विनी उर्मिला के अन्तर और बाहर की जिन परिस्थितियो का चित्रण किया गया है वह बड़ा मार्मिक है।

साकेत के हनुमान सजीवनी बूटी लेने के लिए हिमालय नहीं पहुँचते, वरन् वह उन्हे साकेत ही मे भरत से मिल जाती है जिसे उन्होने किसी महात्मा से प्राप्त किया था। हनुमान की इस उपस्थिति का उपयोग साकेत-वासियों ने उनसे लका का वृत्तान्त सुनने के लिए भी किया है जो नितान्त मौलिक है।

---

१. देखिये, साकेत सर्ग ६, पृ० १२३
२ ,, वही, सर्ग ८, पृ० १८०

हनुमान से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुन कर अयोध्यावासियों की क्षोभमयी प्रतिक्रिया भी कवि की मौलिकता की परिचायक है। इस प्रसग मे कवि ने विरहिणी उर्मिला को भी एक वीरागना का उत्साह प्रदान किया है। यह कहना उचित ही होगा कि साकेत मे उर्मिला के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाली सभी घटनाएँ मौलिक हैं।

उर्मिलावृत्त विवाह-सकेत में पुष्पवाटिका मे सीता के साथ उर्मिला की स्थिति भी बतलायी गयी है जो मौलिक कलात्मक उद्भावना है। रामायण आदि आधार-ग्रथों में यह प्रसग या तो बिल्कुल ही नही है और प्रसन्नराघव नाटक आदि में है तो वहाँ उर्मिला नहीं है। साकेत मे लक्ष्मण – उर्मिला से सम्बधित पूर्वराग की नियोजना कलात्मक नैपुण्य का का प्रमाण है। धनुप यज्ञ के प्रसग मे वीर लक्ष्मण के प्रति उर्मिला की ललक मे भी कलात्मक मौलिकता है। इन प्रसगों के अतिरिक्त साकेत के अन्त में उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन का प्रसग भी नवीन योजना है। इसके बिना महाकाव्य के यज्ञ मे पूर्णाहुति का योग न होता।

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि साकेतकार ने प्राचीन राम-कथा को मौलिक उद्भावनाओं से एक नवीन रूप दे दिया है। परम्परागत कथानक-प्रसगों मे कुछ कतर-छाँट करके राम-कथा को जो रूप दिया है वही तो 'साकेत' है जिसमे उर्मिला के साथ-साथ भरत, कैकेयी आदि पात्रो की चरित्रगत विशेषताएँ उभर कर प्रकाश मे आगयी हैं। रामकथा—जैसे विख्यात कथानक मे अधिक हेर-फेर की गु जाइश न होते हुए भी मैथिलीशरण गुप्त ने उसे जो आधुनिक रूप देने का प्रयत्न किया है, वह सराहनीय है।

नल-नरेश

'नलनरेश' काव्य के मूल कथानक का उद्भव महाभारत के नलोपाख्यान के रूप मे हुआ है। इस काव्य मे नल-दमयन्ती-विषयक कथा मूल रूप से नलोपाख्यान पर ही आधारित है, यद्यपि कवि ने अनेक मौलिक कल्पनाओ से इसका विस्तार किया है और इसे युगसम्मत बनाने के लिए कई परिवर्तन भी किये हैं। 'नलनरेश' मे दमयन्ती-जन्म, नल और राजहस की वार्ता, हसदूत्व, नलदमयन्ती का प्रेम-पल्लवन, दमयन्ती स्वयवर, स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए आते हुए नल का देवो से मिलन और उनका दूतकार्य-सपादन, दूतवेषी नल तथा दमयन्ती का वार्तालाप, दमयन्ती—स्वयवर, दमयन्ती द्वारा नल-वरण, कलि की दुष्टता, पुष्कर-नल की द्यूत-क्रीड़ा, नल-वनवास, वन म नल-

दमयन्ती-वियोग, नल-कर्कोटक प्रसग, नल का अयोध्याराज ऋतुपर्ण का आश्रय लेना और दमयन्ती का चेदिराज की राजमाता के आश्रम म रहना, दमयन्ती का कुण्डिनपुरागम एव नल की खोज और अन्त मे नल-दमयन्ती-मिलन ये सभी महाभारतीय प्रसग अपने विस्तारो के साथ वर्णित हैं।

इन प्रसगो को कवि ने युगानुरूप विचारधारा से सपोषित तो किया ही है साथ ही कुछ सूक्ष्म एव महत्त्वपूर्ण परिवर्तन एव परिवर्धन भी किये हैं। काव्य के प्रथम एव द्वितीय सर्ग मे वर्णित प्रसग तथा उत्तरार्द्ध मे सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें एव उन्नीसवें सर्ग में उल्लिखित प्रसग कवि कल्पना से प्रसूत हैं। काव्य का अत भी बडे प्रभावकारी ढग से हृदय-परिवर्तन की भूमिका पर हुआ है। यहाँ नल का दूत पुष्कर के पास जाकर नल के कष्टो का वर्णन करता है। इससे पुष्कर का हृदय परिवर्तित होता है, नल के प्रति उसकी सहानुभूति उदित होती है। वह सेनासहित एक दूत को नल को निषध लौटा लाने के लिए भेजता है और अपने व्यवहार के लिए नल से क्षमा-याचना करता है। वह नल से राज्य-ग्रहण करने के लिए अनुरोध करता है, जिसे वह अस्वीकार कर देता है। स्वयं राज्य को स्वीकार करना उसे अरोचक प्रतीत होता है। अन्त में वह दमयन्ती-सहित स्वर्गारोहण करता है।

महाभारत में यह प्रसंग कुछ भिन्न प्रकार से चित्रित किया गया है। वहाँ दमयन्ती से पुनर्मिलन होने के उपरान्त नल पुष्कर के पास आकर द्यूत-क्रीडा का प्रस्ताव रखते हैं और दमयन्ती को पाने की लालसा से पुष्कर इसे स्वीकार कर लेता है। द्यूत मे नल पुष्कर को हरा कर अपना खोया हुआ राज्य पुन प्राप्त करता है और पुष्कर को धनादि के साथ सकुशल उसकी राजधानी के लिए विदा कर देता है। 'नलनरेश' मे नल का चरित्र कुछ अधिक उज्ज्वल दिखायी देने लगा है। कवि ने बडी मनोवैज्ञानिकता से पुष्कर का हृदय-परिवर्तन करा कर उसके चरित्र के मालिन्य को दूर किया है और साथ ही राज्यवैभव के प्रति नल की निस्पृहता और अनासक्ति को चित्रित कर उसके चरित्र को और अधिक गरिमामय बना दिया है।

काव्य के पूर्वार्द्ध में भी कवि ने अनेक प्रसगों को जोडा-तोडा है, जैसे द्वितीय सर्ग में पुष्कर द्वारा नल से द्यूत-क्रीडा के लिए प्रार्थना करना, राजधर्म के विरुद्ध समझ कर नल का इसको स्वीकार न करना, इसी सर्ग के अन्त में नल द्वारा एक अद्भुत दृश्य का दर्शन, छठे सर्ग मे देवसदेश से दमयन्ती का मूच्छित होना, तेरहवें सर्ग में चेदिनगर को जाती हुई दमयन्ती का एक मुनि

से भूख शांत करने का फल प्राप्त करना, इसी सर्ग में दमयंती के तेज से वणिकों को जीवित करना इत्यादि प्रसंग नये हैं। कुछ प्रसंग परिवर्तित हैं।

कामायनी

कामायनी की कथावस्तु का निर्माण भारतीय वाङ्मय के विविध ग्रंथों में बिखरी हुई सामग्री को लेकर किया गया है। कथा का सम्बन्ध मुख्यतया मनु, श्रद्धा और इड़ा से है। इनसे सम्बध रखने वाले आख्यान स्फुट रूप में ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् और कई पुराणों में पाये जाते हैं। मनु एक ऋषि भी हैं और राजा भी।[1] ऋग्वेद में श्रद्धा से सम्बंधित एक पूरा सूक्त ही विद्यमान है।[2] इड़ा का वर्णन भी ऋग्वेद के कई मंत्रों में पाया जाता है।[3] शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् तथा अनेक पुराणों में मनु, श्रद्धा और इड़ा की कहानी विविध रूपों में पायी जाती है।[4]

१, देखिये, ऋग्वेद—८.२७-२१, तथा 'मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह'
—शतपथ ब्राह्मण, कांड १३, ४, ३, ३

२. ऋग्वेद—१०, १५१—"ऋषि श्रद्धा कामायनी। देवता श्रद्धा।
श्रद्धयाग्नि. समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।"

३. (क) "इड़ा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः"
—ऋग्वेदः १.१३ ६.५.५,८

(ख) "इड़ामकृण्वन्मनुषस्य शासनीम्"
—ऋग्वेदः १.३१.११

(ग) "अस्य प्रजावती गृहे असश्चन्ती दिवे दिवे इड़ा धेनुमती दुहे"
—ऋग्वेद ८.३१.४

(घ) "आ नो यज्ञं भारती तूय मे त्विड़ा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेद स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु॥"
—ऋग्वेदः १०.११० ८

४. "मनवे हवै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजहुर्यथेद पाणिभ्यामवनेजनाय आहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे।"
—शतपथ ब्राह्मण १.८.१.१

(ख) "श्रद्धादेवो वै मनुः"
—शतपथ ब्राह्मण—१.१४.१५

(ग) "यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा०" —छान्दोग्य उप० ७.१८

(घ) "यदा वै श्रद्दधाति अथ मनुते नाश्रद्दधन् मनुते श्रद्दधदेव०"
—छान्दोग्य उप० ७.१९

इस प्रकार प्रसाद जी ने अनेक प्राचीन ग्रंथों से विकीर्ण सामग्री का संकलन करके कामायनी की कथावस्तु को सँजोया है तथा मनु, श्रद्धा एवं इड़ा से सम्बन्धित विविध प्रसंगों को शृंखलाबद्ध करके उन्हें काव्योपयोगी कथानक का रूप प्रदान किया है। यद्यपि कामायनी के कथानक के सूत्र अनेक प्राचीन ग्रंथों में विकीर्ण मिलते हैं, किन्तु प्रसाद ने मुख्यतया शतपथ ब्राह्मण तथा श्रीमद्भागवत का आश्रय लिया है। कामायनी के अन्तिम तीन सर्गों की रचना प्रत्यभिज्ञादर्शन में प्रतिपादित आनन्दवाद के आधार पर हुई है।

कामायनी के कथानक को काव्योपयोगी रूप प्रदान करने के लिये प्रसाद जी ने प्राचीन ग्रन्थों में वर्तमान विविध प्रसंगों को यथोचित रूप में परिवर्तित कर दिया है और नयी उद्भावनाओं के योग से कथानक को नयी भूमि प्रदान की है। जलप्लावन की घटना शतपथ ब्राह्मण से प्रभावित है। शतपथ में मनु की नाव मत्स्य के पंख के सहारे हिमालय पर पहुँच जाती है,[1] किन्तु कामायनी में वह मत्स्य के चपेटे से हिमालय पर पहुँचती है।

ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा पुराणों में श्रद्धा मनु-पत्नी बतलायी गयी है, किन्तु प्रसाद ने उसके जन्म-स्थान (गान्धार देश), रूप, स्वभाव, दिनचर्या आदि की अनूठी कल्पनाएं की हैं। भागवत[2] में श्रद्धा से मनु के दस पुत्रों की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है, किन्तु कामायनी में केवल एक ही पुत्र (मानव) का उल्लेख है। नवजात शिशु के प्रति श्रद्धा के अधिक आकर्षण से मनु-मन में ईर्ष्या-भाव का उद्भव 'प्रसाद' की मौलिक कल्पना है।

ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण में इड़ा और मनु के सम्बन्ध का उल्लेख मात्र मिलता है। 'प्रसाद' ने इसे अधिक स्पष्ट एवं सजीव बना दिया है। मनु-इड़ा प्रसंग में कामायनी आधार-ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक ठोस मनोवैज्ञानिक भूमिका पर अधिक हृदयग्राही रूप में स्थित है।

शतपथ ब्राह्मण[3] की भाँति कामायनी में भी मनु हिंसात्मक यज्ञ करते हैं तथा 'किलात' और 'आकुलि' पुरोहित का कार्य करते हैं। आगे उन्हीं को प्रसाद ने सारस्वत प्रदेश की प्रजा का नेता बनाकर मनु के विरोधियों के रूप में उपस्थित किया है। इनके चरित्र की यह भूमिका कथानक के साथ अधिक संगत

१. देखिये, शतपथ ब्राह्मण—१.८.१.५.६
२. देखिये, भागवत ६.१.११.
३. शतपथ ब्राह्मण १.१.४.१४-१५

बन गयी है। मनु के मन के निर्वेद को तीव्रता प्रदान करने मे किलात और आकुलि का विद्रोह अधिक सहायक सिद्ध हुआ है।

श्रद्धा का स्वप्न, मनु का युद्ध मे आहत होना, श्रद्धा का मनु के पास पहुँचना, उद्वेग से मनु का भाग जाना, श्रद्धा द्वारा मनु की खोज, फिर श्रद्धा द्वारा मनु को कैलास-शिखर पर ले जाना और अखण्ड आनन्द की प्राप्ति मे सहायक होना आदि प्रसग प्रसाद की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रसाद ने विकीर्ण कथा-सूत्रों को एकत्र कर कामायनी का प्रौढ कथापट निर्मित किया है। इसमे कल्पना के रगीन चित्रो की स्थिति बडी मनोहारिणी एवं अविस्मरणीय है।

इसके कथानक का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण है, पर कालिदास के रघुवश और भवभूति के उत्तररामचरित का प्रभाव अनुपेक्षणीय है। इसमे सीता के निर्वासन की कथा है, किन्तु सुधारो और परिवर्तनो

५. वैदेही-वनवास के योग से कई प्रसग नवीन-जैसे लगने लगे हैं। मूल स्रोतों मे सीता के निर्वासन का सारा उत्तरदायित्व राम पर रहा है, किन्तु वैदेही वनवास मे सीता-निर्वासन वसिष्ठ, कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, माण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति आदि सभी से सम्बन्धित किया गया है। सीता को आश्रम मे भेजने से पूर्व राम अपने भाइयों के साथ मन्त्रणा-गृह मे सीता-विषयक लोकापवाद पर विचार करते हैं और गुरु वसिष्ठ से भी परामर्श लेते हैं। इस कृति मे कवि ने लोकापवाद को जनमत की भूमिका पर प्रतिष्ठित करके बहुत शक्तिशाली और अनुपेक्षणीय बनाने का प्रयत्न किया है। आधार-ग्रन्थो में लोकापवाद सीता-निर्वासन के लिए अपर्याप्त कारण प्रतीत होता है, किन्तु वैदेही-वनवास मे लवणासुर और उसके सहायकों का भी लोकापवाद मे हाथ दिखाकर 'हरिऔध' ने परित्याग के कारण को प्रभावशाली बना दिया है।[1]

वाल्मीकिरामायण और रघुवश में निर्वासन से पूर्व सीता ने ऋषि-मुनियों के आश्रमो को देखने की इच्छा प्रगट की है।[2] उत्तररामचरित में शृंगी ऋषि के आश्रम से राम की माताओं ने राम को सीता की दोहद (इच्छा) को

---

१. देखिये, वैदेही-वनवास ३.६९,७०,७१

२. (क) वा० रा०, उत्तरकाड ४२ ३३
(ख) रघुवश, १४.२८

पूर्ति के लिए सदेश-मात्र भेजा है,[१] किन्तु सीता की तपोवन-दर्शन-लालसा के साथ निर्वासन मेल नही खाता। आधार-ग्रन्थो मे सीता को लोकापवाद से अवगत नही होने दिया है, किन्तु यहाँ सीता को परिस्थिति की पूर्ण अवगति है। इसके अतिरिक्त वैदेही-वनवास मे प्रसव-काल मे रानियो को कुलपति आश्रम में भेजने की प्राचीन प्रथा की नवीन उद्भावना की गयी है।[२]

इस प्रकार की नवीनताओं ने राम और सीता, दोनो के चरित्र को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। यहाँ राम सीता को धोखा देने के कलक से मुक्त हैं। सीता को भी अनुताप के लिए अवसर नही दिया जाता। वह लोकापवादजनित गम्भीर परिस्थिति से परिचित होकर वन-गमन के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है। आधार-ग्रन्थों मे सीता-वनगमन का दृश्य अत्यन्त करुणाजनक है, किन्तु वैदेही-वनवास मे धोखे और और कठोरता के भाव को निकाल कर उत्साह और गौरव की भावनाओ का सनिवेश किया गया है। वनगमन के समय सीता को गुरुजनो से आशीर्वाद प्राप्त होता है और अयोध्या की सजधज और प्रजा की मगल-कामना सीता के उत्साह को उत्कर्ष प्रदान करती है।

वैदेही-वनवास की सीता अबला नही है जो लोकापवाद के भय से धोखे और कठोरता से निकाल दी गयी है, वरन् वह एक गौरवशालिनी आदर्श नारी है। आधार-ग्रन्थो मे लक्ष्मण सीता को वन मे असहाय छोड जाते हैं, किन्तु यहाँ वे सीता को स्वय वाल्मीकि के पास ले जाकर उन्हें सौंपकर लौटते हैं। वाल्मीकि स्वागतपूर्वक आश्रम में सीता के आवासादि की समुचित व्यवस्था करते हैं।

लवणासुर के वध के लिए जाते हुए शत्रुघ्न मार्ग में वाल्मीकि-आश्रम में ठहरते हैं। यह प्रसग वैदेही-वनवास मे भी पाया जाता है। उत्तररामचरित मे यह प्रसग नही मिलता तथा वाल्मीकिरामायण और रघुवश में इस अवसर पर सीता और शत्रुघ्न का कोई वार्तालाप नही दिखलाया गया, किन्तु वैदेही वनवास मे इस अवसर पर सीता समग्र परिवार, परिजन एवं प्रजा के विषय में कुशल-समाचार प्राप्त करती हैं।

वैदेही-वनवास में शत्रुघ्न के विदा हो जाने पर उसी दिन सीता पुत्रों को जन्म देती हैं[३] किन्तु रामायण और रघुवश में शत्रुघ्न सीता के पुत्र-

---

१. उत्तररामचरित अंक १, पृ० ६
२. वैदेही-वनवास
३. वैदेही-वनवास ११.१८

युगल के जन्म का समाचार आश्रम से विदा होने से पूर्व ही प्राप्त कर लेते हैं।[1]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार वैदेही-वनवास में भी शत्रुघ्न लवणासुर के वध के पश्चात् अयोध्या लौटते समय भी वाल्मीकि-आश्रम में ठहरते हैं। वे वहाँ लव-कुश के मुख से राम-कथा सुनते हैं। रघुवंश में इस अवसर पर शत्रुघ्न के आश्रम में ठहरने का कोई उल्लेख नहीं है। आधार-ग्रन्थों में शम्बूक-वध दिखाया गया है, किन्तु 'हरिऔध' ने युगानुकूल न होने से इस घटना को छोड़ दिया है।

रामायण, रघुवंश और उत्तररामचरित की भाँति वैदेही वनवास में भी अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सीता वाल्मीकि ऋषि और अपने पुत्रों सहित अयोध्या आती हैं, किन्तु वैदेही-वनवास में वह रामायण और रघुवंश की भाँति पृथ्वी में न समा कर, दिव्य ज्योति में परिणत हो जाती है।[2] रामायण और रघुवंश की भाँति वैदेही-वनवास का कथानक दुःखान्त है।

वैदेही-वनवास की कथावस्तु व्यापक न होते हुए भी गतिशील है। इसमें आनुषंगिक घटनाएँ कम हैं, किन्तु जो हैं वे मुख्य कथानक से सहजरूप से सबद्ध हैं। हरिऔध की वस्तु-कल्पना में आदर्शमयी नवीनता है जो युगानुरूप है।

६ कृष्णायन

यह कहा जा चुका है कि कृष्णायन में रामचरितमानस की शैली में कृष्ण-कथा का प्रणयन हुआ है। मानस की भाँति कथानक सात कांडों में विभक्त है: (१) अवतरण कांड, (२) मथुरा-कांड, (३) द्वारका-कांड, (४) पूजा-कांड, (५) गीता-कांड, (६) जय-कांड, और (७) आरोहण-कांड।

अवतरण-कांड में कृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन श्रीमद्भागवत और सूरसागर के आधार पर किया गया है, किन्तु बाल-लीला वर्णन में वास्तविकता और व्यावहारिकता लाने के प्रयत्नों में मिश्र जी की मौलिकता स्मरणीय है। मथुरा-काण्ड की विविध-घटनाओं में प्रमुखतया भागवत की छाया है, किन्तु सूरसागर के मौलिक वर्णनों का पुट भी आ गया है। घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध की योजना में भी कवि की मौलिकता अविस्मरणीय है। उज्जयिनी में सान्दीपनि

---

१ वा० रा०—उत्तरकांड, ६६, १, ६६ ११२ तथा रघुवंश—१५,१३ १४

२. वैदेही-वनवास—१८.४०

पूर्ति के लिए सदेश-मात्र भेजा है,[१] किन्तु सीता की तपोवन-दर्शन-लालसा के साथ निर्वासन मेल नही खाता। आधार-ग्रन्थो मे सीता को लोकापवाद से अवगत नही होने दिया है, किन्तु यहाँ सीता को परिस्थिति की पूर्ण अवगति है। इसके अतिरिक्त वैदेही-वनवास मे प्रसव-काल मे रानियो को कुलपति आश्रम में भेजने की प्राचीन प्रथा की नवीन उद्भावना की गयी है।[२]

इस प्रकार की नवीनताओं ने राम और सीता, दोनों के चरित्र को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। यहाँ राम सीता को धोखा देने के कलक से मुक्त हैं। सीता को भी अनुताप के लिए अवसर नही दिया जाता। वह लोकापवादजनित गम्भीर परिस्थिति से परिचित होकर वन-गमन के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है। आधार-ग्रन्थो मे सीता-वनगमन का दृश्य अत्यन्त करुणाजनक है, किन्तु वैदेही-वनवास मे धोखे और और कठोरता के भाव को निकाल कर उत्साह और गौरव की भावनाओं का सनिवेश किया गया है। वनगमन के समय सीता को गुरुजनो से आशीर्वाद प्राप्त होता है और अयोध्या की सजधज और प्रजा की मगल-कामना सीता के उत्साह को उत्कर्ष प्रदान करती है।

वैदेही-वनवास की सीता अबला नही है जो लोकापवाद के भय से धोखे और कठोरता से निकाल दी गयी है, वरन् वह एक गौरवशालिनी आदर्श नारी है। आधार-ग्रन्थो मे लक्ष्मण सीता को वन मे असहाय छोड जाते हैं, किन्तु यहाँ वे सीता को स्वय वाल्मीकि के पास ले जाकर उन्हें सौंपकर लौटते हैं। वाल्मीकि स्वागतपूर्वक आश्रम मे सीता के आवासादि की समुचित व्यवस्था करते हैं।

लवणासुर के वध के लिए आते हुए शत्रुघ्न मार्ग में वाल्मीकि-आश्रम में ठहरते हैं। यह प्रसग वैदेही-वनवास मे भी पाया जाता है। उत्तररामचरित मे यह प्रसग नही मिलता तथा वाल्मीकिरामायण और रघुवश में इस अवसर पर सीता और शत्रुघ्न का कोई वार्तालाप नही दिखलाया गया, किन्तु वैदेही वनवास मे इस अवसर पर सीता समग्र परिवार, परिजन एव प्रजा के विषय में कुशल-समाचार प्राप्त करती हैं।

वैदेही-वनवास में शत्रुघ्न के विदा हो जाने पर उसी दिन सीता पुत्रों को जन्म देती हैं[३] किन्तु रामायण और रघुवश में शत्रुघ्न सीता के पुत्र-

---

१. उत्तररामचरित अंक १, पृ० ६
२. वैदेही-वनवास
३. वैदेही वनवास ११ १८

युगल के जन्म का समाचार आश्रम से विदा होने से पूर्व ही प्राप्त कर लेते हैं।[1]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार वैदेही-वनवास में भी शत्रुघ्न लवणा-सुर के वध के पश्चात् अयोध्या लौटते समय भी वाल्मीकि-आश्रम में ठहरते हैं। वे वहाँ लव-कुश के मुख से राम-कथा सुनते हैं। रघुवंश में इस अवसर पर शत्रुघ्न के आश्रम में ठहरने का कोई उल्लेख नहीं है। आधार-ग्रन्थों मे शम्बूक-वध दिखाया गया है, किन्तु 'हरिऔध' ने युगानुकूल न होने से इस घटना को छोड दिया है।

रामायण, रघुवंश और उत्तररामचरित की भाँति वैदेही वनवास में भी अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सीता वाल्मीकि ऋषि और अपने पुत्रों सहित अयोध्या आती हैं, किन्तु वैदेही-वनवास में वह रामायण और रघुवंश की भाँति पृथ्वी मे न समा कर, दिव्य ज्योति में परिणत हो जाती है।[2] रामायण और रघुवंश की भाँति वैदेही-वनवास का कथानक दुःखान्त है।

वैदेही वनवास की कथावस्तु व्यापक न होते हुए भी गतिशील है। इसमें आनुषंगिक घटनाएँ कम हैं, किन्तु जो हैं वे मुख्य कथानक से सहजरूप से सबद्ध हैं। हरिऔध की वस्तु-कल्पना में आदर्शमयी नवीनता है जो युगानुरूप है।

६ कृष्णायन

यह कहा जा चुका है कि कृष्णायन में रामचरितमानस की शैली में कृष्ण-कथा का प्रणयन हुआ है। मानस की भाँति कथानक सात काडो मे विभक्त है: (१) अवतरण काड, (२) मथुरा-काड, (३) द्वारका-काड, (४) पूजा-काड, (५) गीता-कांड, (६) जय-काड, और (७) आरोहण-काड।

अवतरण-काड म कृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन श्रीमद्भागवत और सूर-सागर के आधार पर किया गया है, किन्तु बाल-लीला वर्णन में वास्तविकता और व्यावहारिकता लाने के प्रयत्नों में मिश्र जी की मौलिकता स्मरणीय है। मथुरा-काण्ड की विविध-घटनाओ मे प्रमुखतया भागवत की छाया है, किन्तु सूरसागर के मौलिक वर्णनों का पुट भी आ गया है। घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध की योजना मे भी कवि की मौलिकता अविस्मरणीय है। उज्जयिनी में सान्दीपनि

---

१ वा० रा०—उत्तरकाड, ६६, १, ६६ ७१२ तथा रघुवंश—१५,१३.१४

२. वैदेही-वनवास—१८.४०

के आश्रम मे कृष्ण-शिक्षा की योजना पर्याप्त मौलिकता लिए हुए है। इस घटना से मथुरा-कांड और द्वारका-कांड का सगठन बडे स्वाभाविक ढग से हो गया है। द्वारका-कांड मे अनेक राजकुमारियो के साथ कृष्ण-विवाह की योजना मित्र-वृद्धि और शत्रु-दमन के लिये की गई है। यहाँ राजनीतिक पृष्ठभूमि भी उपेक्षणीय नही है।

कृष्णायन के अन्तिम चार काडो की कथावस्तु महाभारत से प्रभावित है। इस प्रकार मिश्र जी ने भागवत और महाभारत की कृष्ण-कथाओं को एकस्थ करने का सराहनीय प्रयत्न किया है। रुक्मिणी-परिणय के अवसर पर कौरव-पाडवों की गति-विधि का परिचय प्राप्त करने के लिये अक्रूर का हस्तिनापुर जाना कवि की एक मौलिक उद्भावना है। इससे द्वारका-कांड परवर्ती काडों से सुसबन्धित हो जाता है। द्वारका की घटनाओं और कौरव-पाडवो के युद्ध से सबन्धित प्रसगो में भी प्रबन्ध-कौशल (सबन्ध-निर्वाह) का योग रहा है।

महाभारत और कृष्णायन का भेद स्पष्ट है. महाभारत कृष्ण के लिये नही लिखा गया, अतएव उसमें कृष्णचरित्र की प्रधानता का प्रश्न ही नही है, किन्तु कृष्णायन में आरम्भ से अन्त तक कृष्ण के नायकत्व की प्रेरणा अग्रसर रही है। कृष्णायन की विशेषता यह है कि महाभारत के कथानक को ही इस प्रकार सयोजित किया है कि कृष्ण-चरित्र प्रधान हो गया है।

पूजा-काड की अनेक घटनाएँ, जैसे राजसूय यज्ञ, द्यूतक्रीडा, द्रौपदी-चीर-हरण आदि महाभारत से ली गयी हैं। गीता-कांड मे मुख्य कथानक बाधित हो गया है। यहाँ कृष्ण का विस्तृत दार्शनिक उपदेश दोषपूर्ण है। इस काड में कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण के अवसर पर नन्द, यशोदा, राधा, आदि व्रजवासियों से कृष्ण की भेंट भी कवि-प्रतिभा की मौलिक देन है।

जय-कांड की कथावस्तु महाभारत पर आधृत है। यहाँ कौरव-पाडव सबन्धी घटनाओ को कृष्ण-कथा के प्रवाह में डाल कर कृष्णायन के नाम को सार्थक करने का सफल प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। महाकाव्य की विविध घटनाएँ कृष्णायन के प्रबध-प्रवाह में बडे कौशल से नियोजित की गयी हैं।

आरोहण-काड की घटनाओं को विस्तार नहीं मिला। महाभारत के प्रसगों को मौलिक नियोजना मिली है। भीष्म का उपदेश एव मैत्रेय के समक्ष कृष्ण का जीवन-दर्शन मौलिक होने के साथ-साथ काव्य-सौन्दर्य से युक्त भी है।

अतएव यह कहना समीचीन होगा कि मिश्रजी ने कृष्ण-विषयक विकीर्ण सामग्री को कुशलता से सबद्ध एव नियोजित किया है और उसे महाकाव्य के कथानक के रूप में प्रस्तुत करके साहित्य के क्षेत्र में सहस्राब्दियों के खटकते हुए अभाव की पूर्ति की है।

७. साकेत-सन्त

इसकी कथावस्तु का मुख्य आधार रामायण के अयोध्या-काड की कथा है। मिश्रजी का लक्ष्य भरत को नायकत्व प्रदान करना रहा है, इसलिए उन्होने परम्परागत राम-कथा के उसी अ श को चुना है जिसका प्रत्यक्ष सबन्ध भरत से है।

कवि ने महाकाव्य के लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं। प्रारम्भ में भरत और माडवी का प्रेमालाप, केकय देश मे अपने मामा युधाजित् के साथ भरत का मृगया के लिए हिमालय में जाना और आहत मृग की करुणा-जनक दशा से प्रभावित होकर हिंसावृत्ति की निन्दा करना आदि प्रसग प्राचीन साहित्य के अनुकरण में लिखे जाने पर भी मौलिकता से वचित नही है।

ननिहाल से लौटने पर भरत की राम से भेंट तक की कथा-वस्तु रामायण से ली गयी है, किन्तु यत्र-तत्र परिवर्तन भी किये गये हैं। साकेत सन्त मे युधाजित् के कहने पर भरत केकय देश मे पहुँचते हैं, इसलिए राम के राज्याभिषेक के समय भरत की अनुपस्थिति के कारण दशरथ के व्यवहार मे सदेह के लिए विशेष अवकाश नही रहता। मथरा की कुटिल नीति में भी मिश्र जी ने भरत के मामा युधाजित् का विशेष हाथ बताया है —

> है मन्थ मन्थरा ही यह, यद्यपि दासों की दारा।
> जो समझ गई सब बातें, पाकर बस एक इशारा ॥[1]

कैकेयी-वसिष्ठ-सवाद तथा कैकेयी का पति के साथ सती होने के लिए उद्यत होना कवि की मौलिक उद्भावनाएँ हैं।

चित्रकूट में भरत-राम का मिलन परम्परागत है, किन्तु भरत के आगमन की सूचना राम को कोलो द्वारा पहले ही दिला दी गयी है। इसलिए लक्ष्मण के सन्देह-जन्य क्षोभ को अवसर नहीं मिलता। चित्रकूट की वृहत्सभा से पूर्व भरत और राम एकान्त मे मिलते हैं और एक-दूसरे के अन्तर को टटोलने का अवसर प्राप्त करते हैं। इस सभा के निर्णय बडे महत्त्वपूर्ण हैं।

१. साकेत-सन्त—२७५

समग्र निर्णय भरत पर डाल दिया गया है। यहाँ रामायण की तरह राम भरत को राज्य सँभालने का आदेश नहीं देते अपितु अपने ऊपर दायित्व आ जाने से भरत स्वयं ही प्रभु-इच्छा के सामने अपने को अर्पित कर देते हैं। राम की चरण-पादुकाओं के सहारे चौदह वर्ष तक राज्य-भार सँभालते हुए भरत की दिन-चर्या का विशद-चित्रण कवि की मौलिकता का अङ्ग है।

भरत हनुमान से सीता-हरण और लक्ष्मण-मूर्च्छा की सूचना प्राप्त करते हैं लंका में जाकर राम की सहायता के लिए उद्यत होते हैं, वसिष्ठ से दिव्य-दृष्टि पाकर राम द्वारा लंका-विजय का दृश्य देखते हैं और अन्त में राम से मिलते हैं। ये सब घटनाएँ साकेत के आधार पर संक्षेप से वर्णित हैं। उपसंहार में तपस्विनी माण्डवी और साकेत-संत भरत का मिलन भी कवि की अपनी सूझ है।

८. रामकथा कल्पलता

सम्पूर्ण कथा रामायण की आधार-भूमि पर विकसित हुई है, जिसका अवसान राम के पुनरागमन के पश्चात् राज-तिलक की शुभ वेला में हुआ है जो भारतीय काव्य शास्त्र की सुखान्त प्रणाली का ही प्रतिरूप है।

यह ठीक है कि इस महाकाव्य की मूल प्रेरणा वाल्मीकि कृत रामायण की कथा से मिली है, किन्तु इस पर निकटतम प्रभाव 'रामचरिताब्धि-रत्नम्' का है, जो इसी कवि की अनुपम कृति है। यह संस्कृत महाकाव्य है।

कथानक की मूल प्रेरणा का स्रोत रामायण होते हुए भी रामकथा का प्रणयन-प्रयत्न अनेक दृष्टियों से मौलिक है। वर्तमान युग में वह काव्य-कौशल अभिनन्दनीय है। खड़ीबोली महाकाव्यों में, समुचित प्रकाश पाकर, यह कृति अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेगी, इस सम्बन्ध में लेखिका को संदेह नहीं है।

कविकृत संस्कृत प्रबन्ध काव्य 'रामचरिताब्धिरत्नम्' ने रामकथा के सभी मौलिक अंशों को प्रभावित किया है। इस दृष्टि से १३ वाँ और १६ वाँ विशेष रूप से स्मरणीय है।

९. दमयन्ती

इसके कथानक का मूल स्रोत महाभारत का नलोपाख्यान है। इसी के आधार पर 'नैषधीयचरितम्' जैसा महाकाव्य संस्कृत में लिखा गया था। आधुनिक कवियों में से पुरोहित प्रतापनारायण का ध्यान भी इस कथानक ने आकृष्ट किया, किन्तु वह नल के चरित्र को ही अधिक दीप्ति प्रदान कर सका। साकेत,

यशोधरा आदि का रग-ढग देखकर श्री ताराचन्द्र हारीत का ध्यान दमयन्ती की ओर गया और हारीत जी ने नलोपाख्यान से बहे आते हुए कथानक की नायिका उसी को बना डाला। इसमें सदेह नही कि दमयन्ती उन थोडी सी नारियों में से है जिन्होंने भारत को गौरव प्रदान किया।

हारीत जी ने मूल कथानक मे कुछ मौलिक परिवर्तन कर दिये हैं। प्रथम सर्ग का प्रारम्भ ही मौलिक हास-परिहास के वातावरण से हुआ है। दूसरे सर्ग का नारद-भीम-सवाद भी सस्कृत-स्रोतो मे अनुपलब्ध है। नल के निमित्त नल के अनुज पुष्कर का दमयन्ती को हरण करके लाने का प्रसग भी कवि की मौलिक उद्‌भावना है। तीसरे सर्ग के मृगया-प्रसग मे भी कवि-कल्पना की खेला है। मृगया के समय नल को अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति पर अनुताप होना और वन के सुरम्य वातावरण मे दमयन्ती के स्मरण से व्याकुल हो उठना आदि भी मौलिक योजनाएँ हैं। स्वयवर मे सखी केशिनी[1] द्वारा दमयन्ती को राजाओं का परिचय भी कवि की मौलिक उद्‌भावना है। 'नैषधीयचरितम्' में यह कार्य सरस्वती द्वारा कराया गया है।

अष्टम[2] सर्ग मे वर्णित पुष्कर-कुमुदिनी एव कर्ण-केशिनी के विवाह के प्रसग भी महाभारत और 'नैषध' मे नहीं मिलते। द्यूत-क्रीडा के समय नल के सामने पुष्कर द्वारा रखी गयी चौदह वर्ष के वनवास की शर्त का उल्लेख भी नलोपाख्यान मे नही है। समवत कवि ने इसकी कल्पना रामकथा के अनुकरण मे की है।

दशम सग के अन्तर्गत निषध के एक अहेरी से नल द्वारा निषध का वृत्तान्त उपलब्ध होने का प्रसग भी कवि की अपनी सूझ है। नल के वनवास से पुष्कर क दु खी होने, नल की अनुपस्थिति में साधुभाव से राज्य सचालन करने तथा अपने दूतो से नल की खोज कराने के प्रसग भी कल्पना-प्रसूत हैं। इन उद्‌भावनाओ स कवि ने पुष्कर के चरित्र को ऊँचा उठा दिया है। चारित्रिक परिपार्श्व मे ही कवि ने, त्रयोदश सर्ग मे, पुष्कर द्वारा दमयन्ती से क्षमा याचना करायी है।

पक्षियो द्वारा नलोत्तरीय-हरण तथा कर्कोटक द्वारा नल के विरूपण के प्रसगो मे भी पर्याप्त परिवर्तन कर दिया गया है। इन उद्‌भावनाओ के आधार पर हम इस रचना के सस्कृत-स्रोतों का भी अनुमान कर सकते हैं।

---

१. दमयन्ती, सर्ग ७
२. दमयन्ती, पृ० १५१

अधिकार, विभीषण से रावण के पुत्र अरिमर्दन का युद्ध, विभीषण की पराजय और अन्त मे अरिमर्दन की अध्यक्षता मे लका की स्वाधीनता की प्रतिष्ठा आदि के वर्णन मौलिक सौन्दर्य से युक्त हैं।[1]

कथानक का मूलाधार वाल्मीकि रामायण है, किन्तु विकास मे कवि ने अपनी मौलिक क्षमताओं का कुशल उपयोग किया है। वस्तु-प्रवाह मे कही है तो कही मदता भी है। जिस स्थल पर रावण का चरित्र प्रमुख हुआ है वहाँ कथा मथर गति से चलती है, अन्यत्र उसमे समुचित प्रवाह मिलता है।

रावण महाकाव्य मे हमारे सामने रावण के चरित्र का उज्जवल एवं प्रभावशाली रूप ही सामने आता है। कवि ने रावण के चरित्र को अपरिमेय पराक्रम, अदम्य उत्साह, लोकोत्तर शौर्य, अटूट स्वाभिमान एव प्रौढ़ पाडित्य से युक्त प्रदर्शित किया है। सीतापहरण मे मात्र वैरप्रशोधन की भावना दिखायी गयी है। रावण सीता को लंका मे बन्दिनी अवश्य बनाता है किन्तु व्यवहार को शिष्टता से वंचित नही होने देता।

विभीषण के चरित्र मे कवि का दृष्टिकोण नवीन है अन्तिम तीन सर्गों मे विभीषण को ही प्रधानता मिली है। विभीषण के चरित्र मे विश्वासघात, बन्धु विरोध, राज्यलिप्सा और कुत्सित वासनाएँ दिखाकर उसे स्वार्थी और देशद्रोही व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। इस प्रकार तुलसी के दृष्टिकोण का स्पष्टत विरोध किया गया दिखाई देता है। तुलसीदास ने विभीषण के अवगुणों को रामभक्त की दृष्टि से देखा है, किन्तु रावण महाकाव्य के रचयिता ने यथार्थवादी दृष्टि से देखा है।

७. जयभारत

'जयभारत' की कथावस्तु का मुख्याधार महाभारत है। इसमें नहुष के वृत्तान्त और कौरव-पाडवो के जन्म से लेकर पाडवो के स्वर्गारोहण तक की कथा कही गयी है। कवि ने महाभारत की उन्ही घटनाओं को प्रमुखतः लिया है जिनका सम्बन्ध कौरव-पांडवों से है। उसने शकुन्तला, नल, सावित्री, विदुला आदि के उपाख्यानों को छोड दिया है।

महाभारत का कथानक इतना व्यापक और जटिल है कि उसे एक ही रचना मे प्रबन्धरूप से नियोजित करना दुस्साध्य कार्य है। इस घटनासकुलता के कारण गुप्त जी को समासशैली अपनानी पडी है। फिर भी मुख्य कथा और प्रसगों मे ताल-मेल पैदा करने का प्रयास किया गया है और वह सरा-

१. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४, ६-७

हनीय है। प्रसगो में आवश्यकता और अनावश्यकता की नीति से जो ग्रहण और त्याग किया गया है वह कौशल-पूर्ण है और अन्विति-सूत्र को जोड़ने वाला है।

कवि स्थानाभाव के कारण मुख्य कथा के कई मर्म-स्थलों पर आवश्यक प्रकाश डालने में असमर्थ रहा है। उदाहरण के लिए कौरव-पाडवो के महायुद्ध-वर्णन को ले सकते हैं जो सक्षिप्त होकर एक ही छोटे सर्ग में सिकुड गया है। कथा के लोभ और विस्तारमोह के कारण कहीं-कही अधिक इतिवृत्तात्मकता आने से कथानक नीरस होने के दोष से बच नही सका है।

महाभारत की अलौकिक घटनाओ को कवि ने परम्परागत रूप में ही अपनाया है, फिर भी कुछ अतिमानवीय और अतिप्राकृतिक प्रसग स्वाभाविकता के मार्ग पर प्रेरित किये गये हैं जो समाज की मर्यादा के अनुकूल भी है और बुद्धिग्राह्य भी है। द्रौपदी को अर्जुन की ही पत्नी[1] स्वीकार करके इसी लोक-मर्यादा की रक्षा की गयी है। हिडिम्बा के चरित्र में भी स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न स्पष्ट है। इधर द्रौपदी-चीर-हरण के प्रसग में कवि ने मनोवैज्ञानिक पीठिका प्रस्तुत की है।[2] इसी प्रकार कुछ अन्य वर्णनो मे भी कवि-प्रतिभा का मौलिक योग अविस्मरणीय है।

८. पार्वती

पार्वती का मूलाधार कालिदासकृत कुमारसभव है। कुछ स्थलो पर शिवपुराण का भी प्रभाव है और कुछ मोडा मे नवीन युगोचित उद्भावनाएँ हैं।

कुमारसभव में कथानक का आरम्भ हिमालय-वर्णन से होता है और कुमार-द्वारा तारकासुर के वध मे उसकी समाप्ति हो जाती है। पार्वती की कथावस्तु इससे भी आगे चलती है और जयन्त-अभिषेक, विजय-महोत्सव, तारक-पुत्रों द्वारा त्रिपुर (रजत, आयस और काचन) की स्थापना, शिव द्वारा उनका उद्धार, शिव धर्म आदि के वर्णनो का भी समाहार करती है। कुमारसभव की सम्पूर्ण कथा (जो १७ सर्गों में वर्णित है) पार्वती मे प्रथम सत्रह सर्गों मे ही समाविष्ट कर दी गयी है। पार्वती के इस अश पर कुमारसभव का गहन प्रभाव है, किन्तु अन्तिम दस सर्गों मे पर्याप्त मौलिकता है।

कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा कुमारसभव और शिवपुराण दोनो से प्रभावित है, फिर भी मौलिक उद्भावना से युक्त है। आधार-ग्रन्थो मे यह कथा नितान्त अतिमानवीय एव अलौकिक है, किन्तु पार्वतीकार ने इसे बुद्धि-

---

१. देखिये, जयभारत, लक्ष्यवेध, पृ० ११०

२ वही, द्यूत, पृ० १३८

अधिकार, विभीषण से रावण के पुत्र अरिमर्दन का युद्ध, विभीषण की पराजय और अन्त मे अरिमर्दन को अध्यक्षता मे लंका को स्वाधीनता की प्रतिष्ठा आदि के वर्णन मौलिक सौन्दर्य से युक्त हैं।[1]

कथानक का मूलाधार वाल्मीकि रामायण है, किन्तु विकास मे कवि ने अपनी मौलिक क्षमताओं का कुशल उपयोग किया है। वस्तु-प्रवाह मे कही है तो कही मदता भी है। जिस स्थल पर रावण का चरित्र प्रमुख हुआ है वहाँ कथा मथर गति से चलती है, अन्यत्र उसमे समुचित प्रवाह मिलता है।

रावण महाकाव्य मे हमारे सामने रावण के चरित्र का उज्जवल एव प्रभावशाली रूप ही सामने आता है। कवि ने रावण के चरित्र को अपरिमेय पराक्रम, अदम्य उत्साह, लोकोत्तर शौर्य, अटूट स्वाभिमान एव प्रौढ पाडित्य से युक्त प्रदर्शित किया है। सीतापहरण मे मात्र वैरप्रशोधन की भावना दिखायी गयी है। रावण सीता को लका में बन्दिनी अवश्य बनाता है किन्तु व्यवहार को शिष्टता से वचित नही होने देता।

विभीषण के चरित्र मे कवि का दृष्टिकोण नवीन है अन्तिम तीन सर्गों मे विभीषण को ही प्रधानता मिली है। विभीषण के चरित्र मे विश्वासघात, बन्धु विरोध, राज्यलिप्सा और कुत्सित वासनाएँ दिखाकर उसे स्वार्थी और देशद्रोही व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। इस प्रकार तुलसी के दृष्टिकोण का स्पष्टत विरोध किया गया दिखाई देता है। तुलसीदास ने विभीषण के अवगुणों को रामभक्त की दृष्टि से देखा है, किन्तु रावण महाकाव्य के रचयिता ने यथार्थवादी दृष्टि से देखा है।

७ जयभारत

'जयभारत' की कथावस्तु का मुख्याधार महाभारत है। इसमें नकुल के वृत्तान्त और कौरव पाडवो के जन्म से लेकर पाडवो के स्वर्गारोहण तक की कथा कही गयी है। कवि ने महाभारत की उन्ही घटनाओं को प्रमुखत लिया है जिनका सम्बन्ध कौरव-पाडवों से है। उसने शकुन्तला, नल, सावित्री, विदुला आदि के उपाख्यानों को छोड दिया है।

महाभारत का कथानक इतना व्यापक और जटिल है कि उसे एक ही रचना मे प्रबन्धरूप से नियोजित करना दुस्साध्य काय है। इस घटनासकुलता के कारण गुप्त जी को समासशैली अपनानी पडी है। फिर भी मुख्य कथा और प्रसगों मे ताल-मेल पैदा करने का प्रयास किया गया है और वह सरा-

---

१. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४, ६-७

हनीय है। प्रसंगों में आवश्यकता और अनावश्यकता की नीति से जो ग्रहण और त्याग किया गया है वह कौशल-पूर्ण है और अन्विति-सूत्र को जोड़ने वाला है।

कवि स्थानाभाव के कारण मुख्य कथा के कई मर्म-स्थलों पर आवश्यक प्रकाश डालने में असमर्थ रहा है। उदाहरण के लिए कौरव-पांडवों के महायुद्ध-वर्णन को ले सकते हैं जो संक्षिप्त होकर एक ही छोटे सर्ग में सिकुड़ गया है। कथा के लोभ और विस्तारमोह के कारण कहीं-कहीं अधिक इतिवृत्तात्मकता आने से कथानक नीरस होने के दोष से बच नहीं सका है।

महाभारत की अलौकिक घटनाओं को कवि ने परम्परागत रूप में ही अपनाया है, फिर भी कुछ अतिमानवीय और अतिप्राकृतिक प्रसंग स्वाभाविकता के मार्ग पर प्रेरित किये गये हैं जो समाज की मर्यादा के अनुकूल भी हैं और बुद्धिग्राह्य भी हैं। द्रौपदी को अर्जुन की ही पत्नी[1] स्वीकार करके इसी लोक-मर्यादा की रक्षा की गयी है। हिडिम्बा के चरित्र में भी स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न स्पष्ट है। इधर द्रौपदी-चीर-हरण के प्रसंग में कवि ने मनोवैज्ञानिक पीठिका प्रस्तुत की है।[2] इसी प्रकार कुछ अन्य वर्णनों में भी कवि-प्रतिभा का मौलिक योग अविस्मरणीय है।

८. पार्वती — पार्वती का मूलाधार कालिदासकृत कुमारसम्भव है। कुछ स्थलों पर शिवपुराण का भी प्रभाव है और कुछ मोड़ों में नवीन युगोचित उद्भावनाएँ हैं।

कुमारसम्भव में कथानक का आरम्भ हिमालय-वर्णन से होता है और कुमार-द्वारा तारकासुर के वध में उसकी समाप्ति हो जाती है। पार्वती की कथावस्तु इससे भी आगे चलती है और जयन्त-अभिषेक, विजय-महोत्सव, तारक-पुत्रों द्वारा त्रिपुर (राजत, आयस और कांचन) की स्थापना, शिव द्वारा उनका उद्धार, शिव धर्म आदि के वर्णनों का भी समाहार करती है। कुमारसम्भव की सम्पूर्ण कथा (जो १७ सर्गों में वर्णित है) पार्वती में प्रथम सत्रह सर्गों में ही समाविष्ट कर दी गयी है। पार्वती के इस अंश पर कुमारसम्भव का गहन प्रभाव है, किन्तु अन्तिम दस सर्गों में पर्याप्त मौलिकता है।

कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा कुमारसम्भव और शिवपुराण दोनों से प्रभावित है, फिर भी मौलिक उद्भावना से युक्त है। आधार-ग्रन्थों में यह कथा नितान्त अतिमानवीय एवं अलौकिक है, किन्तु पार्वतीकार ने इसे बुद्धि-

---

१. देखिये, जयभारत, अश्वमेध, पृ० ११०

२. वही, द्यूत, पृ० १३८

ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है । कवि के इस प्रयत्न मे नवीनयुगीन रुचि की प्रेरणा प्रमुख है । हिमाचल को हिमवान् प्रदेश का तेजस्वी राजा[1] स्वीकार करके अतिमानवीयता का परिहार कर दिया गया है । इसी प्रकार कुमारसभव में मदन-दहन के पश्चात् रति-विलाप ने समग्र चतुर्थ सर्ग को घेर रखा है। इसमे करुण रस की सुन्दर व्यजना होते हुए भी, कथावस्तु के विकास की दृष्टि से यह विस्तार अनावश्यक ही प्रतीत होता है । श्री भारतीनदन ने इस प्रसग को केवल तीन पद्यो मे सिकोडकर अनावश्यकता का परिहार कर दिया है । शिव-पार्वती का सुरत-वर्णन जो कुमारसभव के अष्टम सर्ग में निहित है, पार्वती मे बहिष्कृत है क्योंकि वह आज के समाज की परिष्कृत रुचि के अनुरूप नही है । इसके स्थान पर कैलाश-प्रयाण नामक सर्ग के अन्त मे केवल दो पद्यो मे शिव पार्वती-मिलन का मधुर मगलमय चित्र प्रस्तुत करके कवि ने सामाजिक रुचि को पुरस्कृत किया है ।[2] इसी प्रकार कुमार की औत्पत्तिक अलौकिकता के परिहार के लिए पार्वतीकार ने कुमार को पार्वती का औरस पुत्र स्वीकार किया है ।

कुमारसभव कुमार की शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध मे मौन धारण करके एक बडे सास्कृतिक अभाव की सृष्टि करता है, किन्तु पार्वती मे कुमार-दीक्षा नामक सर्ग मे परशुराम के आश्रम मे कुमार की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी है जो नितान्त मौलिक एव सास्कृतिक गरिमा की पोषक है ।

इस प्रकार के कुछ सशोधनो और परिवर्तनों के सन्निवेश से कवि ने परम्परागत कथानक को युगानुरूप बनाने का प्रयत्न किया है । तारकवध के अनन्तर कथानक का प्रवाह कुछ शिथिल हो गया है, किन्तु वस्तु–सूत्र टूटा नहीं है ।

६. रश्मिरथी

इसकी मूल कथा मुख्यतया महाभारत के आधार पर ही चलती है, किन्तु कवि ने महाभारत का अन्धानुकरण नही किया । उसमें युगानुकूल सशोधन कर दिया गया है । कथावस्तु का विकास बड़े ही स्वाभाविक ढग से हुआ है । वह उन मोडो से विरहित है जिनकी महाकाव्य मे आवश्यकता समझी जाती है । कर्ण के चरित्र को उठाने के प्रयत्न ने कवि को प्रसगों के मोडो मे प्रविष्ट होने से रोका है । कर्ण की वीरता, दानशीलता के प्रसग आधिकारिक से विलग नही है ।

---

१. देखिये, पार्वती, २.५०

२ वही, ५ १२५-१२६

इस महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक संदर्भों एव साहित्यिक प्रसिद्धियों के आधार पर ही यह कथानक तैयार किया गया है। कुछ प्रसग मौलिक भी हैं।

१०. मीरां

किन्तु इस कथानक का सम्बन्ध सस्कृत साहित्य से बिल्कुल नहीं है।

'एकलव्य' की कथावस्तु का मूलाधार महाभारत है। एकलव्य की कथा महाभारत के ३० श्लोकों मे सिकुडी सिमटी पडी है। उसी को डा० रामकुमार वर्मा ने १४ सर्गों मे फैला दिया है। कथा-प्रसार मे कवि की नवोद्भावनाओं का योगदान अविस्मरणीय है। एकलव्य के चरित्र के पुर्ननिर्माण के साथ द्रोणाचार्य के चरित्रगत कलुष के मार्जन का प्रयत्न परम्परा और प्रगति के सामजस्य की उत्कृष्ट भावना की प्रेरणा है। वर्णनो में व्याकरण, काव्यशास्त्र, नायिकाभेद आदि के प्रभाव की झाँकियाँ भी मिल जाती हैं।[1]

११ एकलव्य

उर्मिला काव्य पर अपने पूर्णरूप में किसी संस्कृत-काव्य का प्रभाव नहीं है। उसकी कथावस्तु परम्परागत प्रसगो के आधार पर स्वतन्त्र रूप से गढ़ी गयी है। नवीन जी ने इस काव्य के लिए राम-कथा के केवल उन्हीं प्रसगों को चुना है जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उर्मिला और लक्ष्मण से है या हो सकता है। उर्मिला को प्रमुख स्थान देने के लिए कवि ने परम्परागत राम-कथा से सबधित घटनाओं मे अधिकाश नवीन उद्भावनाएँ की हैं।

१२. उर्मिला

प्रथम सर्ग में जनक के प्रासाद के प्रांगण में सीता और उर्मिला की बाल-केलि का वर्णन कवि की अपनी सूझ है। द्वितीय सर्ग में दशरथ के राज-प्रासाद मे अरिदमन और शान्ता (राम की बहिन) के साथ उर्मिला की विनोद-वार्ता तथा लक्ष्मण-उर्मिला के प्रेमसरसित दाम्पत्य-जीवन का चित्रण भी मौलिक है। तृतीय सर्ग मे नवीन जी की दृष्टि का नवोन्मेष है। यहाँ आर्य-सस्कृति के प्रसार के लिए 'रामवनगमन' की घटना की व्याख्या एक महान् सांस्कृतिक यात्रा के रूप में की गयी है। इस स्थल पर वनगमन के सम्बन्ध में उर्मिला और लक्ष्मण का वार्तालाप और उर्मिला की अनुमति से लक्ष्मण का वनगमन-निश्चय कवि की दृष्टि का नवोन्मेष है। चतुर्थ तथा पचम सर्ग मे उर्मिला का विरह-वर्णन और षष्ट में आर्य सस्कृति का प्रसार (अवध से लका तक), लका के सिंहासन पर विभीषण का अभिषेक, पुष्पक विमान द्वारा राम,

---

१. देखिये, प्रस्तुत प्रबन्ध-महाकाव्यत्व की परीक्षा--'एकलव्य'

सीता और लक्ष्मण का अयोध्या के लिए प्रस्थान, मार्ग में देवर-भाभी का मधुर परिहास तथा अन्त में उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन आदि प्रसग बिल्कुल नये नही है, किन्तु मौलिकता के पुट से युक्त हैं। अर्थात् जिन प्रसगो की उपेक्षा वाल्मीकी रामायण से लेकर बहुत बाद तक होती रही है उनको 'उर्मिला' मे मौलिक अनुबधो मे प्रस्तुत किया गया है।

१३. तारकवध इसकी कथावस्तु पर मूलत शिवपुराण और कुमारसभव का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अन्य पुराणो मे भी यह कथा बिकीर्ण मिलती है, अतएव यह कहना कठिन है कि इसकी कथावस्तु पर अमुक पुराण या अमुक कृत-रचना का प्रभाव है। कोई नियत प्रभाव इसलिए भी नही बताया जा सकता कि कवि ने कार्तिकेय द्वारा तारकासुर-वध की कथा को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। जिस प्राचीन पौराणिक कथानक के आधार पर कालिदास कृत कुमारसभव और भारतीनन्दनकृत पार्वती का रचना हुई उसी के आधार पर 'तारकवध' की भी रचना हुई, किन्तु 'तारकवध' मे कथानक को नये भावात्मक परिपार्श्व मे प्रस्तुत करके साधना और सिद्धि को नया रूप दिया गया है।

शृङ्गी ऋषि और दशरथ-तनया शान्ता को इस काव्य में क्रमश नायक नायिका क रूप मे चित्रित किया गया है। कार्तिकेय विविध योनियों म भ्रमण करता हुआ विभाण्डक मुनि के पुत्र शृङ्गी ऋषि के रूप मे जन्म लेता है। शृङ्गी ऋषि मानस-कल्याण की इच्छा से दक्षिण भारत के एक आश्रम मे जाकर अद्वैत-साधना मे प्रवृत्त होते हैं। वे अपने आश्रम की परिधी से बाहर के लोक को भी तारकासुर के प्रभाव से मुक्त एव सुखी बनना चाहते हैं। वे अपनी जीवन-सहचरी शान्ता के विरह से विह्वल दृष्टिगोचर होते हैं। फिर सहधर्मिणी के रूप मे शान्ता का सहयोग पाकर वे तारकासुर के हृदय-परिवर्तन द्वारा सपूर्ण जगत को उसके प्रभाव से विनिर्मुक्त करने मे सफल होते हैं। वे शरीर से सुन्दर और हृदय से उदार हैं। वास्तव मे शृगी ऋषि दानव को देव बनाकर इसी पृथ्वी पर स्वर्ग को अवतारवरण करते हैं। कथानक में इस प्रकार का रग देकर कवि ने इसे सर्वथा मौलिक सा बना दिया है।

१४, सेनापति कर्ण यह अधूरो काव्य-रचना महाभारत को छाया में लिखी गयी है। आज कर्ण का भव्य चरित्र कवियों के आकर्षण की वस्तु बन गया है। आनन्दकुमार ने 'अगराज' और रामधारीसिंह 'दिनकर' ने 'रश्मिरथी' लिखकर इसी तथ्य को प्रमाणिक किया है। 'सेनापति कर्ण' भी इस

आकर्षण-परम्परा की एक मध्य कड़ी है, किन्तु यह अधूरी कृति है। काव्य का आरम्भ युद्ध-क्षेत्र में द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् युद्ध-शिविर में कौरवों की मंत्रणा से होता है तथा अर्जुन और कर्ण के रणभूमि में आने से पूर्व ही भीम पुत्र घटोत्कच की रणसज्जा में इस काव्य के अन्तिम सर्ग की समाप्ति हो जाती है। इतने से कथानक को लेकर ही कवि ने इस कृति के पाँच सर्गों की सृष्टि की है। सर्ग हैं—मंत्रणा, चिन्ता, सृष्टि-धर्म, विषाद तथा अर्घ्यदान।

महाभारत का अनुसरण करते हुए कवि ने कथावस्तु में अनेक मौलिक प्रसंगों की सृष्टि की है। द्रौपदी-घटोत्कच-संवाद और भीष्म के समक्ष ममतालु माता के रूप में कुन्ती द्वारा कर्ण की जन्म-कथा एवं दुर्बलता का वर्णन-जैसे प्रसंग कवि की मौलिक कल्पना-शक्ति के परिचायक हैं। मिश्रजी ने महारथी कर्ण के चरित्र को प्रधानता देते हुए महाभारत के परम्परागत कथानक को अधिक हृदयग्राही बनाने का प्रयत्न किया है। कथावस्तु से सम्बन्धित घटनाओं में अन्विति सुन्दर ढंग से हुई है।[1]

(ग) तथाकथित महाकाव्य

१. रामचरित-चिन्तामणि

इसके कथानक का मुख्याधार वाल्मीकिरामायण है। कहीं-कहीं रामचरितमानस का अनुकरण भी दृष्टिगोचर होता है। राम-जन्म, राम-विवाह, राम-वनगमन, सीता-हरण, रावण-वध, रामादि का अयोध्यागमन, सीता-परित्याग, लव-कुश-जन्म, रामाश्वमेध, राम से लव-कुश की भेंट आदि अनेक घटनाएँ वाल्मीकिरामायण के आधार पर निरूपित हुई हैं; किन्तु इस रचना में वाल्मीकिरामायण से एक विशेष अन्तर है कि इसमें राम को ईश्वर मान लिया गया है जब कि वाल्मीकिरामायण में वे 'पुरुषोत्तम' के पद पर प्रतिष्ठित हैं। इस परिकल्पना में कृति पर कुछ प्रभाव अध्यात्म रामायण का भी है, किन्तु विशेष रूप से रामचरितमानस का ही प्रभाव दिखायी देता है।

२. श्री राम-चन्द्रोदय-काव्य

मूल कथावस्तु वाल्मीकिरामायण के आधार पर प्रतिष्ठित है। इसकी सोलह कलाओं में से आठ में राम-जन्म से विवाहोपरान्त राम-सीता आदि के अयोध्यागमन तक की कथा वर्णित है और अवशिष्ट कलाओं में राम-सीता की अष्टयाम-चर्या, षड्ऋतुवर्णन, वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजनीति, साधारण नीति, कवि-परिचय, देव-वन्दना आदि विविध विषयों का

१. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४५१.

वर्णन है। कवि ने रीति-कालीन प्रवृत्ति को अपना कर वर्णनों के स्फुट रूप पर ही ध्यान दिया है, कथा-सूत्र की चिन्ता नहीं की। इसी प्रवृत्ति का परिणाम कथा की मन्थरता एवं वर्णन-प्रधानता है।

३. हल्दीघाटी

इस रचना का सम्बन्ध किसी संस्कृत-रचना से नहीं है, अतएव इसके कथानक को भी संस्कृत साहित्य से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता। यह इतिहास से प्रेरित मौलिक उद्भावनाओं की सृष्टि है।

४. श्री कृष्ण चरित-मानस

इस रचना की कथावस्तु भागवत, महाभारत और किसी अंश तक गीता से प्रभावित है। कुछ स्थल सूरसागर के प्रभाव को भी व्यक्त करते हैं। कवि का लक्ष्य कृष्ण से सम्बन्धित विविध प्रसंगों को एक कथा-सूत्र में पिरोना था, साथ ही उसने कृष्ण-चरित को उत्कर्ष प्रदान करने का भी प्रयत्न किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने अपनी रचना में कथावस्तु के पुनर्निर्माण की योजना की है। कहीं-कहीं तो कवि ने कथावस्तु ही नहीं, आधार-ग्रंथों की शब्दावली तक को ज्यों का त्यों ले लिया है।[1]

५. कुरुक्षेत्र

'कुरुक्षेत्र में कथाभास है, कथा नहीं है। महाभारत के युद्ध के पश्चात् कौरवों का विनाश और पांडवों की विजय होती है। उसी समय युधिष्ठिर के सामने ध्वंस को देखकर जो भाव-प्रेरित वैचारिक समस्या आती है, उसी का विवेचन और हल इस रचना में उपस्थित किया गया है। कथावस्तु की दृष्टि से इसमें कोई वस्तु-विन्यास नहीं है। जो कथा-सूत्र, चाहे नगण्य ही सही, दृष्टिगोचर होता है, यह महाभारत की देन है। महाभारत में यह स्थिति किसी भावना या विचारणा को ही स्फुरित कर सकती थी, इसमें किसी कथा के अग्रिम प्रसार के लिए कोई अवकाश नहीं था। इसी स्थिति का अनुकरण कुरुक्षेत्र में हुआ है।

कथा के दो ही पात्र हैं—युधिष्ठिर और भीष्मपितामह। युधिष्ठिर के सामने जीवन और समाज से सम्बन्धित जटिल प्रश्न हैं और उनका उत्तर उन्हें स्वयं न सूझने पर वे व्याकुल हो उठते हैं। समाधान के लिये वे शर-शैया पर पड़े भीष्मपितामह के समीप आते हैं। उपदिष्ट और उपदेष्टा की जो

१. देखिये, श्रीकृष्णचरितमानस, सप्तमकांड पृ० २७५-तुलनीय-गीता २.२२

स्थिति इस अवसर पर महाभारत में थी वही कुरुक्षेत्र में भी है। इस सम्बन्ध में कवि के ये शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं—

"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान् व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद प्रबन्ध के रूप में न उतर कर मुक्तक बन कर रह गयी होती।" कवि के इन वाक्यों से काव्य में युधिष्ठिर और भीष्म के प्रसंग की आवश्यकता का अनुमान तो लगा ही सकते हैं, साथ ही क्षीण कथासूत्र पर महाभारत के प्रभाव की मात्रा भी समझ सकते हैं।

इन रचनाओं की कथावस्तु का संस्कृत साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। आर्यावर्त में महाराजा पृथ्वीराज और चंद कवि के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन है। जौहर में सतीशिरोमणि पद्मिनी के सतीत्व और बलिदान का चित्र अंकित हुआ है। महामानव महात्मा गांधी के जीवन से सम्बन्धित रचना है। इस प्रकार इन रचनाओं की कथावस्तु पर संस्कृत का कोई प्रभाव नहीं है।

६. आर्यावर्त,
७. जौहर,
८. महामानव

९. विक्रमादित्य

इस रचना का मूल स्रोत संस्कृत का 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक है, किन्तु प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनि' नाटिका ने भी इसकी वस्तु-कला में अपना योग दिया है।

इसमें चन्द्रगुप्त को नायक तथा ध्रुवदेवी को नायिका का स्थान दिया गया है। ध्रुवदेवी नेपाल-नरेश की दुहिता, और चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त की विवाहिता पत्नी है। ध्रुवदेवी की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह रामगुप्त से हो जाता है, किन्तु विवाह के पश्चात् भी ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त को ही प्रेम करती है। भ्रातृजाया होने के कारण चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवी के प्रेमप्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता है। इससे ध्रुवदेवी के हृदय को तीव्र आघात पहुँचता है। परिणामतः देश-द्रोही का आरोप लगाकर चन्द्रगुप्त को राज्य से निर्वासित कर दिया जाता है। इधर राजकाज के प्रति विलासी रामगुप्त के उपेक्षा भाव के कारण क्षत्रियों और शकों को देश पर आक्रमण करने का अवसर मिल जाता है। ध्रुवदेवी बड़े धैर्य और साहस से परिस्थिति का सामना करती है। वह सेना के साथ युद्ध-क्षेत्र में आ पहुँचती है। इधर वह देश की स्थिति को संभालने के लिए चन्द्रगुप्त को भी प्रेरित करती है। रोगग्रस्त रामगुप्त चन्द्रगुप्त को राजमुकुट पहनाकर मृत्यु की गोद में सो जाता है। सम्राज्ञी ध्रुवदेवी का सहयोग पाकर

चन्द्रगुप्त शत्रु-दमन करके पतनोन्मुख भारत-साम्राज्य के पुनरुत्थान में समर्थ होता है ।

१०. जननायक,
११. जगदालोक,
१२. देवार्चन,
१३. झाँसी की रानी,

इन रचनाओं के कथा-स्रोत संस्कृत में नहीं हैं । जननायक और जगदालोक का सम्बन्ध तो आधुनिक कथानकों से है । देवार्चन और झाँसी की रानी के कथानक ऐतिहासिक एवं लोक-विश्रुत होते हुए भी संस्कृत साहित्य में कोई स्थान प्राप्त नहीं करते हैं ।

१४. हनुमच्चरित

इस कृति की कथावस्तु का मूल स्रोत वाल्मीकिरामायण है जो अन्य ग्रन्थों में भी पुरस्कृत हुई है । जिस रूप में यह कथा हनुमच्चरित में मिलती है, वह इस रूप में किसी संस्कृत राम-काव्य में नहीं मिलती । यह कथा एक प्रसंग-संकलन-मात्र है जिसको कवि ने राम-चरितमानस से संकलित किया है । हम इसे मौलिक संकलन कह सकते हैं ।

१५. प्रताप महाकाव्य

महाराणा प्रताप के जीवन से सबन्धित यह एक ऐतिहासिक रचना है । कुछ स्थलों पर कल्पना ने भी अपनी लीला दिखलायी है, किन्तु कथानक का सम्बन्ध संस्कृत साहित्य से बिल्कुल नहीं है । यह रचना इतिहास और ऐतिहासिक साहित्य (हिन्दी-राजस्थानी) के आधार पर ही लिखी गयी है ।

१६. युगस्रष्टा प्रेमचन्द

यह रचना भी आधुनिक कथानक लेकर चली है । इसका नायक हमारे युग का व्यक्ति है । यह प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द के जीवन से सम्बन्धित है । इसकी कथावस्तु का संस्कृत साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है ।

१७ श्रीसदाशिव चरितामृत

इस कृति को कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने महाकाव्य के रूप में चित्रित किया है,[1] किन्तु इसकी कथावस्तु इतनी ऊबड़-खाबड़ बन गयी है कि उसकी चोटी या पूँछ कुछ भी तो हाथ में नहीं आती । कहीं हैडाखान बाबा शिव के अवतार के रूप में आते हैं और कहीं कवि हैडाखान को भूल कर शिव-चरित कहने में प्रवृत्त हो जाता है । शिवचरित के वर्णनों में शिवपुराण और कुमार-संभव की छाया दिखायी देती है । कभी राम-कथा आ जाती है, जिस पर राम-चरितमानस् और अध्यात्म-रामायण का प्रभाव दिखायी देता है । इन भिन्न-भिन्न कथा-सूत्रों को जोड़ने में कवि असफल ही नहीं रहा, बहक भी गया है ।

---

१. देखिये, वीणा १९६१, अंक ६

अतएव कृति के महाकार से अप्रभावित रह कर हम उसे महाकाव्य तो क्या सामान्य वर्णनात्मक प्रबन्ध भी स्वीकार नहीं कर सकते।

१८. बाणाम्बरी

इस कृति की वस्तुकथा का मूल स्रोत बाणभट्ट-कृत 'हर्षचरित' है जिसके प्रथम दो उच्छ्वासों मे बाण ने अपने वंश का परिचय दिया है और अंतिम छै उच्छ्वासों में सम्राट् हर्षवर्धन के चरित को अंकित किया है। कवि मदण ने भी इसी कथा को अपनी कृति के १२ सर्गों मे फैला दिया है और इसके बाद बारहवें सर्ग में 'हर्ष चरित' के आधार पर हर्ष का चरित वर्णन किया है। अवशिष्ट आठ सर्गों में बाण के शेष जीवन की कथा है जो कल्पना-प्रसूत है।

साधारणतः प्रसंगों में कवि की उद्‌भावना ने कुछ कतर छाँट कर दी है। मूल कथा मे देश-देशान्तर में घूमता हुआ बाण कई बड़े-बड़े राज्य-कुलों को देखता है और अध्ययन-अध्यापन से उद्‌भासित कई गुरुकुलों में रहता है। उसे बड़ी-बड़ी गोष्ठियों में बैठने का अवसर मिलता है। बाणाम्बरी में कुछ परिवर्तन मिलता है। यहाँ बाण की एक अपनी अभिनय-मंडली है जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों ही सम्मिलित हैं। वह घूम-घूम कर अनेक श्रेष्ठ नाटकों का अभिनय प्रस्तुत करता है। यहाँ बाणाम्बरीकार डा० हजारीप्रसाद-द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से प्रभावित हुआ है।

मूल कथा मे हर्ष से मिलने के लिए जाता हुआ बाण सीधा हर्ष से जा मिलता है। वहाँ कृष्णवर्धन से मिलने का कोई प्रसग नहीं है। 'मदण' ने इस प्रसंग को कुछ फैला दिया है। बाण हर्ष से मिलने के पूर्व कृष्ण-वर्धन से मिलता है और हर्ष द्वारा बाण के अपमानित होने पर कृष्णवर्धन स्वयं बाण को सान्त्वना देने आते हैं।

बाण का वेणी से विवाह, वेणी के अन्धी होने का प्रसंग, बाण द्वारा नाट्यमण्डली की स्थापना, बाण की अभिनय-कुशलता, मायवी-प्रसंग, बाण-रेखा-मैत्री, रेखा का संन्यास, वेणी की मृत्यु, बाण का काशी-निवास, मल्लिको-द्धार, मल्लिका से विवाह, पुत्रोत्पत्ति, बाण-कृष्णवर्धन-मैत्री आदि प्रसग एक दम मौलिक हैं; किन्तु इनकी प्रेरणा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से मिली दिखती है।

बाण-विवाह के प्रतिरूपण की प्रेरणा संभवतः कवि को हर्ष-चरित के इस संकेत से मिली दीखती है—"विवाह के बाद से लेकर मैं नियमित गृहस्थ हूँ।"[1] इसी प्रकार हर्ष द्वारा अपमानित बाण का कुछ समय तक अपने

१. "दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि"—हर्षचरित

बन्धु-बांधवो मे रहना, फिर प्रभावित सम्राट् का स्वय बाण के घर आकर उसे शरदोत्सव के लिए आमन्त्रित करना, उत्सव मे अपना रत्नहार उतार उसे बाण के कठ मे डालकर बाण को समादृत करना और फिर राजभवन मे ले जाना आदि प्रसग कादबरी से प्रभावित दीख पड़ते हैं।[1]

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है बाणाबरी के द्वादश सर्ग में सम्राट् हर्षवर्धन की जीवनगाथा है जो पूर्णतया हर्षचरित के छ उच्छ्वासों मे वर्णित मिलती है। बाणाबरी को यह कथा निष्प्रयोजन प्रतीत होती है।

इसके बाद के प्रसगों मे प्रमुख हैं—स्थाण्वीश्वर में रहकर पर्याप्त ख्याति अर्जित करने के उपरान्त बाण का अपने जन्म-स्थान प्रीतिकूट को लौट जाना, मल्लिका से उसके द्वितीय पुत्र का जन्म, एक बार पुन स्थाण्वीश्वर लौटकर बाण का अपनी अधूरी कृति को समाप्त करने का प्रयास, किन्तु बीच मे ही देहावसान, श्री हर्ष का शव-यात्रा म सम्मिलित होना, अन्त्येष्टि सस्कार आदि।

	नवीन उद्भावनाओ की भूमि पर अ कुरित एव पल्लवित यह रचना
१९ लोकायतन	सस्कृत साहित्य के किसी कथा-सूत्र से प्रभावित नही है। हां, विचार-धारा और सदर्भों पर 'सस्कृत' का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है जिसका उल्लेख यथास्थान किया गया है।

इस विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों मे कुछ तो ऐसे हैं जिनका सस्कृत साहित्य की कथावस्तु से कोई सबध ही नहीं है, जैसे, प्रेमचन्द, जननायक आदि। इनकी कथावस्तु, इसी युग से सम्बन्ध रखती है। कुछ ऐतिहासिक हैं, फिर भी जिनका स्रोत सस्कृत साहित्य से सम्बन्धित नही है, जैसे मीरां। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे हैं जो सस्कृत से आये हुए कथानकों पर आधृत हैं। ये महाकाव्य दो कोटियो मे रखे जा सकते हैं एक तो वे महाकाव्य जो सस्कृत कथानक से बहुत कम हटे हैं, जैसे "रामकथाकल्पलता", दूसरे वे हैं जो नवीनता के परि-पार्श्व मे युग की भावनाओं के अनुरूप बदल गये हैं, जैसे प्रियप्रवास। ऐसे काव्यों में चरित्र प्रमुख रहा है।

---

१ अपरेद्यु निष्क्रम्य कटकात्सुहृदां बांधवाना च भवनेषु
द्रविणस्य नर्मण प्रभावस्य च पराकोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति।

४. चरित्र-चित्रण

४ | चरित्र-चित्रण

पूर्व अध्याय मे विवेच्य काव्यों के कथानकों पर संस्कृत के प्रभाव की गवेषणा करते हुए हम देख चुके हैं कि कई मे रचयिताओं ने परम्परागत कथा को ग्रहण करके अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति से कुछ नवीन प्रसंगों की योजना कर, उसे अधिक आकर्षक, प्रभावोत्पादक तथा युगानुरूप बनाने का प्रयास किया है। चरित्र-विधान में भी कवियों की यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यह सत्य है कि किसी भी पात्र की पूरी बागडोर कवि की इच्छा के हाथों में होती है। वह अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा बनाने के लिये अपनी प्रतिभा को स्वतन्त्रता दे सकता है। फिर भी अच्छा कवि ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विख्यातियों की सीमाओं का नितान्त उल्लंघन करने का अधिकार नहीं ले बैठता है। इसलिए सिद्धियों और प्रसिद्धियों की मर्यादा में ही वह चारित्रिक परिवर्तन करता है। यही कारण है कि निरूप्य काव्यों के पात्र एक ओर तो युगानुरूप नवचेतना से अनुप्राणित हैं और दूसरी ओर परम्परागत विशेषताओं को भी अपने में समाहित किये हुए हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, कृष्ण, युधिष्ठिर, कर्ण, अर्जुन, भीम, नल, एकलव्य, बाणभट्ट, दमयन्ती, सीता, पार्वती आदि के चरित्र इसके प्रमाण हैं।

आलोच्य काव्यों के कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो नाममात्र के लिए परम्परा की पीठिका प्रस्तुत करते हैं। वास्तव मे उनके चरित्र का स्पष्ट विकास संस्कृत साहित्य मे देखने को नहीं मिलता। ऐसे पात्रों की चारित्रिक अवतारणा आधुनिक कवियो द्वारा सर्वदा मौलिक ढंग से की गयी है। उर्मिला, मांडवी, श्रद्धा, मनु, राधा आदि पात्र इसी कोटि के हैं। कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनका चरित्र संस्कृत साहित्य में अति विगर्हित रूप मे मिलता है, किन्तु हमारे महाकवियों ने उनके चरित्र को ऊँचा उठाने के निमित्त उन्हें परम्परा से पृथक् करके चित्रित किया है। 'रावण' महाकाव्य मे रावण और 'दैत्यवंश' में दैत्यवंशीय नृपों के

चरित्र खलनायकों की परम्परा से हटकर धीरोदात्त नायक की विशेषताओं को लिये हुए हैं। इनके चरित्रों को इतना ऊँचा उठा दिया गया है कि इनके समक्ष इनके प्रतिपक्षियों के चरित्र भी (चाहे वे दैवी पात्र ही क्यों न हो,) फीके जान पडते है।

इस अध्याय में हम नायक और नायिका रूप में प्रतिष्ठित कृष्ण, राधा, राम, कर्ण, युधिष्ठिर, एकलव्य, नल, लक्ष्मण, बाणभट्ट, सीता, पार्वती, दमयन्ती आदि पात्रो तथा दुर्योधन, पार्थ, द्रोण, दशरथ इत्यादि कुछ गौण पात्रों के चरित्रो पर सस्कृत के प्रभाव की गवेषणा करेंगे।

चरित्र-चित्रण की सुविधा के लिए इस अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यों के पात्रो को प्रभाव की दृष्टि से प्रमुखत तीन वर्गों मे रखा गया है (१) कृष्ण-काव्य से सम्बन्धित पात्र, (२) राम कथा से सम्बन्धित पात्र, (३) इतर आख्यानों से सम्बन्धित पात्र।

कृष्ण-कथा से सम्बन्धित पात्रो के चरित्र-चित्रण का आधार मूलत भागवत-पुराण रहा है, किन्तु कही-कही महाभारत का प्रभाव भी सन्निविष्ट हो गया है।

रामकथा का मूल उत्स वाल्मीकिरामायण है और अनेक पात्र मूलत उसी भूमिका पर प्रस्तुत हुए हैं, किन्तु जिस प्रकार महात्मा तुलसीदास ने मानस के पात्रो के चरित्र चित्रण से मूल का अनुकरण करते हुए भी लक्ष्य की आवश्यकता के अनुसार मौलिकता का पुट भी दे दिया है, उसी प्रकार साकेत, वैदेही-वनवास, आदि काव्यो मे मौलिकता का रग दृष्टिगोचर होता है। रामकथा से सम्बन्धित कितने ही प्रसग उत्तररामचरित, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, महावीर चरित, अनघराघव, अध्यात्मरामायण आदि से भी प्रभावित हुए हैं। साकेत, वैदेही-वनवास आदि रामकथा से सम्बन्धित काव्यों पर हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव या उत्तररामचरित का प्रभाव है। रामकथा को तुलसीदास की मौलिक उद्भावनाओं ने भी प्रभावित किया है, किन्तु इस प्रबन्ध मे सस्कृतेतर प्रभाव की विवेचना अपेक्षित न होने से उनका उल्लेख नही किया गया है।

इतर उपाख्यानों से सम्बन्धित पात्रों मे हमारे सामने वे पात्र आते हैं जिनका चरित्र चित्रण महाभारत से अथवा भागवत आदि किसी पुराण से अथवा नैषधीयचरितम्, कुमारसम्भव, कादंबरी, हर्षचरित आदि किसी साहित्यिक रचना से प्रभावित है।

भागवत के कृष्ण धीर-ललित नायक के गुणों से सम्पन्न हैं, किन्तु महाभारत के कृष्ण धीरोदात्त हैं। कृष्णायन के कृष्ण के चरित पर महाभारत और भागवत दोनों का प्रभाव दिखायी पड़ता है। इसके विपरीत 'प्रियप्रवास' महाकाव्य के कृष्ण का चरित्र भागवत की छाया में चित्रित किया गया है, सारे प्रसंग भागवत से लिये गये हैं, किन्तु प्रसंगों की व्याख्याएँ आदर्श की भूमिका पर प्रतिष्ठित की गयी हैं, इसलिए कृष्ण का चरित्र भागवत के कृष्ण के चरित्र से बहुत भिन्न हो गया है।

राधा का चरित्र भी प्रियप्रवास में कुछ विलक्षण हो गया है। राधा का जो स्वरूप विद्यापति पदावली, चण्डीदास पदावली, अष्टछाप पदावली आदि कृष्ण-काव्यों में प्रस्तुत किया गया है, प्रियप्रवास में वैसा नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भागवत में राधा का कोई उल्लेख नहीं है। हाँ, ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गसंहिता में राधा के विवाह आदि का प्रसंग आता है और उन ग्रन्थों में यह कृष्ण की महाशक्ति के रूप में ही चित्रित हुई है। राधा का सम्बन्ध पंचरात्र से भी रहा है। गीत-गोविन्दकार ने अपनी रचना में राधा और कृष्ण की प्रणयलीला का मोहक चित्र प्रस्तुत किया है, किन्तु प्रियप्रवास की राधा इनमें से किसी से नहीं मिलती।

प्रियप्रवास की राधा प्रणयिनी है किन्तु उसका प्रणय अन्ध नहीं है। प्रियप्रवास की राधा के चरित्र को आदर्श की भूमिका दी गयी है, प्रणय को त्याग की भावना से गौरवान्वित किया गया है। उसमें समाज-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी है, इसलिए वह स्वयं दुःख सहती हुई भी जनहित में कोई प्रणय-परक बाधा प्रस्तुत नहीं करती।

कुछ पात्रों का निर्माण आलोच्य महाकाव्यों में या तो प्रागैतिहासिक घटनाओं के आधार पर हुआ है अथवा मौलिकता से प्रेरित है। कामायनी के मनु और श्रद्धा प्रागैतिहासिक पात्रों में सम्मिलित किये जा सकते हैं। महाकवि प्रसाद ने शतपथ ब्राह्मण, भागवत पुराण आदि के संकेत-सूत्रों से मनु, श्रद्धा, आदि का चरित्र-पटनिर्मित किया है, जिस पर संस्कृत का प्रभाव चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नगण्य है। हाँ उर्मिला के चारित्रिक-निर्माण में महाकवि *मैथिलीशरण गुप्त ने मौलिकता का समुचित उपयोग किया है।* इस काव्य की विशेषता यह है कि प्राचीन कथानक की *नव्य-व्यवस्था* से उर्मिला के चरित्र को सामने प्रस्तुत किया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वाल्मीकि से लेकर आधुनिक युग तक किसी रामकथाकार ने उर्मिला की दशा के साथ

चरित्र खलनायकों की परम्परा से हटकर धीरोदात्त नायक की विशेषताओं को लिये हुए हैं। इनके चरित्रों को इतना ऊँचा उठा दिया गया है कि इनके समक्ष इनके प्रतिपक्षियों के चरित्र भी (चाहे वे दैवी पात्र ही क्यों न हो,) फीके जान पड़ते है।

इस अध्याय मे हम नायक और नायिका रूप मे प्रतिष्ठित कृष्ण, राधा, राम, कर्ण, युधिष्ठिर, एकलव्य, नल, लक्ष्मण, बाणभट्ट, सीता, पार्वती, दमयन्ती आदि पात्रो तथा दुर्योधन, पार्थ, द्रोण, दशरथ इत्यादि कुछ गौण पात्रों के चरित्रो पर सस्कृत के प्रभाव की गवेषणा करेंगे।

चरित्र-चित्रण की सुविधा के लिए इस अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यों के पात्रो को प्रभाव की दृष्टि से प्रमुखत तीन वर्गों मे रखा गया है (१) कृष्ण-काव्य से सम्बन्धित पात्र, (२) राम कथा से सम्बन्धित पात्र, (३) इतर आख्यानों से सम्बन्धित पात्र।

कृष्ण-कथा से सम्बन्धित पात्रो के चरित्र-चित्रण का आधार मूलत भागवत-पुराण रहा है, किन्तु कहीं-कहीं महाभारत का प्रभाव भी सन्निविष्ट हो गया है।

रामकथा का मूल उत्स वाल्मीकिरामायण है और अनेक पात्र मूलत उसी भूमिका पर प्रस्तुत हुए हैं, किन्तु जिस प्रकार महात्मा तुलसीदास ने मानस के पात्रों के चरित्र-चित्रण से मूल का अनुकरण करते हुए भी लक्ष्य की आवश्यकता के अनुसार मौलिकता का पुट भी दे दिया है, उसी प्रकार साकेत, वैदेही-बनवास, आदि काव्यो मे मौलिकता का रग दृष्टिगोचर होता है। रामकथा से सम्बन्धित कितने ही प्रसग उत्तररामचरित, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, महावीर चरित, अनर्घराघव, अध्यात्मरामायण आदि से भी प्रभावित हुए हैं। साकेत, वैदेही-बनवास आदि रामकथा से सम्बन्धित काव्यों पर हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव या उत्तररामचरित का प्रभाव है। रामकथा को तुलसीदास की मौलिक उद्भावनाओं ने भी प्रभावित किया है, किन्तु इस प्रबन्ध मे सस्कृतेतर प्रभाव की विवेचना अपेक्षित न होने से उनका उल्लेख नही किया गया है।

इतर उपाख्यानों से सम्बन्धित पात्रो मे हमारे सामने वे पात्र आते हैं जिनका चरित्र चित्रण महाभारत से अथवा भागवत आदि किसी पुराण से अथवा नैषधीयचरितम्, कुमारसम्भव, कादबरी, हर्षचरित आदि किसी साहित्यिक रचना से प्रभावित है।

भागवत के कृष्ण धीर-ललित नायक के गुणों से सम्पन्न हैं, किन्तु महाभारत के कृष्ण धीरोदात्त हैं। कृष्णायन के कृष्ण के चरित पर महाभारत और भागवत दोनों का प्रभाव दिखायी पड़ता है। इसके विपरीत 'प्रियप्रवास' महाकाव्य के कृष्ण का चरित्र भागवत की छाया में चित्रित किया गया है, सारे प्रसंग भागवत से लिये गये हैं, किन्तु प्रसंगों की व्याख्याएँ आदर्श की भूमिका पर प्रतिष्ठित की गयी हैं; इसलिए कृष्ण का चरित्र भागवत के कृष्ण के चरित्र से बहुत भिन्न हो गया है।

राधा का चरित्र भी प्रियप्रवास में कुछ विलक्षण हो गया है। राधा का जो स्वरूप विद्यापति पदावली, चण्डीदास पदावली, अष्टछाप पदावली आदि कृष्ण-काव्यों में प्रस्तुत किया गया है, प्रियप्रवास में वैसा नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भागवत में राधा का कोई उल्लेख नहीं है। हाँ, ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गसंहिता में राधा के विवाह आदि का प्रसंग आता है और उन ग्रन्थों में वह कृष्ण की महाशक्ति के रूप में ही चित्रित हुई है। राधा का सम्बन्ध पंचरात्र से भी रहा है। गीत-गोविन्दकार ने अपनी रचना में राधा और कृष्ण की प्रणयलीला का मोहक चित्र प्रस्तुत किया है, किन्तु प्रियप्रवास की राधा इनमें से किसी से नहीं मिलती।

प्रियप्रवास की राधा प्रणयिनी है किन्तु उसका प्रणय अन्ध नहीं है। प्रियप्रवास की राधा के चरित्र को आदर्श की भूमिका दी गयी है, प्रणय को त्याग की भावना से गौरवान्वित किया गया है। उसमें समाज-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी है, इसलिए वह स्वयं दुःख सहती हुई भी जनहित में कोई प्रणय-परक बाधा प्रस्तुत नहीं करती।

कुछ पात्रों का निर्माण आलोच्य महाकाव्यों में या तो प्रागैतिहासिक घटनाओं के आधार पर हुआ है अथवा मौलिकता से प्रेरित है। कामायनी के मनु और श्रद्धा प्रागैतिहासिक पात्रों में सम्मिलित किये जा सकते हैं। महाकवि प्रसाद ने शतपथ ब्राह्मण, भागवत पुराण आदि के संकेत-सूत्रों से मनु, श्रद्धा, आदि का चरित्र-पटनिर्मित किया है, जिस पर संस्कृत का प्रभाव चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नगण्य है। हाँ उर्मिला के चारित्रिक-निर्माण में महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने मौलिकता का समुचित उपयोग किया है। इस काव्य की विशेषता यह है कि प्राचीन कथानक की नव्य-व्यवस्था से उर्मिला के चरित्र को सामने प्रस्तुत किया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वाल्मीकि से लेकर आधुनिक युग तक किसी रामकथाकार ने उर्मिला की दशा के साथ

सहानुभूति व्यक्त नही की थी। आधुनिक युग मे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से नारी का गौरव भारत मे भी जगा। उसने एक महत्व पूर्ण अँगड़ाई ली जिससे काव्य की उपेक्षिता के रूप मे कुछ ऐतिहासिक अथवा साहित्यिक नारियो के प्रति न्याय-भावना का उत्क्रमण हुआ। परिणामत गुप्तजी की दृष्टि न केवल उर्मिला की ओर ही मुडी, वरन् यशोधरा और विष्णुप्रिया को भी उन्होंने बडी सहानुभूति से देखा।

साकेत की उर्मिला नायिका होते हुए भी सस्कृत-साहित्य के प्रभाव से मुक्त है क्योकि उसकी ओर किसी सस्कृत कवि की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि नही गई। कुछ नाटकों मे उर्मिला का उल्लेख मात्र होकर रह गया है। अतएव इस अध्याय में उर्मिला के चरित्र को प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं आया है।

कृष्ण

लोकमानस में युग-युग से प्रतिष्ठित कृष्ण का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न आदर्शों की सृष्टि करता रहा है। सस्कृत काव्यो में कृष्ण के मुख्यतया तीन रूप देखने मे आते हैं, एक तो कृष्ण का गोपीजन-वल्लभ रूप जिसका निदर्शन हरिवश-पुराण, भागवतपुराण, गीतगोविन्द आदि ग्रन्थो से हुआ है; दूसरा लोकरक्षक एव धर्म-सस्थापक-रूप जिसका चित्रण महाभारत मे विशेष रूप से हुआ है तथा तीसरा नीतिज्ञ एव दार्शनिक रूप जो भगवद्गीता (महाभारत का ही एक भाग) का प्रतिपाद्य रहा है। कृष्ण के इन तीनों रूपों के अतिरिक्त उनका सर्वमान्य रूप 'परब्रह्म' का है, जिसको भक्तों ने सगुण ब्रह्म के रूप मे स्वीकार किया है। कृष्ण का यह स्वरूप जितना सस्कृत-ग्रन्थों मे मान्य रहा है उतना ही हिन्दी-ग्रन्थों मे भी रहा है। हिन्दी के भक्त कवियों ने अवतारी कृष्ण को गोपीवल्लभ, गोकुलेश, मथुरेश, द्वारिकाधीश, नवनीतप्रिय आदि नामों से अभिहित किया है। आधुनिक काव्यों में कृष्ण-चरित्र मे पूर्वानुगत सभी रूपों का विनिवेश हुआ है। कृष्णायन मे कृष्णचरित्र इन सभी रूपों का सम्मिश्रण है। प्रियप्रवास के कृष्ण ललित के स्थान पर धीरोदात्त हो गये हैं। ऐसे ही परिवर्तन अन्यत्र भी हुए हैं।

परब्रह्म

आधुनिक काव्यो मे युग की आवश्यकता और विचारधारा को ध्यान में रखते हुए कृष्ण के चरित्र के पुनर्मूल्याकन का प्रयत्न किया गया है। आज के वैज्ञानिक और तार्किक मस्तिष्क की ग्राह्यता के अनुरूप कृष्ण को परब्रह्म के रूप में चित्रित न करके एक महापुरुष और कर्तव्यनिष्ठ समाज-सेवक के रूप मे चित्रित

किया गया है। उनके द्वारा सम्पन्न कालियवध, गोवर्धनधारण, अघासुर-वध आदि कार्य अलौकिक और अविश्वसनीय नही हैं। अगर अलौकिक हैं भी तो इस अर्थ मे कि उनके पीछे अलौकिक बुद्धि-क्षमता और तत्परता है। यही प्रियप्रवास के 'कृष्ण' का रूप है, पर यह प्रगतिशील दृष्टिकोण सभी कवियों ने नही अपनाया है। अन्य कवि अपने मानस में प्रतिष्ठित उस परब्रह्म रूप को नही भुला पाये हैं, जिसकी झाँकी पुराणों में स्थान-स्थान पर दिखायी देती है। 'कृष्णायन' इसका प्रमुख उदाहरण है। 'कृष्णायन' के कृष्ण पूर्णब्रह्म हैं।[१] वे सब प्राणियों के ईश्वर, अनादि और अनन्त हैं। वे अपनी माया से अवतार ग्रहण करते हैं। जब-जब अधर्म बढता है, धर्म क्षीण होता है तब-तब वे सज्जनों के परित्राण और खलों के नाश के लिए अवतार ग्रहण करते हैं।[२] कृष्ण का यह रूप भागवत और महाभारत सम्मत है। भागवत के कृष्ण भी प्रकृति से अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। वे ससार की रक्षा के लिए अवतार लेते हैं।[३] गीता मे भी कृष्ण अर्जुन को अपने परब्रह्म रूप को प्रस्तुत करते हुए अपने अवतार का यही उद्देश्य बताते हैं।[४] आलोच्य काव्यों में द्रौपदी-वस्त्र-हरण, दुर्वासा-आतिथ्य, कुरुक्षेत्र-प्रसग आदि मे कृष्ण का यह रूप बडी स्पष्टता से चित्रित किया गया है।

अवतारी-रूप मे कृष्ण बाल्यकाल से ही लोक-रक्षण के कार्यों मे सलग्न दिखायी पडते हैं। 'कृष्णायन' मे वत्सासुर, बकासुर, भौमासुर, जरासध, कस, पौण्ड्रक, शिशुपाल, ऋत्विज आदि अनेक दुष्टों का सहार कर वे लोक का कल्याण करते हैं। धर्म की रक्षा के लिए ही वे दुर्योधन आदि असद्प्रवृत्ति के लोगों का साथ न देकर सन्मार्गी धर्मनिष्ठ पाडवों का साथ देते हैं। पाडवों के

---

१. भयेउ कला षोडश सहित, कृष्णचन्द्र अवतार।
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, बरनहुं मति अनुसार॥
—कृष्णायन, पृ० २

२. यद्यपि मैं सब प्राणिन-ईश्वर, आत्मा जन्म-विहीन, अनश्वर,
तदपि प्रकृति निज मैं अपनायो, लेहुं जन्म माया ते आयो।
बढ़त अधर्म, धर्म जब छीजत, आपुहिं तब मैं अर्जुन सिरजत,
करन हेतु सज्जन-परित्राणा, हरन हेतु खल पापिन प्राणा।
थापन हेतु धर्म संसारा, युग-युग लेहुं सगुण अवतारा।
—कृष्णायन, पृ० ३११

३. श्रीमद्भागवत पुराण, १०, ३, १३—२०

४. श्रीमद्भागवतगीता, ४, ६—८

वह 'आभूषणों से भूषित' एवं 'सद्वस्त्र-धारिणी' है। गुणों के कारण उसका सर्वत्र सम्मान होता है। वह रोगी-वृद्ध आदि जनों के उपकार में निरता तथा सच्छास्त्रचिन्तापरा है। कवि ने उसे सद्भावातिरता, अनन्य-हृदया तथा सत्प्रेमसपोषिका बतलाया है।[१]

एक ओर कवि ने राधा का पूर्वोक्त रूप चित्रित किया है और दूसरी ओर उसे वियोग की साक्षात् प्रतिमा के रूप में चित्रित किया है। वह कृष्ण-वियोग में एक तपस्विनी का सा जीवन व्यतीत करती है। तपोभूमि के समान एक वाटिका में एक शान्त-कुञ्ज के भीतर इसका निवास है। उसकी प्रशान्त, म्लान एवं दिव्य मूर्ति को देखकर उद्धव बड़े प्रभावित होते हैं।[२] सौन्दर्य में विरहजन्य म्लानता तथा दिव्य कान्ति में शान्ति के समावेश से राधा को कवि ने एक अद्भुत रूप प्रदान किया है।[३]

राधा के हृदय का चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि लिखता है.—

प्यारे आवें सु-बयन कहें प्यार से गोद लेवें।
ठंडे होवें नयन दुख हो दूर मैं मोद पाऊँ।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें।।[४]

उपर्युक्त मीमांसा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'हरिऔध' ने राधा को प्रणयिनी, वियोगिनी और लोक-सेविका के रूप में अंकित किया है।

प्रणयिनी राधा के प्रणय का विकास स्वाभाविक ढंग से हुआ है। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम बालक्रीडाओं में अंकुरित और युवावस्था में पल्लवित होकर प्रगाढ हो जाता है। वह कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करना चाहती है, किन्तु कृष्ण के मथुरा चले जाने से उसकी आकांक्षा पूरी नहीं हो पाती है।

असह्य-विरह-वेदना से पीड़ित राधा कृष्ण-विरह में चुपचाप घुलती रहती है। उसके प्रेम में वासनाजन्य चचलता नहीं है। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम गम्भीर एवं दृढ़ है। कवि ने राधा की विवशता, अधीरता, आशका

---

१. प्रियप्रवास, ४४
२. वही, पृ० २११.३१–३२
३. वही, पृ० २६०.२७
४. वही, पृ० ३०४.९८

और व्याकुलता का चित्र बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। विरह-वेदना से व्यथित होती हुई भी राधा अपने प्रेम का प्रदर्शन नहीं करती। उसे प्रकृति ने मूक सहिष्णुता प्रदान की है।

यह एक कुमारी है, इस बात का उसे पूरा ध्यान है। इसलिए वह अपने प्रेम को संयत और सीमित रखती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह एक आदर्श प्रेमिका है। विरह-वेदना ने उसे अधिक उदार और सहानुभूतिपूर्ण बना दिया है।

लोकहित की भावना राधा के चरित्र की एक बड़ी भारी विशेषता है। वह कृष्ण में अनुरक्त है, किन्तु वह अपने सुख के लिए अपने प्रिय को, लोकहित के मार्ग से भ्रष्ट नहीं करना चाहती। वह प्रेम से कर्तव्य को, व्यक्तिगत सुख की अपेक्षा समष्टि के सुख को और स्वार्थ की अपेक्षा परहित को ऊँचा समझती है। उसके प्रेम मे त्याग, सहनशीलता और लोक-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी है।

राधा के चरित्र में लोकहित की भावना का एक क्रम-विकास दीख पडता है। राधा के सौन्दर्य-वर्णन मे भी कवि ने इस भावना की ओर संकेत किया है।[१] आगे चलकर एक स्थिति ऐसी भी आती है कि प्रेम और लोकहित-भावना मे खुली टक्कर भी दिखायी दी है,[२] किन्तु विजयिनी लोकहित-भावना ही हुई है।

राधा का संयम-शिष्ट और शालीन है। उद्धव के साथ वार्तालाप में उसने अपने इन गुणो के साथ पवित्र-प्रेम का परिचय दिया है।

राधा का चरित्र कहीं-कहीं नारी-सुलभ दुर्बलता से पीडित मिलता है,[३] किन्तु वह उसके चरित्र का क्षणिक रूप है, स्थायी नहीं। प्रियप्रवास के अन्त में राधा का प्रेम दिव्यरूप से व्यक्त होता है और वह यह कहती सुनायी पडती है:—

"प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें।"[४]

---

१. प्रियप्रवास, पृ० ४४.८
२. वही, पृ० २६६.५६
३. वही, पृ० २६५.५०

राधा के चरित्र की अन्तिम सीढ़ी वह है जिस पर वह अपने व्यक्तिगत प्रेम को विश्व-प्रेम में परिणत कर देती है। वह अपने प्रिय को सारे विश्व में प्रतिबिम्बित देखती है। इसलिए वह आजन्म कौमारव्रत पालन करती हुई दीन-दुखियों की सेवा में निरत हो जाती है। लोक-सेविका के रूप में 'हरिऔध' ने उनको इन शब्दों में अङ्कित किया है—

> वे छाया थीं सुजन-सिर की शासिका थीं खलों की।
> कंगालों की परमनिधि थीं औषधी पीड़ितों की।
> दीनों की थीं बहिन, जननी थीं अनाथाश्रितों की।
> आराध्या थीं व्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं॥[1]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हरिऔध की राधा एक आदर्शवती महिला है। कवि ने उसके चरित्र में मानवीय दुर्बलता और सहनशीलता, चंचलता और गम्भीरता तथा मोह और त्याग का सुन्दर सामंजस्य दिखाया है।[2] उसके चरित्र के विकास में स्वाभाविकता है। उसकी प्रणयगत मूक-वेदना का अवसान लोकसेवा-रति में होता है। इसी कारण वह निराशा से मुक्त हो जाती है। मोहमय स्वार्थ को छोड़कर एक आदर्श भारतीय नारी देश और समाज के लिए क्या नहीं कर सकती, इस दृष्टि से हरिऔध की राधा व्रत की साक्षात् सिद्धि है।

उसका यह स्वरूप न तो गीतगोविन्द में है, न ब्रह्मवैवर्तपुराण में है और न गर्गसंहिता में है। चण्डीदास, विद्यापति और अष्टछाप के कवि-जन भी राधा के इस रूप को चित्रित नहीं कर पाये हैं। अतएव राधा का यह चित्र बिल्कुल अनुपम है। हाँ, राधा की सहानुभूतिशीलता में मेघदूत की थोड़ी सी छाया पड़ी दीखती है।

कृष्णायन की राधा में ये गुण नहीं हैं। वहाँ राधा-कृष्ण की बाल-सहचरी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। पाठकों को उसका साक्षात्कार मथुरा-काड में कृष्ण के सन्देशवाहक उद्धव के साथ होता है और अन्त में गीता काड में सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में उसकी एक झलक दीख पड़ती है। वास्तव में 'कृष्णायन' की राधा सूरसागर की छाया में अवतीर्ण हुई है। उसके चरित्र का न तो कोई विकास हुआ है और न उस पर किसी संस्कृत ग्रन्थ का प्रभाव ही है।

---

१. प्रियप्रवास, १७।४९

२. देखिये, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १४४

युधिष्ठिर

महाभारत के धर्मपरायण और गौरवगरिमोपेत पात्र युधिष्ठिर का चरित्र भी आधुनिक महाकाव्यों के पृष्ठों पर उतरा है। इन काव्यों में युधिष्ठिर के चरित्रांकन में भी कवियों की भिन्न-भिन्न प्रकार की मनोवृत्ति दिखलायी पड़ती है। कुछ कवियों ने उन्हें (उनके चरित्र को) परम्परा की उच्च भूमिका पर चित्रित किया है तथा अन्य कवियों ने मौलिकता के प्रबल आकर्षण से बँधकर गर्हित रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है जो लोक-मानस के लिए सरलता से ग्राह्य नहीं है। प्रथम प्रकार का प्रयास 'जय-भारत' और 'कृष्णायन' जैसे काव्यों में देखा जा सकता है तथा दूसरा रूप 'अंगराज' और 'सेनापति कर्ण' में है।

महाभारत में युधिष्ठिर का चरित्र धर्मनिष्ठता, सत्यप्रियता, क्षमाशीलता, शान्तिप्रियता, शरणागतवत्सलता, निस्पृहता आदि गुणों से संयुक्त है और इन्हीं का उल्लेख 'जयभारत', 'कृष्णायन' आदि आधुनिक काव्यों में विशेष रूप से देखा जा सकता है। अपनी धर्मनिष्ठता के कारण युधिष्ठिर आज भी धर्मराज के नाम से विख्यात हैं। धर्मानुपालन ही उनके जीवन का श्रेय और प्रेय है। धर्म के सम्मुख वे जीवन, यश, सम्मान, धन, सन्तान आदि सभी को तुच्छ और त्याज्य समझते हैं :—

> जीवन, यश, सम्मान, धन, सन्तान, सुख सब मर्म के।
> मुझको परन्तु शतांश भी लगते नहीं निज धर्म के।[1]

पैतृक भूमि, त्रिभुवन का राज्य, सम्पूर्ण विश्व की सुख सामग्री, यहाँ तक कि ब्रह्मपद को भी वे धर्म को छोड़ कर स्वीकार नहीं कर सकते हैं। धर्म के समान उन्हें कुछ भी प्रिय नहीं है।[2] महाभारत में भी युधिष्ठिर अपने अनुज भीम के समक्ष इसी प्रकार के उद्‌गार व्यक्त करते हैं :—

> मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां,
> वृणे धर्मममृताज्जीविताच्च।
> राज्यं च पुत्राश्च यशो धनं च,
> सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति ॥[3]

---

१. जयभारत, पृ० ३१८
२. कृष्णायन, पृ० २७१
३. म०, भा०, व० प०, ३५, २२

सत्य और धर्म की रक्षा–हेतु वे आजीवन प्रयत्नशील रहते हैं। अपनी धर्मपरायणता और सत्यप्रियता के कारण उन्हें और उनके भाइयों को अनेक कष्ट भी सहने पड़ते हैं।

युधिष्ठिर की सहनशीलता और आज्ञा-पालन में तत्परता वारणावत-गमन, द्यूतक्रीड़ा आदि प्रसंगों में देखी जा सकती है। वारणावत प्रसंग में दुष्ट दुर्योधन द्वारा परिचालित धृतराष्ट्र की कुत्सित भावना को जानकर भी वे गुरुजनों की आज्ञा के पालन के उद्देश्य से वारणावत जाने को तैयार हो जाते हैं।[1] एक बार द्यूत में कौरवों द्वारा हराये जाने के उपरान्त जब धृतराष्ट्र उन्हें फिर द्यूतक्रीड़ा के लिए आमन्त्रित करते हैं तो भाइयों द्वारा मना किये जाने पर भी वे 'मोहि निदेश मान्य सब काला' कहकर फिर से द्यूतक्रीड़ा के लिए उद्यत हो जाते हैं।[2] उनकी सहनशीलता की पराकाष्ठा तो उस समय देखी जा सकती है जब कि दुर्योधन की सभा में द्रौपदी के चीरहरण का प्रयास होता है और वे प्रतिज्ञा के सूत्र में बँधे मूक होकर देखते रहते हैं।[3] युधिष्ठिर को अपने शान्त स्वभाव और धर्मप्रियता के कारण भीम, द्रौपदी इत्यादि से बड़े व्यंग्यात्मक वचन भी सहने पड़ते हैं।[4] संस्कृत के वेणीसंहार नाटक में भी भीम को युधिष्ठिर के शान्तस्वभाव पर व्यंग्य करते हुए देखा जा सकता है।[5]

युधिष्ठिर शान्ति और क्षमा के पक्षपाती हैं। महाभारत में युधिष्ठिर द्रौपदी के समक्ष बड़े विस्तार से क्रोध की निन्दा और क्षमाभाव की प्रशंसा करते हैं।[6] अपने विरोधियों और अपराधियों के प्रति भी वे सदैव क्षमाशील रहे हैं। यद्यपि कौरव उनके साथ निरन्तर क्रूरता और दुष्टता का व्यवहार करते हैं फिर भी युधिष्ठिर उनके सम्बन्ध में सदैव अपने भ्रातृप्रेम का परिचय देते हैं। जब दुर्योधन पांडवों को परेशान करने की इच्छा से सेनासहित वन में

---

१. जो आज्ञा को छोड़ युधिष्ठिर क्या कहते।
सुजन शीलवश वहन दुःख भी हैं सहते।
—जयभारत, पृ० ७०

२. कृष्णायन, पृ० २४३

३. वही, पृ० २३४

४. वही, पृ० २४७, पृ० २०६

५ वेणीसंहार, १, ११

६. म० भा०, व० प०, २६ अ०

पहुँचता है और गधर्वराज चित्ररथ द्वारा सेनासहित बाँध लिया जाता है तो भीम यह जानकर बड़े प्रसन्न होते हैं, पर युधिष्ठिर भीम का यह भाव देखकर बड़े दुखी होते हैं। वे भीम को समझाते हुए कहते हैं —

कौरवों ने जो अत्याचार
किये हैं हम पर बारम्बार,
करेंगे उनका हमीं विचार
नहीं औरों पर इसका भार।

क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
हमारे फिर भी भाई हैं।[१]

इसी प्रकार जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपमान किये जाने पर भी वे उसे क्षमा कर देते हैं।[२]

युधिष्ठिर की धर्मपरायणता शरणागत वत्सलता के रूप में भी देखी जा सकती है। शरणागत सदैव उनकी रक्षा का पात्र

शरणागत वत्सल है और इस सम्बन्ध में महाभारत में युधिष्ठिर इन्द्र से कहते हैं कि जो भीत है, भक्त है, आर्तभाव से शरण में आया है, अपनी रक्षा में असमर्थ-दुर्बल है और प्राण बचाना चाहता है, ऐसे पुरुष को प्राण जाने पर भी नहीं छोड़ सकता, यह मेरा सदा का व्रत है।[३] आलोच्य काव्यों में भी उनका शरणागतरक्षक रूप सामने आया है। जब इन्द्र का सारथी मातलि युधिष्ठिर को सदेह ही स्वर्ग ले जाने के लिए रथ लेकर आता है तो वे अपने साथ एक शरणागत कुत्ते को भी ले जाने को तत्पर होते हैं। सारथी द्वारा इसका निषेध किये जाने पर वे स्वयं भी स्वर्ग जाने के संबंध में अनिच्छा व्यक्त करते हैं।[४]

---

१. जयभारत, पृ० २०६
२. वही, पृ० २२६
३. म०, महा० प०, ३, १२
४.
सुम जाओ मेरा भाग्य नहीं,
जो मैं सुरेन्द्र के दर्शन पाऊँ,
शरणागत अनुजाधिक सहचर,
यह श्वान छोड़ क्यों कर जाऊँ?
—जयभारत, पृ० ४४७

सत्य और धर्म की रक्षा–हेतु वे आजीवन प्रयत्नशील रहते हैं। अपनी धर्मपरायणता और सत्यप्रियता के कारण उन्हें और उनके भाइयो को अनेक कष्ट भी सहने पड़ते हैं।

युधिष्ठिर की सहनशीलता और आज्ञा-पालन मे तत्परता वारणा-वत-गमन, द्यूतक्रीडा आदि प्रसगो मे देखी जा सकती है। वारणावत प्रसग मे दुष्ट दुर्योधन द्वारा परिचालित धृतराष्ट्र की कुत्सित भावना को जानकर भी वे गुरुजनों की आज्ञा के पालन के उद्देश्य से वारणावत जाने को तैयार हो जाते हैं।[१] एक बार द्यूत में कौरवों द्वारा हराये जाने के उपरान्त जब धृतराष्ट्र उन्हे फिर द्यूतक्रीडा के लिए आमन्त्रित करते हैं तो भाइयो द्वारा मना किये जाने पर भी वे 'मोहि निदेश मान्य सब काला' कहकर फिर से द्यूतक्रीडा के लिए उद्यत हो जाते हैं।[२] उनकी सहनशीलता की पराकाष्ठा तो उस समय देखी जा सकती है जब कि दुर्योधन की सभा मे द्रौपदी के चीरहरण का प्रयास होता है और वे प्रतिज्ञा के सूत्र मे बँधे मूक होकर देखते रहते हैं।[३] युधिष्ठिर को अपने शान्त स्वभाव और धर्मप्रियता के कारण भीम, द्रौपदी इत्यादि से बडे व्यग्यात्मक वचन भी सहने पडते हैं।[४] संस्कृत के वेणीसहार नाटक मे भी भीम को युधिष्ठिर के शान्तस्वभाव पर व्यग्य करते हुए देखा जा सकता है।[५]

युधिष्ठिर शान्ति और क्षमा के पक्षपाती हैं। महाभारत मे युधिष्ठिर द्रौपदी के समक्ष बडे विस्तार से क्रोध की निन्दा और क्षमाभाव की प्रशसा करते हैं।[६] अपने विरोधियो और अपराधियों के प्रति भी वे सदैव क्षमाशील रहे हैं। यद्यपि कौरव उनके साथ निरन्तर क्रूरता और दुष्टता का व्यवहार करते हैं फिर भी युधिष्ठिर उनके सम्बन्ध मे सदैव अपने भ्रातृप्रेम का परिचय देते है। जब दुर्योधन पाडवो को परेशान करने की इच्छा से सेनासहित वन मे

---

१. जो आज्ञा को छोड युधिष्ठिर क्या कहते।
सुजन शीलवश दहन दु.ख भी हैं सहते।
—जयभारत, पृ० ७०

२. कृष्णायन, पृ० २४३

३ वही, पृ० २३४

४. वही, पृ० २४७, पृ० २०९

५ वेणीसहार, १, ११

६. म० भा०, व० प०, २९ अ०

पहुँचता है और गंधर्वराज चित्ररथ द्वारा सेनासहित बाँध लिया जाता है तो भीम यह जानकर बड़े प्रसन्न होते हैं, पर युधिष्ठिर भीम का यह भाव देखकर बड़े दुखी होते हैं। वे भीम को समझाते हुए कहते हैं :—

> कौरवों ने जो अत्याचार
> किये हैं हम पर बारम्बार,
> करेंगे उनका हमीं विचार
> नहीं औरों पर इसका भार।
>
> क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
> हमारे फिर भी भाई हैं।[१]

इसी प्रकार जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपमान किये जाने पर भी वे उसे क्षमा कर देते हैं।[२]

शरणागत वत्सल

युधिष्ठिर की धर्मपरायणता शरणागत-वत्सलता के रूप में भी देखी जा सकती है। शरणागत सदैव उनकी रक्षा का पात्र है और इस सम्बन्ध मे महाभारत मे युधिष्ठिर इन्द्र से कहते हैं कि जो भीत है, भक्त है, आर्तभाव से शरण में आया है, अपनी रक्षा मे असमर्थ-दुर्बल है और प्राण बचाना चाहता है, ऐसे पुरुष को प्राण जाने पर भी नहीं छोड़ सकता, यह मेरा सदा का व्रत है।[३] आलोच्य काव्यों में भी उनका शरणागतरक्षक रूप सामने आया है। जब इन्द्र का सारथी मातलि युधिष्ठिर को सदेह ही स्वर्ग ले जाने के लिए रथ लेकर आता है तो वे अपने साथ एक शरणागत कुत्ते को भी ले जाने को तत्पर होते हैं। सारथी द्वारा इसका निषेध किये जाने पर वे स्वयं भी स्वर्ग जाने के सबंध में अनिच्छा व्यक्त करते हैं।[४]

---

१. जयभारत, पृ० २०६

२. वही, पृ० २२६

३. म०, महा० प०, ३, १२

४.
> तुम जाओ मेरा भाग्य नहीं,
> जो मैं सुदेव के दर्शन पाऊँ,
> शरणागत अनुजाधिक सहचर,
> यह श्वान छोड़ क्यों कर जाऊँ ?
>
> —जयभारत, पृ० ४०४

युधिष्ठिर का राज्य, ऐश्वर्य इत्यादि के प्रति बडा अनासक्त भाव दिखाई देता है। वे अशान्ति और अहिंसा से राज्य प्राप्त करने के पक्ष मे नही हैं। महाभारत के युद्ध मे विजयी होने पर पाडवों को निर्विघ्न राज्य की प्राप्ति होती है। पर बन्धुओ की बलि देकर अवाप्त किए राज्यैश्वर्य को प्राप्त कर वे प्रसन्न नही होते, उन्हे वह पापमय और नरकमय जान पडता है।[1] वे सारे भोग विलास को त्याग कर वन मे जाकर रहने की इच्छा करते है।[2] महाभारत के शान्तिपर्व मे भी युधिष्ठिर की यह विरक्तिभावना प्रगट हुई है।

युधिष्ठिर के पारम्परिक उच्चादर्शमय चरित्र के प्रति कुछ आधुनिक कवियों का बडा निम्न दृष्टिकोण भी दिखायी पडता है जिसके फलस्वरूप 'अगराज', 'सेनापति कर्ण' आदि काव्यों में युधिष्ठिर तथा उनके पक्ष के पात्रो का चरित्र बडे हेय तथा गर्हित रूप मे चित्रित किया गया है। इन काव्यों में युधिष्ठिर को राज्यलोलुप, अधर्मपरायण और कामुक व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। उनकी राज्यलोलुपता को देख कर ही धृतराष्ट्र उन्हें नृपता प्रदान करते हैं।[3] उनमें कामुकता इतनी अधिक है कि अर्जुन द्वारा विजित करके लायी हुई द्रौपदी के तनलावण्य को देखकर उस पर मुग्ध होते हैं तथा उसे प्राप्त करना चाहते है।[4] अर्जुन भी उनका कामोन्माद देखकर उन्हें तिरस्कृत करते हैं।[5] द्रौपदी के प्रति उनकी आसक्ति इतनी अधिक बढ जाती है कि वे अर्जुन के प्रति ईर्ष्यालु होकर उस पर कल्पित दोषारोपण करके उसे एक वर्ष के लिए राजप्रवासन का दण्ड देते हैं।[6] इसके साथ ही उन्हे इतना अधिक द्यूतासक्त बताया गया है कि उनका घर ही द्यूतालय बना हुआ है। द्यूत के व्यसन के कारण ही वे स्वय कौरवो की सभा मे जाकर उनके सामने द्यूतक्रीडा का

---

१ कृष्णायन, पृ० ४५१

२. सौंहि अनुज धन राज्य सभारी,
होहु यहु बसि बिपिन सुखारी।
जहं फल मूल सुलभ आहारा,
निर्झर निर्झर जहं जलधारा।
—कृष्णायन, पृ० ४५४

३. अगराज, ६, ४

४. वही, पृ० ६, ३५-३६

५. वही, ६, ४०

६ वही, पृ० ६, ५४

प्रस्ताव रखते हैं।[१] आलोच्य काव्यों की चरित्र-विधानगत मौलिकता लाने की प्रवृत्ति कुछ स्वस्थ और प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती है। हाँ, प्रशंसनीय है वह प्रयास जहाँ युधिष्ठिर को मानवतावादी विचारों से आपूर्ण दिखाया गया है। वे 'सर्वे भवन्तु सुखिन:स र्वे सन्तु निरामयाः' की मंगलमयी सर्वसुखदायिनी विचारधारा लिये हैं—

सब सुख भोगें, सब रोग से रहित हों।
सब शुभ पावें, न हो दुखी कहीं कोई भी।।[२]

आज युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त मानवता के लिए युधिष्ठिर के ये उद्‌गार बड़े प्रेरक और युगानुरूप हैं :—

हे देव, जन के रक्त से रंजित न जग के हाथ हों,
मधु-मूर्त्ति बालक और वधुएँ व्यर्थ हो न अनाथ हों।
पाते यहाँ यों तुच्छ तृण भी ठौर रहने के लिए,
तो भी रहे अक्षत हमारा स्वत्व कहने के लिए।
करता न मेरा धर्म मुझको बाध्य लड़ने के लिए,
तो क्या समन्वय-योग्य हम सब हैं झगड़ने के लिए ?
ममता कहाँ जावे हमारी हम भले ही खिन्न हों।[३]

कर्ण

कर्ण महाभारत का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व-सम्पन्न पात्र है। आधुनिक काल के पूर्व किसी भी संस्कृत अथवा हिन्दी कवि ने कर्ण को काव्यनायक के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास नहीं किया; पर आलोच्य महाकाव्यों के रचयिताओं को कर्ण में आज के वर्गभेद और वर्णभेद से प्रपीड़ित समाज के प्रतिनिधि का रूप दिखायी दिया और उन्होंने उसके जीवन-चरित्र को रश्मिरथी अंगराज, सेनापति कर्ण जैसे काव्यों में ला उतारा। इन सभी काव्यों में कर्ण को नायकत्व प्रदान कर उसके अपूर्व शौर्य, दानशीलता, मैत्री, गुरुभक्ति आदि को अनुकरणीय आदर्शों के रूप में चित्रित किया गया है। इन कवियों ने कर्ण के चरित्र का जो रूप अपने काव्यों में उपस्थित किया है वह अभूतपूर्व है।

---

१. अंगराज, पृ. ७८

२. जयभारत, पृ० ४१०

३. जयभारत, पृ० ३१३

स्वाभिमानी युद्धवीर

कर्ण के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है उसका अद्भुत पराक्रम और अपूर्व रणकौशल, जिसकी प्रशंसा कृष्ण आदि उसके प्रतिपक्षी भी मुक्तकंठ से करते हैं।[1] सूतपुत्र होते हुए भी उसने अपने पौरुष से यथेष्ट यश अर्जित किया है और उसे इसका गर्व भी है।[2] महाभारत में भी शल्य के समय कर्ण का यही वीरोचित स्वाभिमान प्रगट हुआ है।[3] दिग्विजय के हेतु निकला हुआ कर्ण अपने शौर्य का अच्छा परिचय देता है। वह पांचाल, कश्मीर, शैलप्रस्थ, अंगदेश, मिथिला, मगध, कलिंग, उत्कल, कौशल आदि अनेक प्रदेशों को बड़ी वीरता से स्वाधीन करता है।[4] कौरव-पांडवों के भीषण युद्ध में भी उसका पराक्रम द्रष्टव्य है। सम्पूर्ण पांडव सेना उसकी प्रचण्डता से संत्रस्त रहती है।[5] महाभारत में स्वयं युधिष्ठिर स्वीकार करते हैं कि उससे भयभीत

---

१. सुरेन्द्र सा है यह चण्ड विक्रमी, प्रचण्ड संहारक देवसिंह सा।
वसुन्धरा का प्रतिबुद्ध आयुधी, रण-प्रमादी यह राम शिष्य है॥
—अङ्गराज, २१/६४

महाभारत में भी कृष्ण उसके पराक्रम को देखकर कहते हैं —

"एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रम।"
"किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधान्वित।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमाना शराचिषा॥"
—म०, भा०, द्रो० प०, १७३, ४८-४९

२. अज्ञातशीलकुलता का विघ्न न माना।
भुजबल को मैंने सदा भाग्य कर जाना॥
बाधाओं के ऊपर चढ़ घूम मचा कर।
पाया सब कुछ मैंने पौरुष पाकर॥
—रश्मिरथी, पृ०, ८५

३. नहि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथात्मनः॥
—म०, भा०, क० प०, ४३.६

४. अङ्गराज, ७, १-५९

५

होकर तेरह वर्षों तक न तो वे रात को अच्छी तरह सो सके, और न दिन में ।[1]

दानवीर

कर्ण युद्धवीर ही नहीं, अपूर्व दानवीर भी है । दानवीर के रूप में तो कर्ण इतना सुविख्यात है कि कर्ण शब्द एक प्रकार से दानी का ही पर्यायवाची बन गया है । महाभारत में कर्ण की इस दानशीलता से प्रभावित कृष्ण उससे कहते हैं कि 'पृथिव्यां त्वादृशो दाता न भूतो न भविष्यति' अर्थात् पृथ्वी पर तेरे समान दाता न तो हुआ है, न कभी होगा । सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त कर्ण महादान का व्रत लेता है और अपने पास आने वाले याचक को यथेच्छ दान देता है ।[2] विप्रवेश मे उसकी परीक्षा लेने के लिए आये कृष्ण को वह निस्संकोच अपने पुत्र का मांस प्रदान करता है [3] और छद्मवेशी इन्द्र को अपने जीवनस्वरूप अलौकिक कवच-कुण्डल ही समर्पित कर देता है । यद्यपि उसके पिता सूर्य इन्द्र के छल के विषय में उसे पहले ही सचेत कर देते हैं, पर यशपूर्वक जीने का इच्छुक कर्ण तन देकर भी कीर्तिदेय सत्कर्म करने का अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त करता है :—

पर हित करना आत्मत्याग है आर्यजनों की रीति सनातन ।
इस नश्वर जग में मरकर भी रहते अमर इसी विध सज्जन ।।
वस्तुमात्र क्या यदि तन का भी साधु अकिंचन करे अयाचन ।
देकर उसे सहर्ष करेंगे हम कीर्तिद सत्कर्म-फलार्जन ।।[4]

महाभारत में भी कर्ण इस अवसर पर इस प्रकार के उद्‌गार अपने पिता के समक्ष व्यक्त करता है ।[5] अपने याचकों को संतुष्ट करता हुआ वह आजीवन अपने महादान व्रत का अखण्डता से पालन करता है ।

---

१. म०, क० प०, ७६, ५४

२. अङ्गराज, ७, ७०

३. अङ्गराज, ८, २५-२६

४. वही ६, १६

५. महिधस्य यशस्यं हि न युक्तं प्राणरक्षणम् ।
युक्तं हि यशसा युक्तं मरणं लोकसम्मतम् ।।
—म०, व० प०, ३००, २८

आदर्श मित्र

कर्ण की युद्धवीरता और दानवीरता के समान ही उसकी मित्रता भी अविस्मरणीय है। दुर्योधन द्वारा अंगदेश का अधिपति बनाये जाने पर कर्ण उसके साथ मित्रता के सूत्र में आबद्ध होता है और दुर्योधन से आजन्म मित्रता के निर्वाह की प्रतिज्ञा करता है।[1] अपने मित्र-धर्म की रक्षा के लिए वह सदैव तत्पर रहता है। दिग्विजय करने के उपरान्त समस्त विजित प्रदेशों को वह दुर्योधन को दे देता है। दुर्योधन द्वारा कलिंग की राजकुमारी के अपहरण के अवसर पर जब कलिंगराज की सारी सेना और स्वयंवर में आगत राजा दुर्योधन का पीछा करते हैं तो कर्ण बीच में आकर वीरता से राजाओं को रोकता है तथा दुर्योधन के मार्ग को निर्द्वन्द्व बनाता है। इसी प्रकार कृष्ण जब उसे उसके जन्म का रहस्य बताकर और राज्य का प्रलोभन देकर पाडवों के पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं तब भी वह मित्र के प्रति विश्वासघात न करने का निश्चय व्यक्त करता है। मित्र के लिए वह प्राणार्पण तक करने को प्रस्तुत है।[2] महाभारत में भी कर्ण जो दृढमैत्री का भाव व्यक्त करता है, वह भी बड़ा उच्च है:—

> कल्याणवृत्त सतत हि राजा,
> वैचित्र्यवीर्यस्य सुतो ममासीत्।
> तस्यार्थ सिद्ध्यर्थमहं त्यजामि,
> प्रियान् भोगान् दुस्त्यजे जीवितं च।[3]

धर्मनिष्ठ एवं दृढप्रतिज्ञ

कर्ण की धर्मप्रियता भी अद्वितीय है। वह आजीवन धर्म के पालन में संलग्न रहता है। महाभारत में मृत्यु के समय वह कहता भी है 'वयं च धर्मे प्रयताम नित्यं चर्तुं ० यथा शक्ति यथाश्रुत च'[4] अर्थात् मैंने तो यथाशक्ति और यथाज्ञान सर्वदा धर्म के अनुकूल आचरण करने का

---

१. अङ्गराज, २, ५२

२. ' जिस नर की बाँह गही मैंने,
जिस तरु की छाँह गही मैंने,
उस पर न धार चलने दूँगा,
कैसे कुठार चलने दूँगा ?
जीते जी उसे बचाऊँगा,
या आप स्वयं कट जाऊँगा ?
—रश्मिरथी, पृ० ४५

३. म० क० प०, ३७, २६

४. म०, क० प०, ६०, ८६

प्रयत्न किया है। आधुनिक काव्यों मे कर्ण के चरित्र का यह अंश भी प्रकाश मे आया है। महाभारत के जिस महाभीषण युद्ध मे कृष्ण तक धर्म से विचलित हो जाते हैं वहाँ कर्ण धर्म पर स्थिर रहता है। युद्धक्षेत्र मे भी जब कृष्ण और अर्जुन उसके बाणों से आहत होकर मूर्च्छित हो जाते हैं तो वह युद्ध-धर्म का विचार कर प्रहार करना स्थगित कर देता है।[1] माता कुन्ती से किये गये प्रण की रक्षा के लिए वह भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर आदि पाडवो को युद्धक्षेत्र में बार-बार जीवनदान देता है।[2]

गुरुभक्ति

कर्ण के उज्जवल चरित्र मे जो दोष कलकवत् दिखलायी पडता है वह है महर्षि परशुराम के आश्रम मे जाकर छलपूर्वक अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा ग्रहण करना। पर यह उसने अपनी महत्त्वाकाक्षाओं से प्रेरित होकर किया था। गुरु के प्रति उसकी बड़ी निष्ठामयी श्रद्धा है। इसका परिचय उस प्रसग मे मिलता है जबकि वह अपनी जंघा को शिरोधान बनाकर सुख-निद्रा में निमग्न गुरु की निद्रा के भग होने के भय से वज्रदष्ट्र विषकीट के काटने से उत्पन्न मर्मान्तक पीडा को सहता है।[3]

आलोच्य काव्यों का नायक कर्ण जहाँ अपने में उपर्युक्त परम्परागत गुणों को समाहित किये है वहाँ वह आज के समाज के निम्न वर्ग का भी प्रतिनिधि है। वह सचेष्ट है वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए, स्वप्न देख रहा है सुखी मानवता के।[4]

एकलव्य

एकलव्य महाभारत का एक गौण पात्र है जिसकी कथा प्रासगिक रूप मे महाभारत मे उल्लिखित है। वहाँ यह कथा इतने सक्षेप मे वर्णित है कि एकलव्य के चरित्र का कोई विकास वहाँ नही हो पाया है। हाँ, एकलव्य के चरित्र

---

१ अङ्गराज, २१, २००

२. वही, १५, ५१

३. अङ्गराज, ४, ८६; म०, शा० प०, ३, ४-६

४. सेनापति कर्ण, पृ० १२६

की वह गरिमा वहाँ अवश्य अंकित है जिससे आधुनिक कवि को एकलव्य में महाकाव्य के नायक की क्षमता दिखलायी दी।[1]

महाभारत मे एकलव्य के चरित्र मे दृढ निश्चय, शील, साधना, गुरु-भक्ति आदि का समुच्चय है। महाभारत मे वर्णित एकलव्य के इन चारित्रिक गुणो को वर्माजी ने 'एकलव्य' महाकाव्य के नायक में प्रतिष्ठित किया है। पर जहाँ महाभारत मे एकलव्य की चारित्रिक विशेषताओं की प्रतीति उसके कार्यों द्वारा बड़े सांकेतिक और संक्षिप्त रूप से होती है वहाँ 'एकलव्य' मे एक सुस्पष्ट मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मे उसके चरित्र का विकास दिखलाया है, उसके चिन्तन को वाणी दी है। आधुनिक काल में एकलव्य दलित मानवता का प्रतिनिधि है जो शोषक वर्ग को खुली चुनौती देता है।[2] वर्ण-भेद और वर्ग-भेद के प्रति उसका तीव्र आक्रोश उमड़ता है। वह महाभारत के एकलव्य के समान श्रद्धा और भक्ति की मूक प्रतिमा नहीं है, वह तो वर्ण भेद की सीमाओं का क्रान्ति के झटके से तोड़ने की कल्पना भी करता है।[3] इस प्रकार जहाँ एक ओर एकलव्य मे युगनायक का अपेक्षित रूप दिखलाई पड़ता है वहाँ दूसरी ओर उसके चरित्र का पारम्परिक पक्ष भी द्रष्टव्य है।

दृढनिश्चयी साधक

एकलव्य का आकर्षक व्यक्तित्व दृढनिश्चय और साधना के सुदृढ स्तम्भों पर आधारित है। प्रतिकूल और निराशामयी परिस्थितियाँ भी उसे अपने निश्चय से विचलित नहीं कर पाती हैं। द्रोण के अद्भुत धनुर्वेदज्ञान से प्रभावित होकर वह धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने की

---

१ 'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्चकुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह अनार्य नहीं, 'आर्य' है, क्योंकि उसमें 'शील' का प्राधान्य है। यही उसमे महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह 'सुर' अथवा 'सद्वंश' में उत्पन्न क्षत्रिय नहीं है।"
—एकलव्य, आमुख पृ० ५–६

२
सावधान, भूमिपति! हम मे भी शक्ति है,
भूमिपुत्र सर्वदा हैं भूमिबल जानते।
पशु–बल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्म–बल की हमारे पास सीमा है नहीं।
—एकलव्य, पृ० १७७

३ एकलव्य, पृ० १९८

इच्छा से उनके पास जाता है, पर राजगुरु के महत्त्वपूर्ण पद की मर्यादा में बंधे द्रोण उसे निषादपुत्र जानकर शिष्य बनाना अस्वीकार कर देते हैं।[1] एकलव्य इससे हतोत्साह नहीं होता है, वह 'विकृत होगा उठा उर में जो राग है' इस विश्वास के साथ वन मे जाकर गुरु की मृण्मयी मूर्ति के सामने निरन्तर धनुर्वेद का अभ्यास करता है और साधना-मार्ग का वह पथिक स्वयं के खोजे मार्ग पर चलकर सिद्धि अर्जित करता है।[2] धनुर्संचालन मे वह इतनी अधिक दक्षता प्राप्त कर लेता है जितनी द्रोण के संरक्षण में रहकर अर्जुन आदि उनके शिष्य भी प्राप्त नहीं कर पाये थे। उसके शर-संचालन को देखकर द्रोण के प्रिय शिष्य अर्जुन का भी अभिमान भग्न हो जाता है।[3] महाभारत में भी एकलव्य को आचार्य में उत्तम श्रद्धा रखकर उत्तम और भारी अभ्यास के बल से शर-सचालन मे निपुणता प्राप्त करते हुए बताया गया है।[4]

गुरुभक्त

एकलव्य की गुरुभक्ति भी अपूर्व है। 'एकलव्य' काव्य में उसके हृदय में गुरु के प्रति श्रद्धा के अंकुरण और विवर्धन का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण है। गुरु के प्रति एकलव्य की निष्ठा और भक्ति का चित्रण जिस ढंग से इस काव्य मे हुआ है वह उसके परम्परागत चरित्र को ऊँचा उठाने मे सहायक है। 'एकलव्य' में उसे बार-बार गुरु के प्रति श्रद्धावनत होते हुए दिखाया है।[5] द्रोण द्वारा उसे शिष्य रूप में स्वीकार न किये जाने पर भी वह उनके प्रति तनिक-मात्र भी अश्रद्धालु नही है, क्योंकि भीष्म की राजनीति से अनुशासित द्रोण की विवशता वह जानता है।[6] इस स्थिति में गुरु की पाषाणी मूर्ति मे ही आचार्य की परमोच्च भावना रखकर शरसंचालन का अभ्यास करता है। 'गुरुदेवो' की भक्तिमयी भावना ही उसकी साधना की शक्ति बनती है। जितनी कठोर उस की साधना रही है उतनी ही कठोर उसकी गुरु-दक्षिणा भी। उसकी गुरुभक्ति का चरमोत्कर्ष तो तब देखा जा सकता है जब पार्थ को अद्वितीय धनुर्धर बनाने

---

१. एकलव्य, पृ० १२६
२. वही, साधना सर्ग
३. एकलव्य, पृ० २५०
४. म० आ० प०, १३१, ३५
५. एकलव्य, पृ० १६४
६. एकलव्य पृ० १६८

के गुरु के प्रण की रक्षा के लिए वह अपना दक्षिणांगुष्ठ गुरुदक्षिणा के रूप मे समर्पित करता है।[१] वर्षों की तप.साधना का एक साथ ही अपने हाथों मूलोच्छेदन करने का उसे रंचमात्र भी दु:ख नहीं है, क्योकि गुरु के लिए तो उसके द्वारा कुछ भी अदेय नही है। जैसा कि महाभारत मे वह द्रोण से कहता भी है—न हि किंचिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम्।[२]

नल — नल महाभारत के नलोपाख्यान के प्रमुख पात्र हैं। राम और कृष्ण के समान ही नल के चरित्र ने भी आधुनिक कवियों को पर्याप्त प्रभावित किया है, 'नलनरेश' और दमयन्ती काव्य इसके प्रमाण हैं। संस्कृत मे नल को लेकर नैषधीयचरित जैसे काव्य भी लिखे जा चुके हैं, पर आधुनिक काव्यों के चरित्र-विधान पर महाभारत का प्रभाव ही विशेष रूप से देखा जा सकता है। 'नल-नरेश' और 'दमयन्ती' इन दोनों ही काव्यों मे नल का उदात्त रूप चित्रित है। वे रूपवान, पराक्रमी, विद्वान्, नीतिज्ञ, प्रजावत्सल नृप हैं। प्रजा के हित-कर्तव्य को ही राजा का एकमात्र धर्म स्वीकारते हुए अपना सारा समय राज्यकार्यों मे ही नियोजित करते हैं। हयविद्या मे वे निष्णात हैं, द्यूतक्रीडा मे उनकी विशेष रुचि है।[३] नल के इन सभी गुणों का उल्लेख आधुनिक काव्यों में महाभारत[४] के अनुसार ही किया गया है।

---

१. वही, पृ० २६४

२. म०, आ० प०, १३१, ५६

३. (अ) नल महान विद्वान, अलौकिक रूपवान थे—
बुद्धिमान, गुणवान और अति शक्तिवान थे।
हय-वाहन-आचार्य, धनुर्धारी थे अनुपम,
कीर्तिवान थे, और प्रजा-पालक थे उत्तम।
वे महान गंभीर थे, दानवीर थे, रणवीर थे।
धर्म वीर थे और वे दयावीर थे, धीर थे।
—नल-नरेश, १, २८

(आ) प्रजाहित में ही आठों याम—
बीतते हैं, करते शुभ काम,
• • •
जहाँ, गुण नृप मे भरे अनेक।
वहाँ अवगुण भी उनमें एक—
छिपा है, कि वे खेलते द्यूत,
हुए पर, इससे थे न अपूत।
—दमयन्ती, पृ० २४

४. म०, व० प०, ५३, १-२-३

दृढ़प्रतिज्ञ

नल दृढ़प्रतिज्ञ, सत्यवादी और सहिष्णु हैं। वे प्रत्येक परिस्थिति में अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। देवों के दूतत्व का निर्वाह भी वे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये करते हैं। यद्यपि वे स्वयं दमयन्ती के प्रति गहन अनुराग-भाव रखते हैं तथापि अपने प्रण और दूतोचित कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए वे दमयन्ती के सम्मुख देवों के गुणों और उनकी शक्ति प्रशंसा करते हुए उसे देवों के प्रति आकृष्ट करना चाहते हैं तथा उसे बार-बार आग्रहपूर्वक यही कहते हैं कि वह स्वयंवर में इन्द्र, यम, अग्नि आदि देवों में से ही किसी का वरण करे।[1] महाभारत में भी उनकी यह चारित्रिक दृढ़ता और दृढ़प्रतिज्ञता द्रष्टव्य है। वहाँ भी जब दूत बने हुए नल दमयन्ती से लोकपालों का वरण करने के लिए कहते हैं और इसके उत्तर में दमयन्ती नल को ही वर रूप में चुनने के लिए कहती है तो वे उससे स्पष्ट कह देते हैं कि इस समय वही करो जो मेरे स्वरूप के अनुरूप हो। मैं देवताओं के सामने प्रतिज्ञा करके विशेष रूप से परोपकार के लिए प्रयत्नशील होकर अब यहाँ स्वार्थ-साधन के लिए कैसे प्रवृत्त हो सकता हूँ ?[2] नल की सत्यप्रियता और दृढ़प्रतिज्ञता उस अवसर पर देखी जा सकती है जबकि वे अपना सारा साम्राज्य छोड़कर, सारे राजचिह्न अलग कर एक वस्त्र में वन को चल देते हैं तथा प्रजाजनों द्वारा बहुत प्रार्थना किये जाने पर भी वे किसी प्रकार निषध में रुकने को तैयार नहीं होते हैं।[3]

सच्चे प्रेमी

नल का अपनी प्रिया दमयन्ती के प्रति सच्चा और निश्छल प्रेम है। यह प्रेम गुणश्रवणजन्य पूर्वानुराग से प्रारम्भ होता है और दाम्पत्य प्रेम तक पहुँचकर और अधिक दृढ़ता को प्राप्त हो जाता है। श्री हर्ष के नैषधीयचरित के अनुरूप नल को उच्छृंखल और कामुक प्रेमी के रूप में चित्रित करने का प्रयास आलोच्य काव्यों में नहीं हुआ है। इन काव्यों में नल के प्रेम का आदर्श महाभारत के अनुकूल है। नल का दमयन्ती के प्रति प्रेम बड़ा संयमित और एकनिष्ठ है। महाभारत में देवों के प्रति नल के वचनों में उनके एतद्विषयक विचार स्पष्ट हैं —

---

१. नल-नरेश, ६, ५६-६०

२. म०, व० प०, ५६, १५-१६

३. दमयन्ती, पृ० १६३, २००

कथं नु जातः सकल्प स्त्रियमुत्सृजते पुमान् ।
परार्थमीदृश वस्तुम् तत् क्षमन्तु महेश्वराः ।।[१]

नल दमयन्ती की सुख-सुविधा के लिए विशेष चिंतित हैं । वनगमन के समय भी अपने साथ जाने को उद्यत दमयन्ती को वे निषध में रहकर राज्यसुख का भोग करने के लिए कहते हैं ।[२] वन मे भी कोमलागी दमयन्ती को कष्ट सहते देखकर वे बडे दु खी होते हैं और आवावेश मे आकर उसे वन मे एकाकी छोडकर चल देते है । प्रिया को त्यागने का पश्चात्ताप उन्हें निरन्तर दग्ध करता रहता है ।[३]

इस प्रकार नल का चरित्र मूलरूप मे महाभारत के प्रकाश में चित्रित है, पर 'नलनरेश' मे उनका विरक्ति और निरासक्ति का भाव भी देखा जा सकता है । बहुत समय तक प्रारब्ध से टक्करें लेने के उपरान्त जब वे निषध लौटते हैं तो राज्य के प्रति निस्पृहता व्यक्त करते हैं । धन-दौलत और ठाठ-बाट के प्रति उनकी कोई आसक्ति नहीं रहती है । वे जीवन की विनष्टकारिणी कामनाओं से मुक्ति पाने की इच्छा रखते हुए,[४] अपने पुत्र को राज्यप्रदान कर सन्यास ग्रहण करते हैं ।[५]

दमयन्ती 'नलनरेश' और 'दमयन्ती' काव्यो की नायिका है । दमयन्ती का चरित्र मूलरूप से महाभारत के नलोपाख्यान-पर्व में चित्रित हुआ है । दमयन्ती सतीत्व की सजीव प्रतिमा है । आलोच्य-काव्यो में दमयन्ती के प्रखर पातिव्रत्य को युगादर्श के रूप में चित्रित किया गया है । एक ओर तो वह अपनी परम्परागत चारित्रिक विशेषताओं को समाहित किये है, दूसरी ओर अपने स्वतन्त्र उद्‌बोधक विचारो से युगनारी का आदर्श भी प्रस्तुत कर रही है । आधुनिक कवियों ने दमयन्ती को वह वाणी प्रदान की है जो युग की प्रेरक है ।

दमयन्ती

दमयन्ती का गरिमामय चरित्र-सतीत्व और एकनिष्ठता का आदर्श है । उसके हृदय में प्रेमभाव का उदय नल के गुण-श्रवण के द्वारा होता है और

---

१. म०, व० प०, ५५, ८
२. दमयन्ती पृ० १६८
३. दमयन्ती, पृ० २५१-५३
४. नल-नरेश, १६, ४६-४७
५. वही, पृ० १६, ६४

यह एक प्रकार के पूर्वानुराग के रूप में अंकुरित और विकसित होता है । इस से नल के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर उस पर आसक्त हुई दमयन्ती नल का मानसिक वरण करती है ।[1] अपने इस प्रण का निर्वाह वह इतनी दृढ़ता से करती है कि दूत बनकर आये नल जब उसके सम्मुख इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवों की अलौकिक शक्ति का वर्णन कर उसे बार-बार प्रेरित करते हैं कि वह स्वयंवर में इन लोकपालों में से ही किसी का वरण करे, तो वह स्पष्ट रूप से अपनी अस्वीकृति दे देती है । स्वर्गसुख के मोह में पड़कर वह अपने सतीत्व से विचलित होने की इच्छुक नहीं है ।[2] महाभारत के नलोपाख्यान में भी दमयन्ती नल को ही पति रूप में वरण करने का निश्चय व्यक्त करती है। वहाँ वह बड़े संकुचित स्वभाव की लज्जाशीला नारी के रूप में चित्रित है, पर आलोच्य काव्यों की दमयन्ती नल के समक्ष अपने विचारों को बड़े दृढ़ और तर्कयुक्त स्वर में प्रस्तुत करती है । जब दूतवेष में आये हुए नल उससे कहते हैं कि मानसिक वरण कोई महत्व नहीं रखता है, अतः तुम नल को भूल कर दिग्पालों का वरण करो, तो वह कहती है —

> 'जिसको सर्वस्व सौंपना है, निज मन में जिसे रोपना है।
> क्या वे नित बदले जाते, नित नव हृदय में ठौर पाते ।
> देवालय की क्या मूर्ति कहीं, बदली जाती है नित-नित ही ।
> आर्यायों का यह कर्म नहीं, संकल्प छोड़ना धर्म नहीं ।
> वर चुनें जिसे वे एक बार, जीवन भर उसको करें प्यार ।।[3]

आधुनिक काव्यों में दमयन्ती के ये विचार उसके पारम्परिक चरित्र को तो स्पष्ट कर ही रहे हैं, साथ ही आज की तलाकशीला नारी के लिए भी एक

---

१. अब चाहे कुछ ही हो, मैं तो वरण कर चुकी हूं पति एक ।
कभी न तोड़ूंगी इस प्रण को, कभी न छोड़ूंगी यह टेक ।।
—नल-नरेश, ४, ६

२. सुर-महिमा पर मोहित होकर छोड़ूंगी मैं नहीं स्वधर्म ।
नारी का अक्षय रक्षक है केवल उसका सतीत्व—धर्म ।
नहीं मुझे इन्द्राणी बनना, नहीं स्वर्ग-सुख की भी चाह—
और नहीं करना है मुझको किसी देव से कभी विवाह ।
—नल-नरेश, ६, ७२

३ दमयन्ती, पृ० १०८

आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं। अपनी इसी विचारदृढ़ता के कारण स्वयंवर में एक से एक शक्ति सम्पन्न राजाओं और देवों की उपेक्षा करके वह निषधराज नल का ही वरण करती है। उसके दृढ पातिव्रत्य के सम्मुख देव भी पराजित होते हैं।[१]

एक सच्ची भारतीय नारी के समान वह प्रत्येक परिस्थिति मे पति का साथ देती है। जब नल द्यूत में हारने पर पूर्वकृत शर्त के अनुसार वन को प्रस्थान करते हैं तो वह भी उनका अनुगमन करती है। प्रतिकूल परिस्थिति आने पर स्वयं तो धैर्य धारण करती ही है, अपने पति को भी धैर्य बँधाती है।[२] उसका प्रेम इतना दृढ और निष्ठामय है कि किसी भी स्थिति में नल के प्रति कोई दुर्भाव उसके हृदय में जन्म नही लेता। नल जब उसे वन में एकाकी निस्सहाय स्थिति मे छोड़कर चले जाते हैं, तब भी वह उनके प्रति आक्रोश व्यक्त न करके, उनके कष्टो की आशका करके ही दुःखी होती है। उसे अपनी चिन्ता नहीं है, उसे चिन्ता है अपने पति की।[३] महाभारत मे भी वन में एकाकी अवस्था में दुःखी दमयन्ती को नल के लिए चिन्तित देखा जा सकता है।[४] नल के वियोग मे वह सारे अलकरण त्यागकर, काषायिक वस्त्र पहन कर योगिनी के समान निस्पृह जीवन व्यतीत करती है।[५] वह बड़े नियमपूर्वक रहती है। महाभारत मे भी दमयन्ती की पतिवियोग मे बड़ी कारुणिक स्थिति दिखायी देती है।[६]

पतिप्राणा दमयन्ती बड़ी विवेकशीला एव दूरदर्शी है। राजा नल को द्यूतक्रीडा मे निरन्तर हारता देख कर वह अपने विश्वस्त अनुचर के साथ अपने

---

१. नल-नरेश, ८, ५४-५५, म०; व० प०, ५७, २२-२३

२. नलनरेश, १०, ३७

३ मुझे न कुछ भी अपनी चिन्ता किन्तु आपकी है द्युतिमान,
क्योंकि आपकी सेवा वन में कौन करेगा कहो सुजान?
महामृदुल हो करके कैसे भोगोगे तुम कानन क्लेश?
कहाँ रहोगे, क्या खाओगे, क्या पीओगे हे प्राणेश?
—नलनरेश, १२, २९-३०

४. न शोचाम्यहमात्मानं न चान्यदपि किंचन।
कथं नु भवितास्येक इति त्वां नृप शोचिमि।
—म०, व० प०, ६३, ११

५. दमयन्ती, पृ० २४३

६ म०, व० प०, ६६, ३८-३९

बच्चों को अपने सम्बन्धियों के पास कुण्डिनपुर भेज देती है।[1] इसके साथ ही वियुक्त नल को ढूंढने का जो प्रयास करती है, वह भी उसकी बुद्धिमत्ता का द्योतक है। पर्णाद नामक विप्र को नल को ढूंढने की जो युक्ति वह बताती है तथा ऋतुपर्ण के पास अपने स्वयंवर का जो झूठा समाचार वह भेजती है, उसमें उसकी दूरदर्शिता स्पष्ट है। नलनरेश और दमयन्ती दोनों ही काव्यों में दमयन्ती का यह बुद्धिकौशल परम्परा की भूमिका पर ही प्रतिष्ठित है।

इस प्रकार आलोच्य काव्यों में दमयन्ती का चरित्र मूलरूप से संस्कृत के अनुकरण पर ही चित्रित हुआ है, पर कहीं आधुनिक युग की विचारधारा के प्रभावस्वरूप उसके चरित्र के कुछ नवीन अंश भी प्रकाश में आये हैं। आज के नारी जागरण के युग में दमयन्ती को राज्यशासन में रुचि लेते हुए दिखाया गया है। वह राजनीतिक कार्यों में नल का सहयोग देती है; जिसके फलस्वरूप कई महाविद्यालयों की स्थापना होती है, बुरी प्रथाओं का क्षय होता है तथा न्याय-नीति को प्रोत्साहन मिलता है। वह कन्याओं के लिए सुन्दर पाठशालाएँ खोलती है, कई उपवनों, कूपों तथा धर्मशालाओं का निर्माण करवाती है।[2] यहाँ दमयन्ती का समाज-सेवा का भाव स्पष्ट है।

आधुनिक काल में साकेत, वैदेही वनवास, रामचरित चिन्तामणि आदि काव्यों में दाशरथि राम का चरित्र-उन्मेष हुआ है।

राम

मैं निर्गुण ईश्वर के सगुण साकार रूप हैं[3], जो अपने भक्तों की रक्षा के लिए तथा इस पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापना के लिए अवतरित हुए हैं।[4] आलोच्य काव्यों के रचयिताओं ने इन्हें अलौकिक ईश्वर के रूप में चित्रित न करके एक सद्गुणान्वित महापुरुष के रूप में ही चित्रित किया है।

आलोच्य काव्यों में राम के जिस आदर्श चरित्र का अंकन हुआ है वह युगानुरूप नवीन परिपार्श्व में चित्रित होकर भी मूल रूप से रामायण, रघुवंश, उत्तररामचरित जैसे संस्कृत ग्रन्थों की छाया में ही आलेखित है। इन काव्यों में राम परम्परानुगत रूप से बड़े शान्त, गम्भीर, विनम्र और धैर्यवान हैं। वे एक

१. नलनरेश, १०, २०-२१
२. नलनरेश, ६, २८-३२
३. साकेत, पृ० २
४. वही, पृ० २१६

आज्ञाकारी पितृभक्त पुत्र, स्नेहशील भ्राता एवं शरणागतवत्सल नृपति हैं। एक आदर्श पुत्र के रूप में वे अपने पिता के सत्य की रक्षा के लिए सम्पूर्ण राज्यवैभव का त्यागकर, *वल्कल-वस्त्र धारण कर चौदह वर्ष के लिए वन को प्रस्थान करते* हैं।[1] पिता की आज्ञा के पालन को और उनकी सेवा को वे संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं।[2] पिता की आज्ञा के पालन हेतु तो वे प्राणोत्सर्जन तक कर सकते हैं।[3] साकेत में भी कैकेयी के वरदान की भीषणता से दुःखी दशरथ के समक्ष राम इसी भक्तिमय स्वर में कहते हैं :—

> करूँगा क्या न मैं आदेश रक्षा ?
> मुझे यह इष्ट है, चिन्तित न हो तुम,
> पड़ूँ मैं आग में भी जो कहो तुम,
> तुम्हीं हो तात। परमाराध्य मेरे।[4]

इसी प्रकार जब राम के निर्वासन का समाचार सुनकर रुष्ट हुए लक्ष्मण पिता को अपशब्द कहते हैं तो वे उन्हें भी शान्त करके पितृ भक्ति का महत्त्व बताते हैं।[5] वन जाते समय भी राम बड़े शान्त और संयमित रहते हैं। उस समय भी उनकी मुखाकृति वैसी ही दिखायी पड़ती है जैसी की राज्याभिषेक के समय थी, किसी भी प्रकार का दुःख और क्षोभ का चिह्न उनके मुख पर नहीं दिखायी देता है।[6] यही धैर्य और गम्भीरता राम में भरत के वनागमन के

---

१. साकेत, पृ० १०८

२. न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
   यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥
   —वा० रा०, अयो०, का०, १६, २२

३. पित्रर्थे जीवितं वास्ये पिबेयं विषमुल्बणम् ॥
   —वा० रा०, अयो० का०, ३, ५६

४. साकेत, पृ० ५७

५. वही पृ० ६३

६. *राम भाव अभिषेक-समय जैसा रहा।*
   वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा॥
   —साकेत, पृ० ११०

   तु० कीजिये
   दधतो मंगलक्षौमे वसानस्य च वल्कले।
   ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः॥
   —रघुवंश, १२, ८

समय दिखायी पड़ती है, जब भरत राम को अयोध्या लौटा ले जाने की इच्छा से वन में पहुँचते हैं तो लक्ष्मण भरत को किसी दुर्भावना से प्रेरित होकर आया जानकर उनसे लड़ने तक की भी योजना बना डालते हैं, पर राम उत्तेजित लक्ष्मण को शान्त करते हैं तथा अनुज से बड़े प्रेमपूर्वक मिलते हैं।

विवेच्य काव्यों में संस्कृत की परम्परा में ही राम को एक प्रजावत्सल, कर्तव्यनिष्ठ नरेश के रूप में भी चित्रित किया गया है। सीता के विषय में लोकापवाद की चर्चा सुनकर और सीता के पुनर्ग्रहण से प्रजा को असन्तुष्ट जानकर वे प्रजानुरंजन के उद्देश्य से अपनी प्राणप्रिया सीता तक को निर्वासित कर देते हैं। उनकी दृष्टि में लोकाराधन ही नृपति का प्रमुख धर्म है।[1] राम का यही दृष्टिकोण पूर्ववर्ती संस्कृत-काव्यों में भी देखा जा सकता है। भवभूतिकृत उत्तररामचरित में राम बार-बार लोकाराधन की महत्ता प्रकट करते हैं। लोकाराधन को वे सज्जनों का श्रेष्ठ कर्तव्य मानते हैं[2] और लोकाह्लादन के लिए वे स्नेह, दया, सौख्य, यहाँ तक कि सीता तक का त्याग करने को तैयार हैं।[3]

भवभूति के राम के समान ही वैदेही वनवास के राम भी बहुत भावुक प्रकृति के हैं। सीता-निर्वासन के उपरान्त जब वे शम्बूक-वध के लिए पंचवटी जाते हैं, तो वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर उनकी पूर्वस्मृति सजग हो उठती है और वे सीता की याद कर दुःखी हो विलाप करने लगते हैं।[4]

कवि हरिऔध ने वैदेही-वनवास में राम के परम्परागत चरित्र को और ऊँचा उठाने की चेष्टा की है। रामायण, उत्तररामचरित आदि संस्कृत ग्रन्थों में राम सीता को निर्वासित करने के पूर्व अपने निश्चय से अवगत नहीं कराते

---

१. नृपति मनुज है अत मनुजता अयन है।
सत्य न्याय का वह प्रसिद्ध आधार है।
है प्रधान कृति उसकी लोकाराधना,
उसे शान्तिमय शासन का अधिकार है।
—वैदेही वनवास, ९, ५८

२ सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम्।
—उ० रा०, १, ४१

३ स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥
—वही, १, १२

४. वैदेही-वनवास, १७, १२-५३

हैं। सम्भवतः उनमे वह साहस नही कि वे इस कठोर सत्य से सीता को पूर्व-परिचित करा सकते। इसके विपरीत वैदेही-वनवास मे राम निर्वासन के पूर्व ही सीता को अपना निश्चय बता देते हैं[1] और पतिप्राणा सीता भी उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं।

आलोच्य काव्यो मे कहीं-कही राम का चरित्र परम्परानुकूल होते हुए भी कुछ हेय प्रतीत होता है। रावण से छुड़ाई हुई सीता को राम का यह कहना कि मैंने रण इसलिए किया था कि कोई मुझे भीरु न समझे, मैं तुम्हें रख कर कलंकित नही होना चाहता हूँ। तुम्हें शत्रु ने अपने घर मे रखकर अंक से लगाया है, फिर मैं तुम्हे किस प्रकार रख सकता हूँ?[2] वाल्मीकिरामायण[3] के प्रभाव-स्वरूप इन वाक्यो से चाहे राम की परम्परागत धर्मभीरुता का प्रदर्शन अवश्य होता हो, पर आज के पाठक की दृष्टि मे किसी व्यक्ति का निरीह निर-पराध पत्नी को इस प्रकार से अपमानित करना किसी प्रकार से औचित्यपूर्ण नही है। इस प्रकार ब्राह्मण के शाप के भय से राम द्वारा शम्बूक का वध किया जाना भी राम के परम्परागत आचरण को अवश्य प्रकट कर रहा है, पर युग-सम्मत कदापि नही है।

सीता एक पतिव्रता, त्यागमयी, कोमलहृदया नारी के रूप मे संस्कृत कवियो की स्तुति की पात्र रही हैं। रामायण, उत्तररामचरित, रघुवंश आदि ग्रन्थो मे सीता के सतीत्व का भूरि-भूरि यशोगान हुआ है। पति ही सीता के जीवन-सर्वस्व हैं, प्राण देकर भी पति की आज्ञा के पालन का उत्साह उनमे है।[4] अनेक अलौकिक सुखभोग करने की अपेक्षा वे पति की पादच्छाया मे रहने को ही विशेष महत्त्व देती हैं।[5] दुःखात्मक या सुखात्मक प्रत्येक स्थिति मे वे पति

सीता

१. वैदेही-वनवास, २, १७-२१

२. रामचरित चिन्तामणि, २२ ६३-६४

३. वा० रा०, यु० का०, ११५, १५-२०

४. पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥
—वा० रा०, उ० का० ४८, १७-१८

५. प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते॥
—वा० रा०, अयो० का०, २८, ८

की अनुगामिनी हैं। साकेत, वैदेही-वनवास आदि आधुनिक काव्यों मे भी सीता का चरित्र इन्ही बिन्दुओं पर अंकित है। आलोच्य काव्यो की सीता त्यागमयी, पतिप्राणा स्त्री हैं। वे राम की सच्ची सहधर्मचारिणी हैं। राम जब चौदह वर्ष के वनवास के लिए प्रयाण करने को होते हैं तो वे भी उनके साथ जाने को उद्यत दिखायी देती हैं। राम अनेक प्रकार से उन्हें समझाते हैं और उनके समक्ष वन के कष्टों का वर्णन कर उन्हें रोकना चाहते हैं, पर वे किसी प्रकार भी अपने निश्चय से विचलित नहीं होती। पति के साथ वे किसी भी प्रकार की विषम परिस्थिति मे रहने को तैयार हैं। 'साकेत' की सीता राम से बड़े स्पष्ट शब्दो मे कह देती है :—

सतियों को पति-संग कहीं,
वन क्या, अनल अगम्य नहीं।[1]

इसी प्रकार का तर्क रामचरित चिंतामणि की सीता भी पति केसम्मुख रखती हैं :—

पति के बिना कोई सुखद है हो नहीं संसार में,
पति पोत है स्त्री के लिए संसार-पारावार मे।[2]

वाल्मीकिरामायण मे भी वन-गमन के अवसर पर सीता राम के वियोग में अपने जीवित रहने की असम्भावना व्यक्त करती है।[3] जिस प्रकार सुख और सम्पन्नता की स्थिति में उन्होंने पति का साथ दिया था, उसी प्रकार संकट की स्थिति मे भी वे पति की सहयोगिनी बनना चाहती है। पति के सुख मे उनका सुख है और पति के दुःख मे दुःख। यही कारण है कि पति के साथ वे वन में भी राजसुख का अनुभव करती हैं।[4]

सीता का यही पातिव्रत्य, त्याग और धैर्य उस समय देखा जा सकता है, जब निर्वासन के अवसर पर राम लोकापवाद का सारा वृत्तांत सुनाकर उन्हें स्थानान्तरित करने का विचार व्यक्त करते हैं। प्रारम्भ मे तो सीता राम के

---

१. साकेत, सर्ग ४, पृ० १०३
२. रामचरित चिन्तामणि, ६, ४७
३. वा० रा०, अयो० का०, २८, २३
४.
सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं,
धन तुच्छ यहाँ, यद्यपि असंख्य आकर हैं।
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं।
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मनभाया।
—साकेत, सर्ग ८, पृ० २०४

वियोग की कल्पनामात्र से दुःखी होती हैं और बड़े कातर स्वर में राम के समक्ष अपनी व्याकुलता व्यक्त करती हैं।[1] पर फिर यह सोचकर कि अगर मैं पति के धर्म का पालन नहीं करूँगी तो सहधर्मचरिणी कैसे कहलाऊँगी,[2] वे अपनी चचल वृत्तियों को सयमित करती हैं तथा वनगमन के लिए अपनी स्वीकृति देती हैं। पत्याराधन ही उनके जीवन का इष्ट है और इसके लिए वे अपनी सुख-वासना, स्वार्थ, सब का त्याग कर सकती हैं।[3] जो लोकाराधन पति द्वारा सर्वभावेन पूजित है उसको वे भी श्रद्धा से शिरोधार्य करती हैं।[4] प्रियप्रवास की राधा के समान वैदेही-वनवास की सीता को भी हरिऔध ने लोककल्याण की पवित्र भावना से युक्त बताया है। वे पतिप्रेम को ही व्यापकता प्रदान कर विश्वप्रेम की पवित्र भूमिका पर पहुँची दिखायी पड़ती हैं।[5] इन्हीं उच्च विचारधाराओं से आलोच्य महाकाव्यों की सीता अपने परम्परागत चरित्र को और अधिक शालीन और पूत बनाती दिखायी दे रही हैं। वैसे तो वाल्मीकिरामायण में भी सीता विशेष स्थिति में पति के कर्तव्य की गुरुता और धर्मपरायणता पर विचार कर उसे

---

१. वैदेही वनवास, ५, २२

२. वैदेही-वनवास, ५, २६

३. वही करूँगी जो कुछ करने की मुझको आज्ञा होगी।
त्याग करूँगी, इष्ट सिद्धि के लिये बना मन को योगी॥
सुख-वासना, स्वार्थ की चिन्ता दोनों से मुँह मोडूँगी।
लोकाराधन या प्रभु-आराधन निमित्त सब छोडूँगी॥
वैदेही वनवास, ७, २७

४. है लोकोत्तर त्याग आपका लोकाराधन है न्यारा।
कैसे संभव है कि वह न हो शिरोधार्य मेरे द्वारा।
—वैदेही-वनवास, ५, २६

५. सर्वोत्तम साधन है उर में।
भव-हित पूत-भाव का भरना।
स्वाभाविक सुख लिप्साओं को।
विश्व प्रेम में परिणत करना।
—वैदेही-वनवास, ७, ७५

महत्त्व देती हैं और उसके अनुकूल आचरण को ही श्रेष्ठ मानती हैं;[१] पर आलोच्य काव्यों में पत्याराधन और लोकाराधन का जो उत्साह सीता में दिखलायी पड़ता है, वैसा वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

आधुनिक काव्यों की सीता सच्ची मानवतावादी विचारों की पोषिका हैं। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः' की महान् भावना से उनका अंतस् आप्लावित है।[२] वे आर्त मनुष्यों के दुखों का हरण करने वाली हैं।[३] परिश्रम और स्वावलंबन उनके जीवन के आधेय हैं। अछूतों के उद्धार और उनके साथ मिलजुल कर कार्य करने की भावना भी उनमे उद्वेलित है।[४]

रामानुज लक्ष्मण भी रामकथा के स्मरणीय और अविस्मरणीय पात्रो मे से हैं। राम के प्रति इनके भक्तिमय प्रेम, त्याग और समर्पण ने इन्हें राम के समान ही अमर बना दिया है। आधुनिक काल मे साकेत, उर्मिला आदि काव्यों मे प्रमुख रूप से तथा वैदेही-वनवास, रामचरित-चिन्तामणि आदि काव्यों मे प्रासंगिक रूप से लक्ष्मण का चरित्र अवतरित हुआ है। इन काव्यो में लक्ष्मण का चरित्र संस्कृत के रामकाव्यों की परम्परा में ही एक आदर्श भ्रातृप्रेमी, त्यागी, स्वाभिमानी और उग्र-प्रकृति वाले व्यक्ति के रूप मे अंकित किया गया है।

लक्ष्मण

अग्रज राम के प्रति लक्ष्मण का प्रेम और भक्तिभाव श्लाघनीय है। राम की सेवा करके ही वे अपने जीवन को सार्थक समझते हैं। यही कारण है कि जब पिता दशरथ के प्रण की रक्षा के लिए राम वन को प्रस्थान करते हैं तो लक्ष्मण भी उनकी सेवा करने के लिये उनके साथ वन जाने की इच्छा

---

१. "यस्त्व ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः।
मया च परिहर्तव्य त्व हि मे परमा गतिः।"
—वा० रा०, उ० का०, ४८, १३-१४
"पत्युः पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात्।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीर नरर्षभ॥
—वा० रा०, उ० का०, ४८, १६

२. वैदेही-वनवास, १, ४९-५०

३. वही, ६, ३२-३४

४. साकेत, पृ० १६१

व्यक्त करते हैं। वाल्मीकि रामायण में वे स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि राम के बिना वे देवलोक, अमरत्व और सब लोकों का ऐश्वर्य तक पाने के इच्छुक नहीं हैं।[१] आलोच्य काव्यों के लक्ष्मण के लिए भी राम से रहित अयोध्या चिता-वन के समान है।[२] राम ही उनके जीवन-सर्वस्व हैं, उनसे वियुक्त होने की कल्पना ही उन्हें विक्षुब्ध कर देती है।[३] बड़े हठ-पूर्वक वे राम के साथ वन जाते हैं और बड़ी तत्परता से अपने अग्रज की सेवा करते हैं।

लक्ष्मण की प्रकृति में राम के समान धैर्य और शान्ति नहीं है। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म रामायण आदि ग्रन्थों में धनुर्भंग, राम वनगमन, भरत चित्रकूट-गमन आदि अवसरों पर लक्ष्मण के उग्र स्वभाव की व्यंजना देखी जा सकती है। आलोच्य काव्यों में भी वन-गमन के समय राम तो निर्विरोध रूप से 'करूँगा मैं विपिन में धर्मपालन' कहकर पिता की आज्ञा को स्वीकार कर लेते हैं, पर लक्ष्मण क्षुब्ध होकर कभी माता-पिता को मार डालने की बात कहते हैं,[४] कभी कैकेयी को बन्धु-बांधवों के साथ मार डालने की धमकी

---

१. न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥
—वा० रा०, अयो० का०, ३१,५

२. अयोध्या है कि यह उसका चिता-वन ?
करूँगा क्या यहाँ मैं प्रेत-साधन ?
—साकेत, पृ० ६५

३. रहा यह दास तुमको छोड़कर कब ?
रहे क्या आज जाता देख वन को ?
करो दोषी न इतना नाथ ! जन को।
तुम्हीं माता, पिता हो और भ्राता,
तुम्हीं सर्वस्व, मेरे हो विधाता ।
—साकेत, पृ० ६६

४. माता और पिता दोनों को इससे मारूँगा तत्काल ;
आज्ञा मिले, देखिये सज्जित है मेरे कर में करवाल ।।
—रामचरित चिन्तामणि, ७, ६

देते हैं।[1] 'रहो, सौमित्रि! तुम क्या कह रहे हो' कहकर राम उन्हें शान्त करने की चेष्टा करते हैं, पर वे शान्त नहीं होते प्रत्युत् और भड़क उठते हैं। अन्याय को निर्विरोध सहन करने की शक्ति उनमें नहीं है। वे बड़े विरोधात्मक स्वर में कहते हैं :—

> "रहूँ ?"सौमित्रि बोले—' चुप रहूँ मैं ?
> तथा अन्याय चुप रह कर सहूँ मैं ?
> असम्भव है, कभी होगा न ऐसा,
> वही होगा कि है कुलधर्म जैसा" ।[2]

वाल्मीकि-रामायण और अध्यात्म रामायण में भी इस अवसर पर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर माता, पिता और भाई को मारने के लिए तत्पर दिखायी पड़ते हैं।[3] लक्ष्मण की यही अस्थिरचित्तता और उग्रता भरत के चित्रकूट-गमन पर प्रकट होती है। भरत को ससैन्य वन में आता देखकर वे एक साथ ही यह आशंका करते हैं कि भरत किसी दुष्प्रयोजन से यहाँ आरहे हैं और उन्हें दूर्वापकारी जानकर वे मारने तक की योजना बना डालते हैं :—

---

१. अरे मातृत्व तू अब भी जताती!
ठसक किसको भरत की है बताती,
भरत को मार डालूँ और तुझको।
नरक में भी न रक्खूँ ठौर तुझको,
युधाजित आततायी को न छोड़ूँ,
बहन के साथ भाई को न छोड़ूँ।
—साकेत, पृ० ५९

२. वही, पृ० ६०-६१

३. हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम्।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ।।
—वा० रा०, अयो० का०, २१, १९

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम्।
बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्बन्धून्मातुलानपि ।।
अ० रा०, अयो० का०, ४, १५

आये होंगे यदि भरत कुमति वश वन में,
तो मैंने यह सकल्प किया है मन में,
उनको इस शर का लक्ष्य चुनूँगा क्षण में,
प्रतिरोध आपका भी न सुनूँगा रण मे।[1]

वाल्मीकि रामायण मे भी लक्ष्मण की यह अकालुता और अदूरदर्शिता भरतागमन के समय व्यक्त हुई है।[2]

आधुनिक महाकाव्यों मे लक्ष्मण के चरित्र के सस्कृत काव्यों मे उपेक्षित कई मोहक और आकर्षक रूपो का भी अनावरण हुआ है। साकेत, उर्मिला आदि काव्यों मे लक्ष्मण एक आदर्श पति के रूप मे भी चित्रित किए गये हैं। एक प्रेमी के रूप मे वे बहुत ही कोमल और भावुक हैं। उर्मिला के प्रति उनका प्रेम बडा शिष्ट और सयमित है। वाल्मीकि रामायण मे लक्ष्मण राम के प्रति अपने कर्तव्य के लिए सचेत हैं, पर उर्मिला के प्रति वे तनिक भी सचेत नही हैं। आलोच्य-काव्यों मे अन्य कर्तव्यों के साथ उर्मिला के प्रति अपने कर्तव्य के विषय मे वे सजग हैं। उर्मिला महाकाव्य में लक्ष्मण वनगमन के पूर्व सारी परिस्थिति से उर्मिला को अवगत करा देते हैं और उसकी सहमति से ही वन जाने को प्रस्तुत होते हैं। इसके साथ ही लक्ष्मण का हासपरिहासमय विनोदी स्वाभाव भी आलोच्य काव्यों मे अकित है। समय-समय पर वे अपनी पत्नी उर्मिला और भाभी सीता के साथ हासपरिहास करते दीखते हैं।

भरत

कैकेयी-पुत्र भरत रामकथा के सात्विक चरित्रों में से हैं। वाल्मीकि रामायण आदि सस्कृत ग्रन्थों मे भरत का चरित्र भ्रातृप्रेम, त्याग, सरलता का आदर्श है। आलोच्य महाकाव्यो में भरत का चरित्र मुख्यतया इसी परिपार्श्व मे चित्रित है। अग्रज राम के प्रति उनकी समर्पणमयी भक्ति और निष्कपट स्नेह भाव है।

---

१. साकेत, पृ० २१६

२ सम्प्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव हि।
भरतस्य वधे दोष नाह पश्यामि राघव।
पूर्वापकारिण हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते।
पूर्वापकारी भरतस्त्यागेऽधर्मश्च राघव॥
—वा० रा०, अयो० का०, ६६, २३–२४

अपने ननिहाल कैकय प्रदेश से अयोध्या लौटते ही वे अपने अग्रज राम से मिलने के लिए आतुर दीखते हैं और अपनी माता से बार-बार उनके विषय में पूछते हैं।[1] जब उन्हें राम के वनगमन और पिता की मृत्यु का वृत्तान्त ज्ञात होता है तो वे मूर्च्छित होकर गिर जाते हैं। उनका सरल निष्कपट हृदय ऐसे जघन्य अपराध को सहने में समर्थ नहीं है। वे अपनी माता को उसके कुकृत्यों के लिए धिक्कारते हैं।[2]

भरत बहुत ही कोमल और भावुक प्रकृति के हैं। ऐसे भावुक हृदय ही सच्ची आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं। भरत निर्दोष होते हुए भी सारे कुचक्रों और अप्रिय घटनाओं के मूल में स्वयं को जानकर ग्लानि अनुभव करते हैं। कैकेयी के दुष्कर्म ने उनके मन-मस्तिष्क को विक्षुब्ध कर दिया है। माता कौसल्या के सम्मुख भी वे बड़े लज्जित होते हैं तथा स्वयं को अधम, अपराधी, षडयन्त्रकारी, राज्यहारी दस्यु इत्यादि कहकर अपना दाम व्यक्त करते हैं।[3] भरत की यह आत्मवेदना और पश्चात्ताप उनके हृदय की पवित्रता और निश्छलता के द्योतक हैं। वाल्मीकि-रामायण में भी भरत सारे कुकृत्यों के मूल में स्वयं को मानते हैं।[4] राम को लौटाने के लिए जाते समय बार-बार अपने को दोष देते हैं, धिक्कारते हैं।[5]

---

१. साकेत-सप्त, ३, १३

२. वही, ३, २२

३. भरत—अपराधी भरत—है प्राप्त,
दो उसे आदेश अपना आप्त।
आज माँ मुझसा अधम है कौन,
मुँह न देखो, पर न हो तुम मौन।
प्राप्त है यह राज्यहारी दस्यु,
दूर से षडयन्त्रकारी दस्यु।
आ गया मैं गृहकलह का मूल,
दण्ड दो, पर दो पदों की धूल।
—साकेत, पृ० १८६-८७

४. मन्निमित्तमिव दुःख प्राप्तो रामः सुखोचित।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्॥
—वा० रा०, अयो० का०, १६६, ३६

५. वा० रा०, अयो० का०, ८६, १५-१७

भरत का त्याग और उनकी आज्ञाकारिता भी अविस्मरणीय है। कैकेयी द्वारा अपने लिए अधिकृत किये गये राज्य को वे तृणवत् त्याग देते हैं। अग्रज के राज्य को वे किसी भी मूल्य पर ग्रहण करने को तैयार नहीं हैं। राम के पास चित्रकूट जाकर उनसे अयोध्या लौटकर राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। इस अवसर पर साकेतकार ने उनकी वेदना को अन्तस् मे प्रवेश कर जितनी सहृदयता से जाना है, उतनी ही मार्मिकता से उसे अभिव्यक्त भी किया है।[1]

राम की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस भरत मे नही है। जब राम अयोध्या लौटने के विषय मे अपनी अनिच्छा व्यक्त करते हैं तो भरत उन की आज्ञा शिरोधार्य कर अयोध्या लौट आते हैं। राम की आज्ञा तो वे स्वीकार कर लेते हैं, पर कितनी कठोर प्रतिज्ञा के साथ ? वाल्मीकि रामायण मे वे राम से कहते हैं कि चौदह वर्षों तक जटा और चीर धारण करके, फल-फूल का भोजन करता हुआ, आपके आगमन की प्रतीक्षा में नगर से बाहर ही रहूँगा। इतने दिनों तक राज्य की रक्षा का भार आपकी इन चरण-पादुकाओं पर ही रखकर आपकी प्रतीक्षा करूँगा।[2] आलोच्य काव्यों में भी वे इस व्रत का पालन करते दिखायी पड़ते हैं। राम की चरण-पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके तपस्वी के समान निरासक्त और निस्पृह भाव से राज्य-संचालन करते हैं। वे स्वयं को राम का एक सेवक मात्र समझते हुए निरन्तर उनके ध्यान में मग्न रहते हैं। वे सच्चे अर्थों मे साकेत-सत हैं। आधुनिक काव्यों मे तपस्वी भरत का रूप इस प्रकार से चित्रित हुआ देखा जा सकता है :—

"उटज-अजिर में पूज्य पुजारी उदासीन-सा बैठा है,
आप देव-विग्रह मन्दिर से निकल लीन-सा बैठा है।"[3]

"पावन परम ब्राह्म वेला में,
सोया है जग ये जागे हैं।
प्रभु-पद-पीठों की अर्चा में,
यों तन-मन से अनुरागे हैं।
कुटिया समझे भरत यहाँ हैं,
भरत राम तक उड़ भागे हैं।"[4]

---

१. साकेत, पृ० २८८
२. वा० रा०, अ० का०, ११२, २३-२४
३. साकेत, पृ० २६८
४. साकेत-सन्त, १६, १. (अ)

राम-राज्य को भरत चौदह वर्ष तक एक धरोहर के रूप में ही संभालते हैं। राम के अयोध्या लौटते ही वे उसे राम को लौटा कर पराशान्ति का अनुभव करते हैं।[1] वाल्मीकिरामायण में भी हनुमान से राम के अयोध्या लौटने का समाचार पाकर, 'चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः' कहकर वे इसी शान्ति को व्यक्त करते हैं।[2]

इस प्रकार भरत के चरित्र की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ परम्परागत हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने कुछ अन्य विशिष्टताओं का समुच्चय भी भरत के चरित्र में दिखाया है। संस्कृत काव्यों की सीमाओं से आगे बढ़कर यहाँ भरत को एक शूरवीर क्षत्रिय के रूप में भी चित्रित किया गया है। लक्ष्मण के शक्ति लगने का समाचार सुनकर उनका वीरत्व जाग्रत हो उठता है और वे शत्रुघ्न को सैन्य-सज्जा का आदेश देते हैं।[3] युधाजित के साथ वार्तालाप में भरत की मानवतावादी विचारधारा मुखर हो उठती है। वे क्रूरता, हिंसा, शोषण, वर्गभेद आदि के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं।[4] साकेत-संत के प्रारम्भ और अन्त में उनके प्रणयी रूप का भी दिग्दर्शन है।

पार्वती

पार्वती कवि भारतीनन्दन के पार्वती महाकाव्य की नायिका है। इस काव्य में पार्वती का चरित्र मूलरूप से शिवपुराण और कुमारसम्भव के आधार पर विन्यस्त है। यहाँ पार्वती का दैवी नायिका रूप शिवमहापुराण से प्रभावित है। पार्वती शिव की आद्या शक्ति हैं और विश्व के सृजन का मूल कारण हैं।[5] पार्वती

१. साकेत-सन्त, पृ० २०४
२. वा० रा०, यु० का०, १२६, ४५
३. साकेत, पृ० ४०२
४. वही, सर्ग २
५. "आदि शक्ति वे विश्व-मंगला विश्रुत शैल-कुमारी"
—पार्वती, पृ० ९
"मूर्त हुई मानव रूपों में चिति की अद्भुत माया,
श्री ने जीवन के स्वरूप में अपना वैभव पाया।"
—पार्वती, पृ० १०
"आदि शक्ति का धर्म सृजन औ पालन बनकर आया,
पशु का दानव-धर्म नाश-बल हुआ सचेतन नर में।
—पार्वती, पृ० १४

का यह रूप शिवमहापुराण की देन है।[1] आधुनिक काल मे पार्वती के चरित्र मे तपोनिष्ठा, पातिव्रत्य, लज्जाशीलता आदि गुणो का विनिवेश भी उक्त संस्कृत काव्यों की छाया मे ही हुआ है।

पार्वती सदाशिव की अर्धांगिनी हैं। पूर्व जन्म मे दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप मे अवतार लेकर वे दक्ष के यज्ञ मे पति का अपमान होने पर अग्नि मे प्रवेश करती हैं,[2] पुन. लोककल्याण के लिए पार्वती के रूप मे अवतरित हो कर फिर से शिव को पाने की इच्छुक हैं। अपने पिता हिमाचल से आज्ञा ले कर वे तापसी वेष धारण कर शिव की सेवा मे नियोजित होती हैं, पर शिव के द्वारा काम को भस्मीकृत देखकर उन्हें अपने रूप की विफलता प्रतीत होती है। नारद मुनि से शिव को कठोर तप द्वारा ही साध्य जानकर वे उग्र तप से प्रिय को प्राप्त करने को समुद्यत होती हैं। जिस प्रिय को वे रूप से प्राप्त नही कर पायी उसे वे दुष्कर तप से प्राप्त करने का विश्वास रखती हैं।[3] पार्वती के इस दृढ़विश्वास का चित्रण कुमारसम्भव के आधार पर ही हुआ है।[4]

सुकुमारी राजकन्या पार्वती वैभव और सुख-साधनो का त्याग करके अनेक दैहिक कष्ट सहते हुए नियमपूर्वक तपस्या मे लीन रहती हैं। ग्रीष्म ऋतु मे अपने चारो ओर अग्निज्वाला प्रज्वलित कर उसके मध्य बैठती हैं, सूर्य की उज्ज्वल प्रभा को अविराम देखती हैं, तप्त भू पर शयन करती हैं, वर्षा ऋतु में जब मेघ घोर गर्जन करते हैं, तड़ित वज्रपात करता है, शिलाएँ भग्न हो जाती हैं, पृथुल हिम-उपल उसे प्रताड़ित करते हैं, पर वह निर्विकार होकर तप करती हैं। इसी प्रकार अन्य ऋतुओ मे भी उनकी कष्टपूर्ण तप-साधना द्रष्टव्य है।[5] वृक्षो से अपने आप गिरे हुए पत्तो को खाना तप की पराकाष्ठा समझी जाती है, पर पार्वती पत्ते खाना भी छोड़ देती हैं।[6] अपने तप की पराकाष्ठा से वे

---

१. शि० पु०, रु० सं० पा० स०, १३, ४ तथा ३, ३३

२. पार्वती, पृ० ५५

३. शुद्धता करता प्रमाणित उग्र तप से हेम,
करूँगी तप से प्रमाणित मैं हृदय का प्रेम।
—पार्वती, पृ० १३१

४. कुमारसंभव, ५, २

५. पार्वती, पृ० १३५–४४

६. पार्वती, पृ० १६६

मुनियों की भी आदर्श बन जाती हैं। कुमारसम्भव के पंचम सर्ग में भी पार्वती की यह तपोसाधना चित्रित है।

पार्वती की इस कठोर साधना का प्रेरक है शिव के प्रति उनका अनन्य दृढ़ प्रेम। शिव के प्रति उनके सच्चे और एकनिष्ठ प्रेम की अभिव्यक्ति उस समय भी होती है जब वटुक वेषधारी शिव उनकी परीक्षा लेने के लिए उनके इष्ट को बहुत कुत्सित, अमंगलमूर्ति, रूपहीन, श्मशाननिवासी इत्यादि कहकर उन्हें तप से विरत होने के लिए कहते हैं, पर अचलनिष्ठा पार्वती अपने पति के लिए किसी प्रकार के अपशब्द सुनने को तैयार नहीं हैं, उनका मन तो एक भाव से शिव में ही संस्थित है। वे वटुक से बड़ी दृढ़ता से कहती हैं :—

> अथवा व्यर्थ विवाद, सुने हैं तुमने उनमें जैसे,
> होंय अनन्त सभी वे उनमें चाहे हों भी वैसे;
> एक भाव से हुआ उन्हीं में संस्थित मानस मेरा,
> शिव में ही बस गया सनातन मेरा प्राण-बसेरा।[1]

पार्वती का यह दृढ़पातिव्रत्य शिवपुराण और कुमारसम्भव के प्रभाव में ही चित्रित है। कुमारसम्भव में भी पार्वती वटुकवेषधारी शिव के समक्ष अपनी एकनिष्ठता का परिचय देती हुई कहती हैं :—

> अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
> ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥[2]

पार्वती में स्त्रीसुलभ लज्जाशीलता और मर्यादाभाव भी प्रभूत मात्रा में है। जब तपस्वी ब्रह्मचारी उनसे उनकी तपस्या के इष्ट के विषय में पूछता है तो वे स्वाभाविक शील और संकोच के कारण इसका उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाती हैं।[3] उन्हें मर्यादा का भी पूरा ध्यान है। अपने तप से शिव को प्रसन्न कर लेने पर और शिव द्वारा उनके प्रति आत्मसमर्पण कर देने पर भी वे स्वेच्छा से परिणय की स्वीकृति नहीं देती हैं और न ही स्वयं इस संबंध में शिव से वार्तालाप करती हैं। 'मर्यादा का सदा लोक में मान हो' इस धारणा को लिए हुए वे अपनी सखी को शिव के समीप यह संदेश लेकर भेजती हैं कि वे पिता हिमालय से उसके लिए सविधि याचना करें और शास्त्रोचित रीति से

---

१. वही, पृ० १६६
२. कुमारसम्भव, ५,८२
३. पार्वती, पृ० १६२

पाणिग्रहण कर कृतार्थ करें।[1] कुमारसम्भव मे भी पार्वती स्वेच्छा से विवाह की स्वीकृति न देकर पिता को इस सम्बन्ध में निर्णायक बताती हैं।[2]

कुमारसम्भव में शिव-पार्वती के विवाह के अनन्तर पार्वती की कामुक चेष्टाओं के वर्णन से पार्वती का जो रूप सामने आया है वह पार्वतीकार का ग्राह्य नही रहा। यहाँ विवाह के उपरान्त शिव के साथ पार्वती के ज्ञानमय वार्तालाप से उनका विदुषी रूप सामने आया है।

बाणभट्ट

कादम्बरी और हर्षचरित के रचयिता महाकवि बाणभट्ट अपनी विशिष्ट गद्य-शैली और काव्य-शिल्प के कारण भारतीय साहित्य में अपना अतुल्य स्थान रखते हैं। इनकी रचनाओं के समान इनका व्यक्तित्व भी अपने आप मे अकेला ही है। बाणभट्ट की रचनाओं मे इनके अपूर्व प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व का प्रस्फुटन हुआ है। हर्षचरित के प्रारम्भ में कवि बाण द्वारा प्रदत्त स्ववंश-परिचय से उनके व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। बाण का अनोखा व्यक्तित्व भी हिन्दी के प्राधुनिक साहित्य-स्रष्टाओं की दृष्टि से नहीं बच सका है। प्राचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उतारा है तो महाकवि रामावतार अरुण ने बाणाम्बरी महाकाव्य मे।

परंपरा का प्रभाव

हर्षचरित के अनुसार बाण का व्यक्तित्व कई प्रवृत्तियो और गुणों का समष्टि रूप है। भ्रमणशील प्रवृत्ति, विवर्धमाना जिज्ञासा, स्वाभिमान निर्भीकता स्पष्टवादिता, दृढ़-निश्चय और विशेष कलानुराग, ये बाण के व्यक्तित्व के घटक-तत्त्व हैं और इन्हीं की आधारशिला पर बाणाम्बरी के बाण का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है।

इत्वर

बाल्यावस्था में ही मातृहीन हो जाने पर पिता के स्नेह से पालित बाण बाल्यकाल ही मे इत्वर हो जाता है। उसकी मित्र-मडली बहुत विशाल है और वह अपने मित्रो में ही विशेष सुखानुभव करता है। उसकी अत्यधिक चपलता और इत्वरता देख कर उसके पिता बहुत दुखी होते हैं, उच्च वात्स्यायन कुल में ऐसे कुपुत्र का जन्म उन्हें कलंकवत् प्रतीत होता है—

---

१. पार्वती, पृ० १६६

२. कुमारसम्भव, ६, १

'भानु-पुत्र निर्लज्ज, चपल, निष्प्रभ अभिनेता ?
मंजुल मन में कौन अध आँधी भर देता ?
मुझसे भी क्या मित्रमंडली सुखदायी है ?
वात्स्यायन-नभ में क्यों बदली छायी है ?'[1]

'किन्तु तरुण तन में न प्रचुर अरुणाभा मन की,
चंचल-चंचल हो जाती यौवन की सांसें।'[2]

इस प्रकार निरंकुशता और यौवनारम्भ दोनों के सबल साहाय्य से उसकी इत्वरता निरन्तर बढ़ती जाती है। बाण ने स्वयं हर्षचरित में अपनी इस इत्वरता का उल्लेख किया है।[3]

उत्सुक और भ्रमणशील मनोवृत्ति

पिता की मृत्यु के उपरान्त तो उसकी स्वच्छन्दता और अधिक बढ़ती जाती है। बाण प्रारम्भ से ही बड़ा जिज्ञासु प्रवृत्ति का है और यौवन के उत्साह में वह अपनी सभी उत्सुकताओं और इच्छाओं को पूर्ण करने को तत्पर हो जाता है। इसके साथ ही वह देशदेशान्तर में भ्रमण करने का उत्सुक है, भ्रमण उसकी अभिरुचि है। बाण ने स्वयं अपने को 'देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदय'[4] कहा है। देशान्तरावलोकन की उत्सुकता बाणाम्बरी की निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुई है —

अन्तर्मन उत्सुक अब भारत-दर्शन-हित,
काव्यात्म-सिद्धि-हित मित मन-प्राण पिपासित,
मैं मगधकूप-मण्डूक नहीं, मानव हूँ,
कण्टकाकीर्ण दश दिग्पथ का कलरव हूँ।[5]

---

१. बाणाम्बरी, सर्ग १, पृ० ६

२. वही, वही, पृ० १०

३ "गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयनिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव।"
—हर्ष चरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६६

४. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६७

५ बाणाम्बरी, सर्ग २, पृ० २४

पाणिग्रहण कर कृतार्थ करें।[1] कुमारसम्भव में भी पार्वती स्वेच्छा से विवाह की स्वीकृति न देकर पिता को इस सम्बन्ध में निर्णायक बताती हैं।[2]

कुमारसम्भव में शिव-पार्वती के विवाह के अनन्तर पार्वती की कामुक चेष्टाओं के वर्णन से पार्वती का जो रूप सामने आया है वह पार्वतीकार का ग्राह्य नहीं रहा। यहाँ विवाह के उपरान्त शिव के साथ पार्वती के ज्ञानमय वार्तालाप से उनका विदुषी रूप सामने आया है।

बाणभट्ट

कादम्बरी और हर्षचरित के रचयिता महाकवि बाणभट्ट अपनी विशिष्ट गद्य-शैली और काव्य-शिल्प के कारण भारतीय साहित्य में अपना अतुल्य स्थान रखते हैं। इनकी रचनाओं के समान इनका व्यक्तित्व भी अपने आप में अकेला ही है। बाणभट्ट की रचनाओं में इनके अपूर्व प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व का प्रस्फुटन हुआ है। हर्षचरित के प्रारम्भ में कवि बाण द्वारा प्रदत्त स्ववंश-परिचय से उनके व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। बाण का अनोखा व्यक्तित्व भी हिन्दी के आधुनिक साहित्य-स्रष्टाओं की दृष्टि से नहीं बच सका है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उतारा है तो महाकवि रामावतार अरुण ने बाणाम्बरी महाकाव्य में।

परंपरा का प्रभाव

हर्षचरित के अनुसार बाण का व्यक्तित्व कई प्रवृत्तियों और गुणों का समष्टि रूप है। भ्रमणशील प्रवृत्ति, विधर्ममाना जिज्ञासा, स्वाभिमान निर्भीकता स्पष्टवादिता, दृढ़-निश्चय और विशेष कलानुराग, ये बाण के व्यक्तित्व के घटक-तत्त्व हैं और इन्हीं की आधारशिला पर बाणाम्बरी के बाण का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है।

इत्वर

बाल्यावस्था में ही मातृहीन हो जाने पर पिता के स्नेह में पालित बाण बाल्यकाल ही में इत्वर हो जाता है। उसकी मित्र-मंडली बहुत विशाल है और वह अपने मित्रों में ही विशेष सुखानुभव करता है। उसकी अत्यधिक चपलता और इत्वरता देख कर उसके पिता बहुत दुखी होते हैं, उच्च वात्स्यायन कुल में ऐसे कुपुत्र का जन्म उन्हें कलंकवत् प्रतीत होता है—

---

१. पार्वती, पृ० १६६

२. कुमारसम्भव, ६, १

'भानु-पुत्र निर्लज्ज, चपल, निष्प्रभ अभिनेता ?
मंजुल मन में कौन अंध आंधी भर देता ?
मुझसे भी क्या मित्रमंडली सुखदायी है ?
वात्स्यायन-नभ में क्यों बदली छायी है ?'[1]

'किन्तु तरुण तन में न प्रचुर अरुणाभा मन को,
मचल-चचल हो जाती यौवन की सांसें।'[2]

इस प्रकार निरकुशता और यौवनारम्भ दोनों के सबल साहाय्य से उसकी इत्वरता निरन्तर बढ़ती जाती है। बाण ने स्वय हर्षचरित में अपनी इस इत्वरता का उल्लेख किया है।[3]

उत्सुक और भ्रमणशील मनोवृत्ति

पिता की मृत्यु के उपरान्त तो उसकी स्वच्छन्दता और अधिक बढ़ती जाती है। बाण प्रारम्भ से ही बड़ा जिज्ञासु प्रवृत्ति का है और यौवन के उत्साह में वह अपनी सभी उत्सुकताओं और इच्छाओं को पूर्ण करने को तत्पर हो जाता है। इसके साथ ही वह देशदेशान्तर मे भ्रमण करने का उत्सुक है, भ्रमण उसकी अभिरुचि है। बाण ने स्वय अपने को 'देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदय.'[4] कहा है। देशान्तरावलोकन की उत्सुकता बाणाम्बरी की निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुई है :—

अन्तर्मन उत्सुक अब भारत-दर्शन-हित,
काव्यात्म-सिद्धि-हित नित मन-प्राण पिपासित,
मैं मगधकूप-मण्डूक नहीं, मानव हूँ,
कण्टकाकीर्ण वन विहग का कलरव हूँ।[5]

---

१. बाणाम्बरी, सर्ग १, पृ० ६

२. वही, वही, पृ० १०

३. "गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयनिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव।"
—हर्ष चरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६६

४. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६७

५. बाणाम्बरी, सर्ग २, पृ० २४

इसी प्रकार :—

अभयदान यहीं दो अब रेखे,
युग भारत का भूतल देखे
बरसे विभूति
ढूँढ़ूँ मैं आर्यावर्त–हृदय,
वर्षा तक करूँ नित्य संचय-
आत्मानुभूति ।[1]

वह देशाटन की अपूर्व इच्छा से प्रेरित होकर घर से निकल पड़ता है और कई स्थानों पर भ्रमण करता है तथा नये-नये अनुभव संचित करता है।

आत्मभिमानी और स्पष्टवादी

बाण के व्यक्तित्व का अन्य आकर्षण है उसका स्वाभिमान। बाणाम्बरी में स्थान स्थान पर उसका वंशगत और आत्मगत अभिमान व्यक्त हुआ है। वह कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता जिससे उसके वंशगत गौरव पर आघात पहुँचे। अपने आदर्श की रक्षा के हेतु ही वह माधवी को अपनी नाट्यमण्डली का स्वामित्व और अपार धनराशि प्रदान करता है। अपने आदर्शों का हनन उसे रुचिकर नहीं है।[2] उसके स्वाभिमानी व्यक्तित्व का वास्तविक रूप उस समय सामने आता है जब कि सम्राट् हर्षवर्द्धन के अनुज कृष्णवर्द्धन का चर उनकी पत्री लेकर बाण के पास आता है और यह सूचित करता है कि सम्राट् हर्ष उससे रुष्ट हैं और उससे मिलने के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सुनते ही बाण का स्वाभिमान जाग्रत हो उठता है और विरोधी स्वर उसके मस्तिष्क को झकृत करते हैं। न तो उसे राजशक्ति का भय है और न चाटुकारिता ही पसंद है, वह तो स्वतन्त्रचेता है :—

'मैं न हर्ष का सेवक जो भय से अकुलाऊँ,
क्यों जाऊँ, मैं क्यों जाऊँ, मैं क्यों, क्यों, जाऊँ?'
'चाटुकार मैं नहीं, न कुछ भी लोभ कहीं है,
जो स्वतन्त्रता यहाँ मुझे, वह वहाँ नहीं है,

---

१. हर्षचरित्र, सर्ग १, पृ० ६८
२. बेच देता यदि कहीं आदर्श हो,
मुझे क्या कहती मगध की मृदु मही?
—बाणाम्बरी, पृ० १३६

मेरे गृह ने राजभवन को कभी न देखा,
आश्रित कभी न रही किसी दिन जीवन-रेखा ।'[1]

आगे भी वह यही सोचता है "मैं तो स्वतन्त्र विचरण करने वाला हूँ, राज्याश्रय में न तो वात्स्यायनवंशी कभी रहा है, न राजकुलों ने मेरा कभी कोई उपकार किया है, फिर मैं क्यों डरूँ" ? हर्षचरित मे भी बाण के ये ही निर्भीक्तापूर्ण विचार व्यक्त हुए हैं ।[2] बाण का सच्चा आत्माभिमान नृप के सम्मुख भी नहीं झुकता है । सम्राट् हर्षवर्द्धन द्वारा अपने सम्बन्ध में अनुचित वचन कहे जाने पर वह उनके सम्मुख भी शान्त नहीं रहता है और उनकी भ्रांति को दूर करने का प्रयास करता है । जब हर्षवर्द्धन बाणभट्ट को अपने समक्ष देखकर उसके विषय में अपने सामने बैठे मालवराज से यह कहते हैं:—

'वात्स्यायनवंशी युवा बाण भारी भुजंग ।
कलुषित कर्मों में केवल दूषित राग-रंग ।।'[3]

यह सुनते ही उसका ब्राह्मणत्व जाग्रत हो उठता है । वह बड़ा क्रुद्ध हो कर दृढ़ स्वर में उनके आरोप का खण्डन करता है :—

'मैं बोल उठा, हे देव अशोभन बात न हो,
नर-स्वाभिमान पर निराधार आघात न हो,
आरोप-पूर्व अनिवार्य सत्य का अनुशीलन,
मिथ्या भी होते प्राय: जन-मन श्रवण कथन ।'[4]

और वह बड़े ही आत्माभिमानमिश्रित स्वर मे श्री हर्ष से कहता है':–

'मैं व्यक्ति नहीं साधारण, वात्स्यायन-रवि हूँ,
दर्शन-ज्ञाता कोमलता का कुसुमित कवि हूँ,
शास्त्रानुरक्त मैं सांगवेद-पाठक प्रबुद्ध,
तपसी–गौरव–गर्वित शोणित शुद्धातिशुद्ध ।'

'वैदिक श्री-कुल में जन्म हुआ मेरा राजन्,
नियमित गृहस्थ कर्मोच्च सोमपायी ब्राह्मण,

---

१. बाणाम्बरी, सर्ग १०, पृ० १६६
२. हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ८६
३. बाणाम्बरी, सर्ग ११, पृ० २१५
४. बाणाम्बरी, सर्ग ११, पृ० २१६

सच कहता हूँ सम्राट कि मैं हूँ निष्कलक,
मेरे प्राणों में नहीं कहीं भी पाप-पक।"[1]

बाण का यह गर्व और वाग्मिता हर्षचरित में इसी अवसर पर देखे जा सकते है। जब हर्ष बाण के विषय मे 'महानय भुजग' कहकर परिचय देते हैं तो उस अवसर पर बाण के जो शब्द निस्सृत होते हैं वे उपर्युक्त पक्तियो से पर्याप्त साम्य रखते हैं।[2]

दृढ निश्चयी

बाण जितना स्वाभिमानी है उतना ही दृढनिश्चयी भी। जो निश्चय वह कर लेता है उसे पूर्ण करने मे दत्तचित्त हो जाता है। जब वह हर्ष के द्वारा अपमानित होता है तो प्रतिज्ञा कर लेता है कि अपनी काव्यसाधना के बल पर सम्राट् को झुकाने मे समर्थ हूँगा। पर यह भावना उसमें हर्ष के प्रति विद्वेष-भाव धारण करने से उत्पन्न नही होती है। वह तो हर्षकृत निरादर से स्वय मे नवीन चेतना का अनुभव करता है, अपनी कमजोरी को पहचानता है और चेष्टा करता है कि वह ऐसा कार्य करे जिससे स्वय नृप उससे प्रभावित हो। हर्षचरित मे स्वय बाण ने अपना यह निश्चय व्यक्त किया है[3] और बाणाम्बरी मे भी उसके इस सकल्प की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है —

"नृप दोष नहीं, दोषारोपित गत कला-कर्म,
अज्ञात अभी तक शिल्प सिद्धि का मधुर मर्म।"

---

१ बाणाम्बरी, सर्ग ११, पृ० २१६

२ देव! अविज्ञाततत्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि? स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावा प्रवादाश्च। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा सम्भावयितुमविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जात सोमपायिना वशे वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादय कृता सस्कारा सम्यक्पठित साङ्गो वेद। श्रुतानि च यथाशक्ति। शास्त्राणि दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजगता।"

—हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२६

३ "अतिदक्षिण खलु देवो हर्ष यदेवमनेकबालचरितचापलोचितकौलीनकोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। सर्वथा तथा करोमि, यथा यथावस्थित जानाति मामय कालेन।"

—हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३३ १३४

"अन्यथा कलंकित मुझे न करते थी—धरेश,
पूर्वार्जित चारु चपलता से हो हुआ क्लेश।"

"सम्राट–निरादर से नूतन चेतना मिली,
जीवन में जय करने की नव प्रेरणा मिली,
स्थाण्वीश्वर मे साहित्यिक तप करना होगा,
सदिग्ध पात्र मे प्राणामृत भरना होगा।'[1]

बाण का यह सकल्प शब्दों तक ही सीमित नही रहता है। वह कार्य रूप में भी अपने सकल्प की पूर्ति करता है। उसकी 'कादम्बरी' की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है। हर्ष भी उसके काव्य से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। वे स्वय आकर उसे अपने प्रासाद मे ले जाते हैं और उचित सम्मान प्रदान करते हैं।

साहित्यिक दृष्टिकोण

बाण के सम्बन्ध में विचार करते समय उनकी काव्य-सम्बन्धी विचार-धारा भी उल्लेखनीय है। बाणाम्बरी मे कवि अरुण ने बाण के द्वारा काव्य की जिन विशेषताओं का उल्लेख करवाया है उससे प्रतीत होता है कि इस काव्य मे बाण के साहित्यिक व्यक्तित्व की निर्मिति भी बाण के ग्रन्थों के आधार पर हुई है। बाणाम्बरी मे बाण के साहित्यिक दृष्टिकोण का उल्लेख हर्षचरित और कादम्बरी के आधार पर ही हुआ है। हर्षचरित मे बाणभट्ट ने सुकाव्य की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्ट स्फुटो रस.।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥"[2]

काव्य के सम्बन्ध मे कवि बाण की यही विचारधारा बाणाम्बरी मे व्यक्त हुई है :—

मेरी दृष्टि से
विषय की नवीनता,
उत्तम स्वभावोक्ति और सहज श्लेष,

१. बाणाम्बरी, सर्ग ११, पृ० २२०
२ हर्षचरित, १, ८

सामासिक शब्द-योजना और स्फुट रस से हों,
उत्कलिका, चूर्णक और आविद्ध शैली में,
सम्भव है प्रणयन नव काव्य का।[1]

बाण के काव्यों में इन्हीं गुणों का समाहार दीख पड़ता है। उत्तम स्वभावोक्ति, सहज श्लेष, सामसिक पद-योजना, स्फुट रस आदि बाण के काव्य की सहज विशेषताएं है। कादम्बरी और हर्षचरित में उत्कलिका, चूर्णक और आविद्ध[2] तीनो शैलियो का प्रयोग हुआ है।

मौलिकता

बाण के व्यक्तित्व की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कई नयी विशेषताओं का समावेश भी बाणाम्बरी मे हुआ है। कवि अरुण ने बाण को अभिनय कला मे बहुत ही निपुण बतलाया है। वह एक नाट्यमंडली की स्थापना करता है तथा विविध नगरों मे जाकर मृच्छकटिक, विक्रमोर्वशीय आदि नाटकों को दर्शकों के सम्मुख अभिनीत करता है। वह अपने कुशल अभिनय से दर्शकों को मंत्रमुग्ध सा कर देता है। कवि के शब्दों मे वह 'नाट्य शिल्प का एक उदित अभिनेता' है। उसकी एकमात्र यही अभिलाषा है :—

कर दूँगा भारत जनपद को नाट्यांकित।
होगी वृग-वीणा झकृत, झकृत, झकृत ।।[3]

वेणी, रेखा, मल्लिका आदि के सम्बन्ध से बाण के प्रणयी रूप का चित्रण भी बाणाम्बरी मे हुआ है। हर्षचरित मे बाण की विशाल मित्रमडली मे दो स्त्रियों के होने का वर्णन अवश्य है,[4] पर उसके प्रेमी-हृदय का चित्रण नही है। उसके अभिनेता और प्रणयी रूप का चित्रण सम्भवतः कवि ने आचार्य द्विवेदी की बाणभट्ट की आत्मकथा कृति से प्रभावित होकर किया है।

---

१. बाणाम्बरी, सर्ग १३, पृ० २८३

२. चूर्णकमल्पसमास दीर्घसमासमुत्कलिकाप्रायम् ।
समासरहितमाविद्ध वृत्तभागान्वितं वृत्तगन्धि ।।
—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४

३. बाणाम्बरी, सर्ग २, पृ० २५

४. हर्षचरित, पृ० ६८

दुर्योधन महाभारत मे खलनायक के रूप में चित्रित पात्र है। उसमें कलुषित और तामसिक प्रवृत्तियाँ ही विशेष रूप से हैं।

इतर गौण पात्र दुर्योधन

वह राज्य-लोभी, ईर्ष्यालु, दम्भी और हठी है। आधुनिक काल में कृष्णायन, जयभारत आदि काव्यों मे दुर्योधन का यही रूप चित्रित है, पर अंगराज, सेनापति कर्ण आदि काव्यों के रचयितामों ने महाभारत मे दुर्योधन के चरित्र-चित्रण को न्यायपूर्ण न समझते हुए अपने काव्यो मे उसके प्रति बड़ी सहृदयता से विचार किया है और उसके चरित्र को बड़े परिष्कृत रूप मे चित्रित किया है।

दुर्योधन के चरित्र के सम्बन्ध मे परम्परा का अनुमोदन करने वाले काव्यो में दुर्योधन को दुष्प्रवृत्ति वाले पात्र के रूप मे स्थान दिया गया है। पांडवो के प्रति विद्वेषभाव रखना, भीम को कपटपूर्वक विषाक्त भोजन खिला देना,[१] शकुनि के साथ कुमन्त्रणा करके पांडवों को लाक्षागृह मे जलाने का प्रयत्न करना,[२] पाडवो को द्यूत मे हराकर राज्य लेने की इच्छा करना,[३] द्यूत में जीती हुई द्रौपदी के लज्जाहरण का प्रयास करना,[४] पांडवो को युद्ध के बिना सूच्यग्र भूमि भी न देने का प्रण करना,[५] य सब कार्य दुर्योधन की नीचप्रकृति के द्योतक हैं। युधिष्ठिरकृत राजसूय यज्ञ के अवसर पर उसकी मत्सरता भी द्रष्टव्य है।[६] यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए आये विभिन्न राजाओ द्वारा लाए गये उपहार उसे वृश्चिकदश के समान लगते हैं। महाभारत मे भी वह कर्ण से कहता है कि पांडुपुत्र युधिष्ठिर को प्राप्त लक्ष्मी को देखकर मैं जल रहा हूँ।[७]

राज्यकौशल

दुर्योधन चाहे कितना ही दुष्प्रवृत्ति क्यों न हो, उसकी राज्य-कुशलता का महाभारतकार भी अस्वीकृत नहीं कर सका है। भारवि के किरातार्जुनीय काव्य म भी युधिष्ठिर का दूत दुर्योधन की कुशल राजनीति और प्रजानुरञ्जन मे

---

१. जयभारत, पृ० ४४
२. वही, पृ० ७१
३. वही, पृ० १५१
४ कृष्णायन, पृ० २३६
५. जयभारत, पृ० ३३२
६. कृष्णायन, पृ० २२८
७ म०, स०, प०, ४७, २६

तत्परता का उल्लेख करता है।[1] आलोच्य काव्यों में भी दुर्योधन अनीति से प्राप्त राज्य के अयश के कलंक को मिटाने के लिए प्रजा के हित-कार्यों में संलग्न रहता है, क्योंकि प्रजा को वश में करके ही वह राज्य कर सकता है।[2]

दुर्योधन बड़ा उद्धत और अहंकारी प्रकृति का है। उसे अपने बुद्धिबल और वीरत्व पर अभिमान है। वह अपनी बुद्धि को उत्तम, तेज को उत्कृष्ट, बलपराक्रम को महान् समझता है तथा अपने उद्योग को भी सबसे बढ़कर समझता हुआ अपने को पांडवों से श्रेष्ठ समझता है।[3] इसी अभिमान के फलस्वरूप

स्वाभिमान

वह गुरुजनों के परामर्श की अवहेलना करता हुआ कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय किये बिना कार्य करता है। उसकी हठधर्मिता के कारण ही कौरव वंश का विनाश होता है। पांडवों की ओर से शान्ति का संदेश ले कर आये कृष्ण के संधि-प्रस्ताव को वह बड़े औद्धत्य से अस्वीकार कर देता है और रण को ही वीरत्व का अन्तिम निर्णायक बतलाता है।[4] कभी-कभी उसका यह अभिमान उसे अशिष्ट कार्यों की ओर प्रेरित करता है और वह गुरुजनों का अपमान करने में भी संकुचित नहीं होता।[5] दुर्योधन का यह गर्व मृत्यु के समय तक विगलित नहीं होता है। वह जब तक जीवित रहता है अभिमानपूर्वक जीता है। जैसा कि वह भीम द्वारा गदाहत होने पर कहता है —

> याचत नहिं करुणा दया, करत न शोक विलाप,
> अजहुँ मुँदत दृग मम हृदय, स्वल्प न पश्चात्ताप।
> मानत जो मैं धर्म तुम्हारा, लहत अराति राज्य-अधिकारा।
> होत युधिष्ठिर धन-जन स्वामी, मैं करबद्ध चरण-अनुगामी।।[6]

महाभारत में दुर्योधन का वीरत्वाभिमान मिथ्या प्रतीत होता है, पर आलोच्य काव्यों में वह एक सच्चे वीर का आदर्श प्रस्तुत करता देखा जा सकता है। सेनापति कर्ण और अंगराज काव्यों में इसकी सम्यक् प्रतिष्ठा हुई है।

---

१ किरातार्जुनीय, १, १७-२५
२ जयभारत, पृ० ३३२
३. म०, उ० प०, ६१, २७
४ जयभारत, पृ० ३३२
५. कृष्णायन, पृ० ४०३
६. कृष्णायन, ४३५

सेनापति-कर्ण के दुर्योधन मे वीरत्व और भावुकता का अच्छा संयोग है । महाभारत के दुर्योधन के समान वह मिथ्या अहंकारी और क्रूरकर्मा नही है । उसमे सच्ची मानवता प्रेमी भावना का उन्मेष है । वह नही चाहता है कि युद्ध मे विश्व के वीरो का संहार हो । महाविग्रह की अनिच्छा से वह युद्ध मे सहायता के लिए आगत राजाओं को लौटा देना चाहता है तथा पार्थ के साथ द्वैरथ युद्ध करके ही विजय का अन्तिम निर्णय कर लेना चाहता है ।[1]

दुर्योधन के चरित्र को गौरवान्वित करने के इच्छुक कवियों ने पांडवों के प्रति दुर्योधन के व्यवहार के लिए भी कारण उपस्थित किया है । पाडवों के जन्म की कहानी ही दुर्योधन की ग्लानि और लज्जा का कारण है । दुर्योधन के अन्य दुराचरणो के लिए भी इन कवियों ने परिस्थितियों और पांडवो को दोषी ठहराया है ।[2]

पार्थ

पार्थ महाभारत का वह पात्र है जिसका साथ अलौकिक शक्तियाँ भी देती हैं । वह नारायण का नर रूप है । आलोच्य काव्यो मे पार्थ का चरित्र प्रासंगिक होते हुए भी बड़ा प्रभविष्णु बन पड़ा है । यह मूलतया महाभारत की सीमाओं मे ही चित्रित है । पार्थ वीरत्व का आदर्श है । आधुनिक काव्यों मे विशेष परिस्थितियों मे अर्जुन के मनोवैज्ञानिक चिंतन को भी स्पष्ट किया गया है ।

आधुनिक काव्यों में अर्जुन की महत्वाकांक्षा और साधना महाभारत के आधार पर ही वर्णित है । अर्जुन मे अद्वितीय धनुर्धर बनने की बलवती आकांक्षा दिखायी पड़ती है ।[3] वह किसी भी धन्वी को अपनी समता करते हुए नही सह सकता ।[4] अर्जुन द्वारा अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के हेतु की गयी साधना भी श्लाघनीय है । धनुर्वेद की जिज्ञासा, शिक्षा, बाहुबल

---

१. सेनापति कर्ण, पृ० ४२-४३

२. सेनापति कर्ण, पृ० १२४-२५

३. द्वैध प्रतिद्वंद्विता करेगा शिष्य आपका,
सहन करेगा नहीं वास किसी धन्वी को ।
—एकलव्य, पृ० २२७

४. सिद्धि निज धनुर्वेद की तभी मैं मानूँगा,
जब विश्व के समस्त धन्वी नत-जानु हों ।
—वही, पृ० २३५

और उद्योग सभी दृष्टियों से वह द्रोण के सभी शिष्यों में श्रेष्ठ और आचार्य द्रोण की समानता करने वाला सिद्ध होता है। अस्त्रविद्या में विशेष अनुराग के कारण ही वह विविध अस्त्रों के प्रयोग, लाघव, और सौष्ठव में सबसे बढ़चढ़ कर निकलता है।[1] आलोच्य काव्यों में उसकी इस साधना की सराहना है।[2]एकलव्य महाकाव्य में वह रात्रि भर तम-वेध-लक्ष्य की साधना करता दीखता है। घोर तपस्या करके शिव को प्रसन्न करता है तथा उनसे और अन्य देवताओं से अनेकानेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करता है।[3]अर्जुन का धनुर्कौशल और वीरत्व शस्त्रास्त्र प्रदर्शन, द्रुपद-पराजय, लक्ष्यवेध और शिव के साथ युद्ध में देखा जा सकता है। महाभारत के युद्ध में तो अर्जुन का शौर्य ही पांडवों की विजय का प्रमुख कारण रहा था। अर्जुन के रण-कौशल के समक्ष गुरु द्रोण भी प्रतिहत जान पड़ते हैं। उनका शिष्य होकर भी अर्जुन उनसे अधिक रणकुशल है, ये वे स्वय स्वीकार करते हैं।[4]

स्पर्द्धा

वीरता के साथ ही वीरोचित स्पर्द्धा का भाव भी अर्जुन में यथेष्ठ है। द्रोण से एकलव्य के शरकौशल के विषय में जानकर उसका यह भाव प्रगट होता है।[5] महाभारत में भी द्रोण के समक्ष वह यही भाव लेकर प्रस्तुत होता है और एकलव्य की वीरता के लिए आचार्य द्रोण को उपालम्भ देता है।[6] 'एकलव्य' में इस अवसर पर पार्थ के चिंतन को प्रस्तुत करके उसकी मनोवृत्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अर्जुन की स्पर्द्धा ईर्ष्या की स्थिति तक पहुँच जाती है और वह एकलव्य को मारने के लिए पापचिंतन करने लगता है।[7] यद्यपि इससे पार्थ के चरित्र को आघात तो पहुँचता है फिर भी मानवीय

---

१. म०, आ, प०, १३१, १३-१४

२. ये वे सभी सुयोग्य किन्तु अर्जुन की निष्ठा,
उन्हें दिला कर रही सभी से अधिक प्रतिष्ठा।
—जयभारत, पृ० ५१

३. जयभारत, अस्त्रलाभ सर्ग

४. कृष्णायन, पृ० २६०; म० ,द्रो० प०, १२, २१

५. एकलव्य, पृ० २३४

६. म०, आ० प०, १३१, ४८-४९

७. एकलव्य, पृ० २६६

दुर्बलता का अच्छा प्रकटीकरण है। यहाँ कवि ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को भी पार्थ के इस पापचिंतन के लिए प्रेरक बतलाया है।

आज्ञापालन अर्जुन मे जहाँ वीरत्व का अभिमान है वही विनीत आज्ञाकारिता भी है। अपने गुरुजनों की आज्ञा के पालन को वह आदर्श मानता है। धर्मनिष्ठ अग्रज की आज्ञा उसे विशेष रूप से मान्य है। महाभारत मे वह स्वय को भाइयो को तथा द्रौपदी को युधिष्ठिर की आज्ञा के अधीन बताता है।[1] आधुनिक काव्यो में भी अर्जुन का यह आज्ञापालन-भाव द्रष्टव्य है। युधिष्ठिर के द्यूतक्रीडा म राज्य-पाट, अनुज, पत्नी इत्यादि के हार जाने पर भीम क्रुद्ध होकर कुछ कहना चाहते हैं पर अर्जुन उन्हें रोक देता है और अग्रज की करनी को शिरोधार्य करने को कहता है।[2] वह सच्चे मन से आर्य युधिष्ठिर का अनुगत है।[3] धर्मानुपालन का महत्त्व उसने धर्मराज युधिष्ठिर से ही जाना है अत उसके लिए भी वह सजग है।[4] आधुनिक काव्यों का अर्जुन भी धर्मानुचरण के लिए सचेष्ट है और इसी का विचार करके वह बारह वर्ष के लिए भाइयों से वियुक्त हो कर वन को चल देता है।[5]

अस्त्र सचालन के साथ ही गुरु के प्रति अनुराग में भी पार्थ का स्थान बहुत उच्च है।[6] गगा के जल मे डूबते हुए द्रोण को बचाकर तथा द्रुपद

---

१ म०, आ० प०, १६०, ६

२ कहें भीम कुछ, तब तक अर्जुन बोले—"छले गये हैं आर्य,
पर माँ की अपनी सी हमको इनकी करनी भी स्वीकार्य।
—जयभारत, पृ० १४६

३. अर्जुन बोले—भले न समझे बुद्धि कभी,
मन से अनुगत सतत आर्य के अनुज सभी।
—जयभारत, पृ० १५६

४. न व्याजेन चरेद् धर्ममिति मे भवत श्रुतम्।
न सत्याद् विचलिष्यामि सत्येनायुधमालभे॥
—म०, आ० प०, २१३, ३४

५ बैठे बन दृष्टान्त हमारा कर्म में,
चल न पड़े छल-कपट हमीं से धर्म में।

६. "अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुन"
—म०, आ० प०, १३१, ६४

प्रतिशोध लेने के इच्छुक द्रोण के पास द्रुपद को लाकर वह अपनी गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय देता है।

मौलिकता

आलोच्य काव्यो में पार्थ को विविध परिस्थितियों मे ढालकर पार्थ के चिंतन की कई सरणियों को स्पष्ट किया गया है। कभी वह चिंतन की विशेष भूमिका पर एकलव्य के कौशल और उसकी साधना की सराहना करता है, कभी अपने अहकार की भर्त्सना और कभी चिन्तन की निम्न भूमिका पर एकलव्य को मार डालने तक की बात सोचता है। आलोच्य काव्यों मे अर्जुन के वीरत्व पर अविश्वास व्यक्त करते हुए उसे छलपूर्वक विजयी होते हुए भी बताया गया है।

द्रोण

राजगुरु द्रोण महाभारत के अप्रतिम वीरो म से हैं। वे धनुर्वेदाचार्य हैं और धनुर्वेद के अद्भुत ज्ञान के कारण ही राज-पुत्रो के आचार्य नियुक्त होते हैं। आधुनिक काव्यो में यद्यपि द्रोण को नायक रूप मे तो उपस्थित नही किया गया है, पर उनका बडा सशक्त व्यक्तित्व इन काव्यों मे अवतरित हुआ है।

कर्तव्यनिष्ठ वीरत्व

महाभारत मे द्रोण के चरित्र मे अपूर्व वीरत्व और अपूर्व कर्तव्यनिष्ठा का सयोग है। द्रोण हृदय से पाडवो के पक्षपाती हैं, उनके गुणों पर अनुरक्त हैं, पर सेवावृत्ति की सीमा मे आबद्ध होने के कारण महाभारत के युद्ध मे वे कौरवो की ओर से युद्ध मे प्रवृत्त होते हैं और प्राण-पण से युद्ध करते हैं। कर्तव्य की गुरुता से विवश गुरु द्रोण को धर्मपक्ष का साथ न देने का दु ख बडा कचोटता है। उनका यह भाव महाभारत मे दुर्योधन द्वारा बार-बार पाडव-प्रेमी होने का उपालम्भ दिये जाने पर बडी मार्मिकता से व्यक्त हुआ है —

> पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा
> द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥[1]

अर्थात् पाडव मेरे पुत्र के समान हैं और वे सदा धर्म का आचरण करते हैं। ससार मे मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है जो ब्राह्मण कहलाकर भी उनसे द्रोह कर सके।

---

१. म०, द्रो० प०, १५१, १८

आलोच्य काव्यों में भी अभिमन्यु के जघन्य वध के उपरान्त द्रोण का यह क्षोभ मानसिक द्वन्द्व के रूप में चित्रित किया गया है।[1] पर इस क्षोभ से द्रोण की कर्तव्यपरायणता में शिथिलता नहीं आती है। कौरवों के पक्ष में रहकर भी पाण्डव सेना का वे इतनी भीषणता से संहार करते हैं कि अन्त में युधिष्ठिर को अधर्म का आश्रय लेकर उन्हें युद्ध से विरत करना पड़ता है।

स्वाभिमान और प्रतिशोध

द्रोण में प्रतिशोध और स्वाभिमान का भाव विशेष रूप से देखा जा सकता है। द्रुपदराज को पकड़वा कर मँगवाने में उनकी प्रतिशोध की इच्छा ही रही है, राज्यलोभ नहीं। धर्मानुकूल दान लेने की इच्छा से अपने मित्र द्रुपद के पास गये द्रोण उसके द्वारा अपमानित होते हैं। आत्माभिमान पर लगी चोट को किसी प्रकार वे भुला नहीं पाते हैं। उनका रोम-रोम प्रतिशोध की ज्वाला से दग्ध होता है और वे द्रुपद से प्रतिशोध लेने की इच्छा से ही अर्जुन को अद्वितीय धनुर्वेद का ज्ञान प्रदान करते हैं।[2] महाभारत में भी वे द्रुपदराज को विशुद्ध प्रतिशोध की भावना से ही पकड़वाते हैं।[3]

ये तो हैं द्रोण के चरित्र के कुछ पारम्परिक पक्ष। आलोच्य काव्यों में

मौलिकता

द्रोण के चरित्र के कुछ पक्षों की पुनर्व्याख्या भी हुई है। महाभारत में एकलव्य के प्रसंग में द्रोण का चरित्र निन्द्य प्रतीत होता है। अर्जुन को अद्वितीय धनुर्धर बनाने की अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए द्रोण का एकलव्य से 'त्वयाङ्गुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति'[4] कह कर गुरुदक्षिणा के रूप में उसका दक्षिणांगुष्ठ

---

१. जयभारत, पृ० ३८५

२.
मेरे उर में सदैव एक कृत्या राक्षसी,
करती हुंकार रही 'शीघ्र प्रतिशोध ले—
इस अपमान का तू;' इस हुंकार ही ने
मुझ से कराया प्रण। केवल मैं पार्थ को
अद्वितीय धनुर्वेद दूँगा अल्पकाल में।
—एकलव्य, पृ० २२५

३. म०, आ० प०, १३७, ६४—६६

४. म०, आ० प०, १३१, ५६

माँग लेना ही द्रोण के चरित्र की महानता को हेय सिद्ध करने में पर्याप्त सिद्ध होता है। आधुनिक काल मे रामकुमार वर्मा ने इसको जाना और अपने एकलव्य काव्य में इस प्रसग को नया मोड देकर द्रोण के चरित्र पर लगे इस कालुष्य को घो दिया और बताया कि द्रोण एकलव्य से अ गुष्ठ की माँग नहीं करते हैं, वरन् एकलव्य परिस्थिति की गम्भीरता और गुरु की विवशता को जानकर स्वय ही उन्हे समर्पित करता है।[1] एकलव्य को अस्वीकृत करने में भी द्रोण दोषी नही हैं, दायी है उस समय की राजनीति, जिसने विशिष्ट व्यक्तियों को ही शिक्षा प्राप्ति का अधिकार दे रखा था।[2] महाभारत के द्रोण की तरह यहाँ एकलव्य के प्रति उनका उपेक्षाभाव चित्रित नही है। एकलव्य की स्मृति उनके अचेतन मस्तिष्क मे सदैव रहती है, वे स्वप्न मे भी उसी की साधना को देखते हैं। उन्हे एकलव्य को अस्वीकृत करने का बडा पश्चात्ताप है।[3] वे तो शिक्षा की त्रिवेणी को समस्त मानवों की कर्मभूमि मानते हैं।[4] इन्ही विचारों के साथ एकलव्य के स्वप्न सर्ग मे द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व का बडा मनोवैज्ञानिक चित्रण गया किया है।

भीम भीमसेन महाभारत के अलौकिक शक्तिसम्पन्न पात्र हैं। इन्हें अपनी शक्ति पर पर्याप्त अभिमान भी है। इसी वीरत्वाभिमान के कारण वे किसी भी परिस्थिति मे शत्रुओं का अपमान कर डालते हैं।[5] जहाँ अर्जुन अपने शस्त्र-कौशल से शत्रुओ को विजित करने मे समर्थ होते हैं, वहाँ भीम अपने अद्भुत बल से। जरासध, हिडिम्ब, दुर्योधन आदि के साथ द्वन्द्वयुद्ध मे उनकी यह शक्तिशालिता देखी जा सकती है।

द्रौपदी आधुनिक-काव्यों मे पतिव्रता द्रौपदी का चरित्र भी पारपरिक परिप्रेक्ष्य मे चित्रित हुआ है। कृष्णायन, जयभारत आदि काव्यों मे द्रौपदी के उत्कृष्ट पातिव्रत्य का चित्रण हुआ है। वह पाँचों पतियों के प्रति पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह

---

१. एकलव्य, पृ० २६४
२ एकलव्य, पृ० २२२
३ वही, पृ० २२२
४. वही पृ० २२३
५. कृष्णायन, पृ० १५१, म० भा० प०, १३६, ६

करती है। जयद्रथ,[1] कीचक[2] आदि के प्रसंग मे उसके दृढ़ पातिव्रत्य को देखा जा सकता है। स्वाभिमानी नारी के रूप में वह समय-समय पर शांतिप्रिय युधिष्ठिर तथा अन्य पांडवों को अपने कटु व्यंग्यात्मक वचनों से अन्याय का विरोध करने को उत्तेजित करती दीखती है। युधिष्ठिर के प्रति कहे गये उसके ये वाक्य किरातार्जुनीय से प्रभावित होने पर भी पर्याप्त प्रबोधक हैं :—

करत प्रवाहित नहिं सरित काहे ये धनु-बाण ?
शोभा हित धारत इन्हिं, सात्र धर्म-अपमान ?[3]

आधुनिक काल मे द्रौपदी के निष्कलंक चरित्र को विगर्हित रूप मे चित्रित करने का प्रयास विशेष श्लाघनीय प्रतीत नहीं होता। 'अंगराज' की द्रौपदी अर्जुन को पति रूप मे प्राप्त कर संतुष्ट नहीं है, वह पंचपतियों की प्रीति प्राप्त करने के लिए लालायित है, इसीलिए युधिष्ठिर की यह नीति उसे बड़ी प्रियकरी होती है कि पांडवगेह एक ही प्रणयिनी से सुखमय हो।[4] भीम के साथ मदिरा-पान कर वह राजसभा मे भ्रान्त होकर गिरे दुर्योधन का अपमान करती है।[5]

दशरथ

आलोच्य काव्यों मे प्रासंगिक रूप से दशरथ का चरित्र अवतरित हुआ है। यह चरित्र पूर्णतया परम्परा के परिपार्श्व मे ही चित्रित है। संस्कृत रामकाव्यों की परम्परा मे ही दशरथ को यहाँ भी आदर्श, सत्यनिष्ठ नृपति और पुत्र-वत्सल पिता के रूप मे चित्रित किया गया है। वाल्मीकि-रामायण के दशरथ के

---

१. जयभारत, पृ० २२६

२. वही, पृ २४५

३. कृष्णायन, पृ० २४६

४. किन्तु द्रौपदी को प्रियकर थी धर्मराज की नीति।
थी अभीष्ट उसको पंचामृत-तुल्य पंचतन प्रीति॥
—अङ्गराज, ६, ४०

५. भीम-सङ्ग मुखरा भामा ने करके मदिरा-पान।
भरी सभा में किया अकारण कुरुपति का अपमान॥
—वहीं, ६, ७१

समान ही वे प्रजा के हित में सलग्न वीर, धीर, धर्मवान् और ज्ञानीन्द्र नृपति हैं।[१]

पुत्रवत्सल

अपने पुत्रों के प्रति दशरथ का असीम प्रेम है। राम तो उनके जीवन स्वरूप ही हैं। उनका वियोग वे पलभर को भी नहीं सह सकते हैं।[२] यज्ञ की रक्षा के लिए राम को लेने के लिए आये विश्वामित्र के समक्ष भी वे अपना यह सत्य विचार प्रस्तुत करते हैं।[३] राम के राज्याभिषेक के अवसर पर एक ओर तो इस शुभ कार्य से वे प्रसन्न दिखायी देते हैं पर साथ ही उन्हें अपने पुत्र भरत का वहाँ न होना भी सालता है, विमारक प्रतीत होता है।[४] पुत्र राम के वन-गमन के उपरान्त उसका असह्य वियोग ही दशरथ के प्राण लेने के लिए पर्याप्त सिद्ध होता है।

सत्यनिष्ठा

दशरथ की सत्यनिष्ठा भी अप्रमेय है, सत्य ही उनके जीवन का प्राधेय है। सत्य की रक्षा के लिए वे राज्य, प्राण, परिवार सबका त्याग कर सकते हैं।[५] राम के वन-गमन के समय वे बड़े भारी मानसिक संघर्ष की स्थिति में हैं : एक ओर पुत्र-प्रेम है और दूसरी ओर सत्यनिष्ठा। दोनों के बीच आन्दोलित होते दशरथ को वात्सल्य प्रेरित करता है कि राम को वन जाने से रोक लिया जाये, पर उनकी सत्यनिष्ठा इसका विरोध करती है। उनकी स्थिति अर्द्धजीवित और

---

१. रामचरित चिन्तामणि, १, २६–२७; वा० रा, अ० का, ६, १–४

२. वा० रा०, अ० का० १६, ८–६

३ मैं बिना राम के स्वप्न में पल भर जी सकता नहीं।
इस हेतु रहेंगे वे जहाँ बना रहूँगा मै वहीं।।
—रामचरित चिन्तामणि, २, ३३

४. साकेत, पृ० ४१–४२

५. सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार,
राज्य ही नहीं, प्राण परिवार,
सत्य पर सकता हूँ, सब वार। —साकेत, पृ० ४७

अर्द्धमृत की सी है।[1] ऐसी स्थिति मे धर्मप्राण दशरथ राम को वन भेजकर अपनी सत्यनिष्ठा का परिचय देते हैं और पुत्र के वियोग में प्राण त्याग कर पुत्र प्रेम का। इस प्रकार आलोच्य काव्यों में दशरथ का चरित्र पूर्णतया परंपरा की रेखाओं से ही चित्रित है।

अन्य पात्र — इन पात्रो के अतिरिक्त दुःशासन, जयद्रथ, कुन्ती, गाधारी, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, भीष्म, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, नन्द, यशोदा, कौसल्या आदि कई अन्य अतिगौण पात्र भी आधुनिक काव्यों मे अपने पारम्परिक रूप में ही अवतरित हुए हैं।

इस प्रकार आलोच्य काव्यों के चरित्र-विधान को देखने से यह स्पष्ट है कि कवियो ने काव्य-पात्रो को परम्परा की रेखाओं से चित्रित करकेन ये रंगों से रंजित किया है, जिससे इनका व्यक्तित्व और अधिक सुरम्य और आह्लादक हो गया है। आधुनिक काव्यों के ये सजीव पात्र कवि के नवीन युग-बोध और युगदर्शन के वाहक बने हैं। नायक और नायिका के रूप में प्रतिष्ठित पात्रों के सम्बन्ध मे यह तथ्य उदग्र रूप से सामने आता है कि वे युग की समस्याओं के प्रति सचेत और सचेष्ट हैं। ये स्वस्थ और सबल पात्र आज के सांस्कृतिक विभ्रम की स्थिति में हमारे सास्कृतिक आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए नवमानवता के निर्माण की इच्छा से विश्वबन्धुत्व, आत्मोत्सर्ग और सर्वसुखवाद का स्वरघोष कर रहे हैं।

निष्कर्ष — इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि प्रायः सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण मोटे रूप में संस्कृत-परम्परा के अनुसार ही हुआ है। राम, लक्ष्मण, सीता, कृष्ण आदि सब संस्कृत के ढाँचे मे ही ढले हुए हैं। संस्कृत-साहित्य में रामकथाकारों ने कहीं भी यह दिखाने का प्रयत्न नहीं किया कि लक्ष्मण

---

[1]. वचन पलटें कि भेजें राम को वन में,
उभय विध मृत्यु निश्चित जानकर मन में,
हुए जीवन-मरण के मध्य धृत से वे,
रहे बस अर्द्धजीवित अर्द्धमृत से वे।
—साकेत, पृ० ५१

ने दशरथ की सेवा छोड़कर राम के साथ वनगमन क्यों स्वीकार किया? उन्होंने इस रहस्य को पाठकों के बोध के लिए छोड़ दिया। हिन्दी रामकथाकारों ने भी यही पद्धति अपनायी।

यह भी तथ्य है कि सभी संस्कृत-काव्यों में सभी पात्रों का चरित्र एक ही रूप में चित्रित नहीं हुआ है। कृतिकारों के दृष्टिकोण में विकास होता रहा है जो संस्कृत-काव्यों के चारित्रिक विकास में द्रष्टव्य है। यही परम्परा प्राधुनिक काव्यों में भी जीवित है। पुराने चरित्रों का युगानुरूप व्यक्तित्व इन काव्यों में है। पात्रों के चरित्रों को ये नये आयाम, कृतिकार की मौलिक कल्पना को उसी परम्परा से जोड़े हुए हैं। उर्मिला जैसे उपेक्षित पात्रों को प्राधुनिक काव्यों में न्यायपूर्ण स्थान देने की चेष्टा अपनी विशेषताएँ लिये हुए है।

इनके प्रतिरिक्त संस्कृत के खलनायकों को जहाँ नायक बनाया गया है, वहाँ अवश्य ही परम्परा की अवहेलना हुई है, जो किसी भी दृष्टि से स्तुत्य नहीं मानी जा सकती।

●●●●

वर्णन

५ | वर्णन

आलोच्य महाकाव्यों में प्रमुखतया तीन प्रकार के वर्णन मिलते हैं : वस्तु-वर्णन, रूप-वर्णन और चरित्र-वर्णन । प्रस्तुत प्रबन्ध में चरित्र-वर्णन की विवेचना पृथक अध्याय में की गयी है। यहाँ वस्तु-वर्णन एवं रूप-वर्णन का ही विवेचन अभिप्रेत रहा है। वस्तु-वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति-ऋतु-विषयक अनेक दृश्य एवं स्थितियों का वर्णन तो है ही, साथ ही ग्राम-नगर-शोभा का भी निरूपण है। रूप-वर्णन में पुरुष और नारी सौन्दर्य का निरूपण है। इसके लिए आलोच्य कृतियों के रचयिताओं ने जिन उपकरणों का उपयोग किया है उनमें से अधिकांश परम्परागत हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपमान उपमेय को पाठक के बहुत निकट ला देते हैं, किन्तु जाने पहचाने उपमानों में अर्थ-बोध को सुगम बनाने की जो क्षमता होती है वह नव्यतम उपमानों में कभी-कभी नहीं होती। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आलोच्य कृतिकारों में नवीनता का लोभ बना रहा है, किन्तु परम्परा ने उनको एकदम मुक्त नहीं कर दिया है।

रूप-वर्णन के अन्तर्गत पुरुष-नारी के बाह्य सौन्दर्य का ही वर्णन हुआ है तथा वस्तु-वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति, ऋतु आदि के साथ-साथ आश्रम, नगर आवास, युद्ध, उत्सव, मृगया, जल-क्रीड़ा आदि के प्रसंग भी वर्णित मिलते हैं और इन पर संस्कृत साहित्य का प्रभूत प्रभाव मिलता है। इस संदर्भ में यह बात भी स्मरणीय है कि आलोच्य महाकाव्यों ने संस्कृत साहित्य के प्रभाव को कहीं प्रत्यक्ष रूप में ग्रहण किया है और कहीं अप्रत्यक्ष रूप में। दूसरा प्रभाव-रूप केवल वहाँ मिलता है जहाँ हमारे कवियों ने वर्णन की सामान्य प्रवृत्तियों का अनुकरण किया है और पहला प्रभाव-रूप केवल वहाँ देखा जा सकता है जहाँ वर्णन में या तो भाव-छाया है अथवा अनुवाद की प्रवृत्ति ने प्रखर या मंद रूप में कार्य किया है।

संस्कृत साहित्य में स्त्रियों का नख-शिख वर्णन करने की बड़ी पुष्ट परंपरा रही है। ये वर्णन इतने सुन्दर और आकर्षक रहे हैं कि इनसे प्रेरित होकर आगे के कवि भी बड़े उत्साह से नायिकाओं के नख-शिख-सौन्दर्य का वर्णन करते रहे हैं। हिन्दी साहित्य में भी यह परम्परा बड़ी समृद्ध दिखलायी देती है, विशेष रूप से रीति-कालीन कवियों ने तो नख-शिख वर्णन में बड़ी रुचि दिखलायी है और विभिन्न नायिकाओं के सौन्दर्य के अतिरंजनापूर्ण वर्णन प्रस्तुत किये हैं। आधुनिक काल में यद्यपि मुक्तक काव्यों में यह परम्परा लुप्तप्राय है, पर प्रबन्ध काव्यों में अब भी यह अपने परम्परागत रूप में उपलब्ध है। आलोच्य काल में कई महाकाव्यों में तो नायिकाओं के रूप-वर्णन को देखने से यह प्रतीत होता है कि रचयिताओं ने नख-शिख-वर्णन की परम्परा के अनुपालन के रूप में ही इन वर्णनों को स्थान दिया है, जैसे—वर्द्धमान में त्रिशला का नख-शिख-वर्णन,[1] पार्वती में पार्वती का का नख-शिख-वर्णन,[2] नलनरेश[3] और दमयन्ती[4] काव्यों में दमयन्ती का नख-शिख-वर्णन, मीरां महाकाव्य में मीरा का नख-शिख-वर्णन,[5] साकेत-सन्त में माडवी का नख-शिख-वर्णन।[6] अन्य काव्यों में भी नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन के प्रसंग हैं पर ये प्रसंग कथाप्रवाह में पात्र विशेष का परिचय देने के लिए बड़ी संक्षिप्तता से आये हैं जैसे कामायनी में श्रद्धा-रूप-वर्णन,[7] सिद्धार्थ में यशोधरा-रूप वर्णन,[8] दैत्यवंश में उषा-रूप-वर्णन,[9] साकेत में

स्त्री-रूप वर्णन

---

१. वर्द्धमान, १, ५५-१३४
२. पार्वती, पृ० ५६-६२
३. नल नरेश, ७, १७-५२
४. दमयन्ती, पृ० ६-१०
५. मीरां महाकाव्य, पृ० ७७-८०
६. साकेत-सन्त, १, २६-३६
७. कामायनी, पृ० ४६-४८
८. सिद्धार्थ, पृ० ६१-६२
९. दैत्यवंश, १३, २६-३८

सीता[1] और उर्मिला का रूप-वर्णन,[2] 'प्रियप्रवास' मे राधा का रूप वर्णन[3] तथा 'रावण' मे कैकसी का रूप-वर्णन।[4]

स्त्री-रूप-वर्णन के इन सभी प्रसगो पर सस्कृत-साहित्य का प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। यह प्रभाव संस्कृत के किसी ग्रन्थ-विशेष का न होकर सस्कृत के नख-शिख-वर्णनों की कुछ सामान्य प्रवृत्तियों का है। रूप-वर्णन के प्रमुख आधार हैं उपमान तथा सौन्दर्य-सम्बन्धी विशेष मानदण्ड। आलोच्य काव्यो में नायिकाओं के विभिन्न अगो का वर्णन प्रमुखत. उन्हीं उपमानो की सहायता से किया गया है जिनका सस्कृत काव्य-ग्रन्थो मे बाहुल्य रहा है तथा सस्कृत काव्य-शास्त्रियों ने जिनका निर्देश किया है। इसके साथ ही इनके सौन्दर्य सम्बन्धी मानदण्ड भी प्राचीन ही रहे हैं। सस्कृत काव्यशास्त्रियो ने विभिन्न अगो के वर्णन के लिए जिन विशेषताओ का चित्रित करना निर्दिष्ट किया है, उनका भी इन कवियो को स्मरण रहा है।

यहाँ हम देखने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार आलोच्य काव्यो के रूप-वर्णन मे परम्परागत तत्त्वो का समावेश हुआ है। सपूर्ण स्त्री-देह को हम स्थूल रूप से तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं —कठोपरि भाग, मध्य भाग और कट्यधो भाग। कठोपरि भाग के मुख्य वर्णनीय अवयव हैं—मुख, केश, भाल, नेत्र, भ्रू, नासा, अधर, दन्त, ग्रीवा। मध्यभाग के प्रमुख अवयव हैं—बाहु, कर, नख, वक्षस्थल, नाभि, त्रिवली, रोमाली, कटि। कट्यधो भाग के प्रमुख वर्ण्य जघा, नितब, उरु, चरण, नख, नूपुरध्वनि, गमन इत्यादि हैं।

आचार्य गोवर्धन के अनुसार स्त्री-देह मे सौन्दर्य, मृदुता, कृशता, कोमलता, काति, उज्ज्वलता, सुकुमारता आदि का वर्णन होना चाहिये।[5]

देह एवं वर्ण

स्त्रियो को सामान्य रूप से गौरवर्णा ही चित्रित किया जाता है, इसलिए उनकी कातिमान गौर देह के लिए चन्द्रकला, अम्बुजदाम, शिरीषमाला, विद्युल्लता, तारा, कनकलता, दमनकयष्टि, काचनयष्टि, दीपशिखा आदि उपमानों का प्रयोग

१. साकेत, पृ० २०३, २०४
२. वही, पृ० १०-११
३. प्रियप्रवास, ४, ४-७
४. रावण, सर्ग, १
५. अलकारशेखर, पृ० ४६

किया जाता है।[१] स्वर्ण, विद्युत, हरिद्रा, वराटक, चम्पा, केतक आदि की सहायता से नायिका की देहद्युति वर्णित की जाती है।[२]

आलोच्य काव्यों की सभी नायिकाओं में सौन्दर्य, सौकुमार्य, मार्दव, औज्ज्वल्य आदि गुणों को देखा जा सकता है। ये सभी गौरवर्ण की हैं तथा इनके सौन्दर्यांकन में परंपरागत उपमानों का विनिवेश हुआ है। इन नायिकाओं में राधा की तन-द्युति सोने सी कमनीय है,[३] सीता की देह का वर्ण केतकी-पुष्प के समान है,[४] दमयंती का वर्ण स्वर्ण को भी लज्जित कर रहा है,[५] श्रद्धा के नील परिधान के बीच से चमकते अंग विद्युत के फूल के समान दीखते हैं,[६] पार्वती के अंगों से शरद्कालीन घनों के समान शुचि ज्योत्स्ना की आभा फैल रही है,[७] मीरां को मानो विधि ने चन्द्रमा को चीर कर बनाया है,[८] त्रिशला तडिल्लता और तारिका के समान कांतिमयी है।[९]

केश स्त्री के मुख-मण्डल के सौन्दर्य-विवर्धक हैं। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार केश चिकने, नीले, मृदु एवं कुंचित होने चाहियें।[१०] गोवर्धनाचार्य ने

---

१. वही, ३१, १
२. वही, ३१, २
३. सोने सी कमनीय–कान्ति तन की थी दृष्टि–उन्मेषिनी
—प्रियप्रवास ४, ५
४. तनु गौर केतकी–कुसुम–कली का गाभा,
—साकेत, पृ० २०४
५. वर्ण लज्जित कर रहा है स्वर्ण को
—दमयन्ती, पृ० ६
६. नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अङ्ग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।
—कामायनी, पृ० ४६
७. फूट रही थी शरद-घनों से शुचि ज्योत्सना की आभा,
—पार्वती, पृ० ५६
८. चन्द्रमा को चीर कर विधि ने बनाया गात,
—मीरां, पृ० ७७
९. तडिल्लता थी त्रिशला कि तारिका
—वर्द्धमान, १, ११६
१०. बृहत्संहिता, ७०, ६

केश

भी केशों की दीर्घता, कुटिलता, मृदुता, निविडता, नीलता को काव्य मे वर्णनीय बतलाया है।[1] इन गुणो को व्यंजित करने के लिए कवि तम, शैवाल, पायोद, बर्ह, भ्रमर, चामर, यमुना-वीचि, नीलमणि, नीलकमल, आकाश आदि उपमानो का प्रयोग करते रहे हैं।[2]

आलोच्य काव्यो में भी नायिका के केश-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उक्त गुणो और उपमानों का ही उल्लेख हुआ है। 'नलनरेश' की दमयन्ती के केशो मे श्यामलता, कुटिलता, कांति, सुचिक्कणता आदि सभी गुणो का समाहार है।[3] अन्यत्र भी तमी, भ्रमरावली, सर-तरग, कज्जल, नीलम-मणि आदि उपमानो से केशो के कृष्णवर्ण और कु चित होने का आभास है।[4] प्रसाद ने 'बिखरी अलकें ज्यो तर्क-जाल'[5] कहकर तर्कजाल की सहायता से केशों से कु चित होने का सकेत तो दिया ही है, साथ ही उनका कृष्ण होना भी व्यंजित किया है।

ललाट

स्त्रियो का लोमरहित, अर्द्धचन्द्राकार, स्पष्ट, स्वस्तिक चिह्नयुक्त ललाट सौभाग्य का लक्षण माना जाता है।[6] गोवर्धन ने भी ललाट मे स्वच्छता का गुण वर्णनीय बतलाया है।[7] इसके लिये अर्द्धचन्द्र और हेमपट्टिका जैसे उपमानों का प्रयोग होता है।[8] आधुनिक काल मे भी उर्मिला के ललाट के सौन्दर्य

---

१. अलंकारशेखर, पृ० ४६

२. वही, १३, ३

३. दमयन्ती के सुभग शीश से श्यामल, कु चित, कांति-निधान—
अलकावलियाँ लटक-लटक कर लगती थीं ऐसी छवि खान—
मानों मुख पूर्णेन्दु-भीति से होकर के तम भीत महान—
कटि से नीचे उतर रहा था कहीं बचाने अपने प्राण।
—नलनरेश, ७, २६

४. मीरां, पृ० ७७; वर्द्धमान १, ६८; १, ७८; नलनरेश, ४, ४८

५. कामायनी, पृ० १६८

६. सामुद्रिक तिलक (स० शास्त्री हिम्मतराम) ४, १७६-८०

७. अलंकारशेखर, पृ० ४६

८. वही, १३, ३, १४, ४

किया जाता है।[1] स्वर्ण, विद्युत, हरिद्रा, करारव, चम्पा, केतक आदि की सहायता से नायिका की देहद्युति वर्णित की जाती है।[2]

आलोच्य काव्यों की सभी नायिकाओं में सौन्दर्य, सौकुमार्य, मार्दव, औज्ज्वल्य आदि गुणों को देखा जा सकता है। ये सभी गौरवर्णा की हैं तथा इनके सौन्दर्यांकन में परंपरागत उपमानों का विनिवेश हुआ है। इन नायिकाओं में राधा की तन-द्युति सोने सी कमनीय है,[3] सीता की देह का वर्ण केतकी-पुष्प के समान है,[4] दमयंती का वर्ण स्वर्ण को भी लज्जित कर रहा है,[5] श्रद्धा के नील परिधान के बीच से चमकते अंग विद्युत के फूल के समान दीखते हैं,[6] पार्वती के अंगों से शरदकालीन घनों के समान शुचि ज्योत्स्ना की आभा फैल रही है,[7] मीरां को मानो विधि ने चन्द्रमा को चोर कर बनाया है,[8] त्रिशला तडिल्लता और तारिका के समान कांतिमयी है।[9]

केश स्त्री के मुख-मण्डल के सौन्दर्य-विवर्धक हैं। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार केश चिकने, नीले, मृदु एवं कुंचित होने चाहियें।[10] गोवर्धनाचार्य ने

---

१. वही, ३१, १

२ वही, ३१, २

३ सोने सी कमनीय-कान्ति तन की थी दृष्टि-उन्मेषिनी
—प्रियप्रवास ४, ५

४. तनु गौर केतकी-कुसुम-कली का गाभा,
—साकेत, पृ० २०४

५. वर्ण लज्जित कर रहा है स्वर्ण को
—दमयन्ती, पृ० ६

६. नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अङ्ग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।
—कामायनी, पृ० ४६

७ फूट रही थी शरद-घनों से शुचि ज्योत्सना की आभा,
—पार्वती, पृ० ५६

८. चन्द्रमा को चोर कर विधि ने बनाया गात,
—मीरां, पृ० ७७

९. तडिल्लता थी त्रिशला कि तारिका
—वर्द्धमान, १, ११६

१०. वृहत्संहिता, ७०, ६

केश

भी केशों की दीर्घता, कुटिलता, मृदुता, निविडता, नीलता को काव्य मे वर्णनीय बतलाया है।[1] इन गुणो को व्यंजित करने के लिए कवि तम, शैवाल, पाथोद, बर्ह, भ्रमर, चामर, यमुना-वीचि, नीलमणि, नीलकमल, आकाश आदि उपमानो का प्रयोग करते रहे हैं।[2]

आलोच्य काव्यों में भी नायिका के केश-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उक्त गुणों और उपमानों का ही उल्लेख हुआ है। 'नलनरेश' की दमयन्ती के केशो मे श्यामलता, कुटिलता, कांति, सुचिक्कणता आदि सभी गुणो का समाहार है।[3] अन्यत्र भी तमी, भ्रमरावली, सर-तरग, कज्जल, नीलम-मणि आदि उपमानो से केशो के कृष्णवर्ण और कुंचित होने का आभास है।[4] प्रसाद ने 'बिखरी अलकें ज्यो तर्क-जाल'[5] कहकर तर्कजाल की सहायता से केशों से कुंचित होने का सकेत तो दिया ही है, साथ ही उनका कृष्ण होना भी व्यंजित किया है।

स्त्रियों का लोमरहित, अर्द्धचन्द्राकार, स्पष्ट, स्वस्तिक चिह्नयुक्त ललाट सौभाग्य का लक्षण माना जाता है।[6] गोवर्धन ने भी ललाट मे स्वच्छता का गुण वर्णनीय बतलाया है।[7] इसके लिये अर्द्धचन्द्र और हेमपट्टिका जैसे उपमानों का प्रयोग होता है।[8] आधुनिक काल मे भी उर्मिला के ललाट के सौन्दर्य

ललाट

---

१. अलंकारशेखर, पृ० ४६
२. वही, १३, ३
३. दमयन्ती के सुभग शीश से श्यामल, कुंचित, कांति-निधान—
अलकावलियां लटक-लटक कर लगती थीं ऐसी छवि खान—
मानो मुख पूर्णेन्दु-भीति से होकर के तम भीत महान—
कटि से नीचे उतर रहा था कहीं बचाने अपने प्राण।
—नलनरेश, ७, २६
४. मीरां, पृ० ७७, वर्द्धमान १, ६८; १, ७८, नलनरेश, ४, ४८
५. कामायनी, पृ० १६८
६ सामुद्रिक तिलक (स० शास्त्री हिम्मतराम) ४, १७६-८०
७. अलंकारशेखर, पृ० ४६
८. वही, १३, ३, १४, ४

को अंकित करने के लिये उसे अर्द्धचन्द्राकार बतलाया गया है।[१] इसी प्रकार दमयन्ती का भाल भी मेघाच्छन्न अर्द्धविधु की शोभा से संयुक्त है।[२] दमयन्ती के भाल के लोमरहित, स्पष्ट, कांतिमय होने का उल्लेख भी स्वर्णपट्टिका कहकर किया गया है।[३]

कपोल

काव्य मे कपोलों की स्वच्छता का भी वर्णन होना चाहिये।[४] कपोलो की स्वच्छता और सुन्दरता को चन्द्र, दर्पण आदि उपमानो से वर्णित किया जाता है।[५] आधुनिक काव्यों मे भी कपोलो की स्वच्छता और कांति का बड़े सांकेतिक ढंग से चित्रित किया गया है। दमयन्ती के कपोलो की कांति और शुभ्रता को कवि यह कहकर व्यक्त करता है कि उनमे कर्णाभूषणों का प्रतिबिम्ब प्रतिबिंबित हो रहा है।[६] 'कामायनी' मे देवांगनाओ के कपोल इतने सुचिक्कण हैं कि उन पर से प्रसाधन हेतु लगाया कल्पवृक्ष का पराग भी फिसलता है।[७] त्रिशला के कपोलो की रचना तो मानो विधि ने चन्द्र को द्विधा करके की है।[८]

नेत्र

नेत्रो की स्निग्धता, विशालता, चंचलता, अपांगों की दीर्घता, नीलिमा, प्रान्त भाग की लालिमा, श्वेतता, पक्ष्म या बरौनियों की निविडता भी नख-शिख-वर्णन मे उल्लेख्य है।[९] नेत्रो के आकार, वर्ण, व्यापार आदि को चित्रित करने के लिए मृग-नेत्र, कमल, कमल-पत्र, मछली, खंजन, चकोर, चकोर-नेत्र,

---

१. चूमता था भूमितल को अर्धविधु सा भाल
—साकेत, पृ० २५

२. कुछ कुछ गोलाकार कचों से ढका हुआ था भूषित भाल।
श्यामल मेघाच्छन्न अर्द्धविधु-सदृश था जो कुछ काल।
—नलनरेश, ७, २४

३. सुन्दर स्वर्ण पट्टिका पर था लिखा हुआ था महा विचित्र,
कामदेव के करकमलो से जन मन मोहन-मन्त्र-पवित्र।
—नलनरेश, ७, २४

४. अलंकारशेखर, पृ० ४६
५. वही पृ० १३ ५
६. नलनरेश, ७, ३२
७. कामायनी, पृ० ११
८. वर्द्धमान १, ११२
९. अलंकारशेखर, पृ० ४६

केतक, अलि, कामदेव, कामबाण आदि उपमानों का प्रयोग संस्कृत कवियों द्वारा किया जाता रहा है।[1] आलोच्य काव्यों में भी मीन, मृग, खंजन, केतक, अलि, चकोर, कमल आदि[2] उपमानों के द्वारा उपयुक्त प्रभाव की सृष्टि तो की ही गयी है साथ ही नेत्रों के कर्णायत और त्रिवर्णीय होने का वर्णन भी किया गया है। 'पार्वती' काव्य में पार्वती के नेत्रों की स्निग्धता, नीलिमा, श्वेतता तथा प्रान्तभाग की लालिमा को कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से ऊषा, प्रभा और राका कहकर चित्रित किया है :—

सरल प्रसन्न प्रभा से दीपित उसके स्निग्ध नयन में,
आदि उषा औ अन्त्य प्रभा युत राका स्वच्छ गगन में।[3]

इसी प्रकार 'वर्द्धमान' में त्रिशला की दृष्टि को कर्णायत चंचल तथा कृष्णार्जुन वर्णों से प्रसक्त बतलाकर संस्कृत आचार्यों के निर्देश का अनुपालन किया गया है :—

सु-दृष्टि कृष्णार्जुन से प्रसक्त है,
तथापि जाती यह कर्ण-पास हो,
प्रिये ! नहीं विश्वसनीय बात है,
विलोचनों की चल चित्त-बेधिनी।[4]

नासिका

सामुद्रिक शास्त्रानुसार न अधिक बड़ी और न अधिक फैली हुयी नासिका उत्तम होती है।[5] नासिका के दोनों पुटों की समानता भी सौन्दर्य का चिह्न है।[6] इस सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए नासिका को तिलप्रसून से उपमित किया जाता है।[7] शुकचञ्चु और पाटलीपुष्प से भी नासिका की सुन्दरता को अभि-

१. वही, १३, ६
२. वर्द्धमान, १, ६२; १, ६०; १, ७६; मललरेखा, ७, २८
३. पार्वती, पृ० ६०
४. वर्द्धमान, २, ३३
५. सामुद्रिक शास्त्र (स० शास्त्री हिम्मतराम), स्त्री लक्षणाधिकार, श्लोक ५४
६. बृहत्संहिता, ७०, ७
७. अलंकारशेखर, १३, ५

व्यक्त किया जाता है ।[१] इसके साथ ही निश्वास के सुरभित होने का भी वर्णन नख-शिख के प्रसंग में होना चाहिये ।[२]

आलोच्य काव्यों में नायिकाओं के नासिका-सौन्दर्य का वर्णन इन्हीं परम्परागत उपमानों के द्वारा किया गया है । शुक-नासिका और तिलप्रसून उपमानों का प्रयोग ही विशेष रूप से देखा जा सकता है ।[३] निश्वास के सुगन्धित होने का वर्णन भी कहीं-कहीं हुआ है ।[४]

अधरों में मधुरता, उच्छूनता, रक्तिमा आदि गुण होने चाहियें ।[५] इन गुणों को प्रवाल, बिंब, बन्धूक, पल्लव तथा मधुर वस्तुओं[६] के द्वारा बड़ी सरलता से अभिव्यक्त किया जाता रहा है । हमारे विवेच्य काव्यों में भी इन्हीं प्रचलित, परम्परागत उपमानों से ही अधरों का वर्णन किया गया है । 'पार्वती' काव्य में पार्वती के अधरों की रक्तिमा और मधुरता का बोध कराने के लिए कवि ने ऊषाकालीन लालिमा से उनका साम्य प्रदर्शित किया है ।[५] अन्यत्र नायिका के अधरों की अरुणता बिम्बा, विद्रुम एवं किसलय इत्यादि की रक्तिमा को भी आक्रान्त कर गई है ।[६]

अधरोष्ठ

---

१. वही, १४, १६ २. वही, पृ० ४६

२ कीर-नासिका, तिल-प्रसून का पा जो कीर्तिसमूह महान,
उसकी बनी नासिका भैमी रुचिर-नासिका शोभा-खान ।
नलनरेश, ७, ३१

३ सुवासित श्वास-समीर से किया,
उसे रचा था मधु-शिल्पकार ने ।
—सिद्धार्थ पृ० ८०

इन्द्र के नन्दन विपिन की सुरभियों सा श्वास
—मीरां, पृ० ७७

४. अलंकारशेखर, पृ० ४६ ६ अलंकारशेखर, १३, ७

५. अरुणिम अधरों के स्पन्दन में आदि ऊषा सी खिलती,
शारदीय ज्योत्सना की निर्मल आभा स्मिति में मिलती ।
—पार्वती, पृ० ६०

६. "बिम्बा विद्रुम को आक्रान्त करती रक्तता ओष्ठ की"
— प्रियप्रवास, ४, ७

"किसलय-कोमल सकल कुँभिलान लागे,
विद्रुम लजाने, बिम्ब डारनि सुखाने हैं ।"
—रावण, १, ३८

भुजा, कर

भुजा मे मृदुता और समता तथा कर मे अतिमृदुता, शीतलता और शोणता आदि गुणों का वर्णन किया जाना चाहिये।[1] भुजाओं के लिए कमल, विद्युत्वल्ली, मृणाल तथा करों के लिए पद्म, पलाश विद्रुम आदि उपमान उपयुक्त प्रभाव की सृष्टि करने मे समर्थ हैं।[2] आधुनिक महाकाव्यो मे भुजाओ की सुकुमारता मृणाल द्वारा तथा करो की मृदुता एव रक्तिमता उत्पल के द्वारा चित्रित की गई है। पार्वती की भुजाएँ मृणाल की सी मृदुता लिए हैं जिन पर कोमल कर कमलवत् शोभित हैं।[3] दमयन्ती के कर लालिमा और मृदुलता लिये हुए हैं और कमलवत् प्रतीत होते हैं।[4]

स्तन

स्त्री के आंगिक सौन्दर्य के वर्णन मे स्तनो की श्यामाग्रता, औन्नत्य, विस्तार, दृढता, पाडुता इत्यादि वर्णनीय है।[5] इन गुणो के उल्लेख के लिए पूग, कमल, कमल-कोरक, बिल्व, कुम्भस्थल, अद्रि, घट, शिव, चक्रवाक आदि उपमान काव्यो मे देखे जा सकते हैं।[6] विवेच्य काव्यो मे वक्षस्थल के वर्णन में भी कवियो ने सस्कृताचार्यों के निर्देश का पालन किया है। दमयन्ती के वक्ष की स्थूलता का वर्णन करते हुए आधुनिक कवि कहता है —

> भाग कटि का, वक्ष मे है ले लिया,
> या सुकटि ने अधिक दान स्वय दिया।[7]

---

१. अलकारशेखर, पृ० ४६

२. वही, १३, ६

३. मृदु मृणाल-सी युग बाहों पर शोभित युग उत्पल से,
पाँए, विश्व-शिशु को अभयंकर वर जीवन के फल से।
—पार्वती

४. लाल-लाल मृदु कर—कमलों में शोभित थी वह वर माला,
जिससे अतिकोमल करतल में प्रगट हो गया था छाला।
—नलनरेश, ७, ४४

५. अलंकारशेखर, पृ० ४६

६. वही, १३, १०

७ दमयन्ती, पृ० १०

श्रीफल और स्वर्णकुम्भ से इनका साम्य प्रदर्शित करते हुए वक्षस्थल की कठोरता और पीतिमा का भी उल्लेख किया गया है।[1] कहीं-कहीं स्तनों के काठिन्य को कूर्म-कुल के काठिन्य से भी उपमित किया है।[2] स्तनों की श्यामाग्रता का वर्णन भी आलोच्य काव्यों में देखा जा सकता है।[3]

कटि

कटि की कृशता और सूक्ष्मता भी सौन्दर्य का चिह्न मानी जाती रही है। कटि की सूक्ष्मता के चित्रण में संस्कृत कवियों ने बड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया है। ये कवि सूच्य-ग्रतल, शून्य, सिंह कटि, मुष्टिग्राह्य[4] आदि कहकर कटि प्रदेश की कृशता का वर्णन करते रहे हैं।

आधुनिक महाकाव्यकारों ने भी नायिकाओं की कटि की कृशता को चित्रित करने के लिए अतिरंजना से काम लिया है। नलनरेशकार तो दमयन्ती

---

१. कुच-द्वय-श्रीफल-भग-कारिणी,
नृपाल-पत्नी इस भाँति राजती,
सुधा समापूरित स्वर्ण-कुम्भ से,
अनङ्ग का जो अभिषेक साजती।
—वर्द्धमान, १, ७५

२. स्तन छलकते से सुधा के कुम्भ की झंकार,
विश्वभर के कामनों के सुमन-रस-आधार,
जलधरों के प्राण, यौवन-पूर्ण के संकेत,
कूर्म-कुल काठिन्य, सजीवन-जड़ी के खेत।
—मीरां, पृ० ७८

३. अग्रभाग रसाल-दल पर हो ज्यों मधुर गुंजार,
तुंग टीलों पर करें कृष्ण हरिण विहार।
—मीरां पृ० ७९

४. अलकारशेखर, १३, १२

की कटि को परब्रह्म के समान सूक्ष्म चित्रित करते हैं।[1] त्रिशला की कटि इतनी क्षीण है कि ईक्षणभार से ही उसके गिरने का डर है।[2]

चाहे परम्परानुवर्तन के रूप में ही सही नाभि, रोमाली तथा त्रिवली के सौन्दर्य-वर्णन के महत्त्व को भी ये कवि नहीं भुला सके हैं। संस्कृत काव्यों में नाभि की गम्भीरता, विस्तीर्णता और दक्षिणावर्त होना वर्णित रहा है और रसातल, आवर्त, ह्रद, कूप, नव आदि उपमानों की सहायता से इन गुणों के प्रभाव की व्यंजना की जाती रही है।[3] नाभि पर की रोमाली के मार्दव, सौक्ष्म्य, श्यामता और नाभिगमनीयता को भी आचार्यों ने वर्णनीय बतलाया है।[4] आलोच्य काव्यकारों ने नाभि और रोमाली के इस वर्णनीय सौन्दर्य को बड़ी सचेष्टता से चित्रित किया है। ये वर्णन इस प्रकार देखे जा सकते हैं :–

नाभि, रोमाली त्रिवली

'थी गम्भीर नाभि यौवन की धारा मध्य भ्रमर-सी,
डूबी जिसमें त्रिनयन की चल तरणि मुग्ध शंकर की।'[5]

'पीपल-दल-सम रुचिर उदर पर नाभि भ्रमर था अति गम्भीर,
लघु रोमावलि से शोभित था वह वर-वस्त्राच्छन्न अधीर।'[6]

---

१. परब्रह्म-सम-सूक्ष्म-मध्य की सत्ता को समझाने को–
थी वह बस अनुमान लगाती, 'कटि' है यह समझाने को।
—नलनरेश, ७, ४३

२. नृपेन्द्र ने कामिनी मध्य देश को,
विलोकते ही निज दृष्टि दूर की।
गिरे नहीं ईक्षण भार से कहीं,
सु-मध्य में संस्थित अस्ति-नास्ति के।
—वर्द्धमान १, ६८

३. अलंकारशेखर, १३, ११

४ अलंकारशेखर, पृ० ४६

५. पार्वती, पृ० ५६

६ नलनरेश, ४, ४५

प्रविष्ट हो श्यामल रोमवल्लरी
विराजती थी तट नाभि-रन्ध्र के,
कि मेखला की मणि से विताडिता
असेत लेखा तप की प्रकाशी ।[1]

उक्त उद्धरणों मे नाभि की गम्भीरता और दक्षिणावर्तता तथा रोमाली की श्यामता, लघुता और नाभिगमनीयता स्पष्टतया उल्लिखित है ।

त्रिवली

उदर पर पड़ने वाली त्रिवली स्त्री के सौन्दर्य की वर्धक तो है ही साथ ही उसके सौभाग्य की सूचक भी है ।[2] इसके वर्णन के लिए नदी, सोपान आदि उपमान संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त होते रहे हैं । आलोच्य काव्यों मे त्रिवली का वर्णन नख-शिख-परम्परा के निर्वाह के रूप मे हुआ है, जहाँ इसे सोपान और त्रिपथगा के समान बताया गया है —

"अति मन मोहन त्रिवली मानो थीं सोपानें शोभा-खान,
जिससे बशंक-मन चढ़ करके हो जाता था निमग्न ।"[3]
"स्तन शिखरों से उतर उदर पर बहती यौवन गंगा,
पुण्य त्रिपथगा-सी त्रिवली में चंचल तरल तरंगा ।"[4]

नितंब एवं उरु

नितंबों की स्थूलता और मांसलता को तथा उरुओं के रोमराहित्य एवं सुडौलता को सौन्दर्योत्पादक जानकर संस्कृत कवि नितंबों के लिये पीठ प्रस्तर, पृथ्वी चक्र इत्यादि तथा ऊरु के लिए हाथी की सूंड, कदली स्तंभ, करभ इत्यादि उपमानों का प्रयोग करते रहे हैं ।[5] आधुनिक काव्यों मे भी जहाँ परंपरागत सौन्दर्य-मान के रूप मे स्तनों की सुपुष्टता और कटि की क्षीणता को चित्रित किया गया है वहीं नितंबों की पीनता और मांसलता भी चित्रित है । इन काव्यों में नायिकाओं को स्थूल-नितंबिनी तो बतलाया ही गया है साथ ही इनकी स्थूलता के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए परंपरागत उपमानों को ही अवतरित किया

---

१. वर्द्धमान, १, ८६
२. बृहद्संहिता, ७०
३. नल-नरेश, ४, ४५
४. पार्वती, पृ० ५६
५. अलंकारशेखर, १३, १३

गया है। 'वर्द्धमान'[१] की त्रिशला और 'नलनरेश'[२] की दमयन्ती के सुपीन नितंब शिला-युगल और काम-विनिर्मित चक्र-द्वय के प्रभाव की सृष्टि कर रहे हैं।

सुनितंबिनी होने के साथ ही साथ ये नायिकाएँ वरोरु भी हैं। 'पार्वती' की उरुओं की सुडौलता, सुन्दरता और कांति तो कदली और नाग को भी अपने समक्ष लज्जित कर रही है।[३] यही स्थिति दमयन्ती के उरुओं की है। वे भी शोभा, सुपुष्टता और सुचिक्कणता से रंभा, इन्द्रगज और कामतूणीर को भी विनिन्दित कर रहे हैं।[४]

चरण, गमन एवं नूपुरध्वनि

उक्त प्रमुख अंगों के वर्णनों के अतिरिक्त नायिकाओं के चरणों की लालिमा[५], उनकी गजवत्[६] एवं मरालवत्[७] मंथर चाल, हंस शब्द सी मनोहर नूपुर ध्वनि[८] का वर्णन भी परंपरा के अनुपालन रूप में हुआ है।

---

१. नितंब को देख नृपाल-चित्त में
अनूप ऐसी कुछ तर्कना उठी
लसी शिलाएँ युग चन्द्र-कान्त की
कि मंजु चक्र द्वय हों मनोज के।
—वर्द्धमान, १, ९४

२. वेष्टित युगल-नितंब-बिंब थे कनक-चक्र आकार सुपीन।
मानो वे थे काम-विनिर्मित चक्रवाक दो अचल नवीन।
—नलनरेश ७, ४८

३. कम्पित कदली और नाग कर नित निषेध सा करते,
कवियों की अयुक्त उपमा का, लज्जा से युग डरते।
—पार्वती, पृ० ५८

४. भैमी जंघा-युग्म-रम्य को देख-देख बल खाते थे—
रंभा के उलटे रंभा सम उरु-युगल लजाते थे।
इन्द्र-गजेन्द्र विलज्जित होकर केवल हाथ हिलाता था।
काम-निषंग-युग्म निन्दक बन उरु-युग्म छवि पाता था।
—नलनरेश, ७, ४६

५. वर्द्धमान १, ८२; नलनरेश, ७, ५०
६. वर्द्धमान १, ६५
७ वर्द्धमान १, ६२
८. वही, १, १३२

प्रविष्ट हो श्यामल रोमवल्लरी
विराजती थी तट नाभि-रन्ध्र के,
कि मेखला की मणि से विताडिता
असेत लेखा तप की प्रकाशी ।[१]

उक्त उद्धरणो मे नाभि की गम्भीरता और दक्षिणावर्तता तथा रोमाली की श्यामता, लघुता और नाभिगमनीयता स्पष्टतया उल्लिखित है।

त्रिवली

उदर पर पडने वाली त्रिवली स्त्री के सौन्दर्य की वर्धक तो है ही साथ ही उसके सौभाग्य की सूचक भी है।[२] इसके वर्णन के लिए नदी, सोपान आदि उपमान सस्कृत साहित्य में प्रयुक्त होते रहे हैं। आलोच्य काव्यो मे त्रिवली का वर्णन नख-शिख-परम्परा के निर्वाह के रूप म हुआ है जहाँ इसे सोपान और त्रिपथगा के समान बताया गया है —

"अति मन मोहन त्रिवली मानो थीं सोपानें शोभा-खान,
जिससे दर्शक-मन चढ़ करके हो जाता था निमग्न।"[3]
"स्तन शिखरों से उतर उदर पर बहती यौवन गगा,
पुण्य त्रिपथगा-सी त्रिवली में चचल तरल तरगा।"[४]

नितब एव उरु

नितम्बो की स्थूलता और मासलता की तथा उरुओ के रोमराहित्य एव सुडौलता को सौन्दर्योत्पादक जानकर सस्कृत कवि नितबो के लिये पीठ प्रस्तर, पृथ्वी, चक्र इत्यादि तथा ऊरु के लिए हाथी की सूड, कदली स्तम, करम इत्यादि उपमानो का प्रयोग करते रहे हैं।[५] *आधुनिक काव्यो मे भी जहाँ परपरागत सौन्दर्य-*मान के रूप मे स्तनों की सुपुष्टता और कटि की क्षीणता को चित्रित किया गया है वहीं नितबो की पीनता और मासलता भी चित्रित है। इन काव्यों मे नायिकाओं को स्थूल-नितंबिनी तो बतलाया ही गया है साथ ही इनकी स्थूलता के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए परपरागत उपमानो को ही अवतरित किया

---

१. वर्द्धमान, १, ६६
२. बृहद्सहिता, ७०
३. नल-नरेश, ४, ४५
४. पार्वती, पृ० ५६
५ अलकारशेखर, १३, १३

गया है। 'वर्द्धमान'[1] की त्रिशला और 'नलनरेश'[2] की दमयन्ती के सुपीन नितंब शिला-युगल और काम-विनिर्मित चक्र-द्वय के प्रभाव की सृष्टि कर रहे हैं।

सुनितंबिनी होने के साथ ही साथ ये नायिकाएँ वरोरु भी हैं। 'पार्वती' की ऊरुओं की सुडौलता, सुन्दरता और कांति तो कदली और नाग को भी अपने समक्ष लज्जित कर रही है।[3]यही स्थिति दमयन्ती के उरुओं की है। वे भी शोभा, सुपुष्टता और सुचिक्कणता से रंभा, इन्द्रगज और कामतूणीर को भी विनिन्दित कर रहे हैं।[4]

उक्त प्रमुख अंगों के वर्णनों के अतिरिक्त नायिकाओं के चरणों की चरण, गमन एवं लालिमा[5], उनकी गजवत्[6] एवं मरालवत्[7] मंथर चाल, हंस शब्द सी मनोहर नूपुर ध्वनि[8] का वर्णन भी परंपरा के अनुपालन रूप में हुआ है।

नूपुरध्वनि

---

१. नितब को देख नृपाल–चित्त में
अनूप ऐसी कुछ तर्कना उठी
लसी शिलाएँ युग चन्द्र-कान्त की
कि मंजु चक्र द्वय हों मनोज के।
—वर्द्धमान, १, ६४

२. वेष्टित युगल-नितंब-बिंब ये कनक-चक्र आकार सुपीन।
मानो थे ये काम-विनिर्मित चक्रवाक दो अचल नवीन।
—नलनरेश ७, ४८

३. कम्पित कदली और नाग-कर नित नियेम सा करते,
कवियों की प्रयुक्त उपमा का, लज्जा से मुख ढरते।
—पार्वती, पृ० ५८

४. भैमी-जंघा-युग्म-रम्य को देख-देख बल खाते थे—
रंभा के उलटे रंभा सम उरु-युगल लजाते थे।
इन्द्र-गजेन्द्र विलज्जित होकर केवल हाथ हिलाता था।
काम-निषंग-युग्म निन्दक बन उरु-युग्म छवि पाता था।
—नलनरेश, ७, ४६

५. वर्द्धमान १, ८२; नलनरेश, ७, ५०
६. वर्द्धमान १, ६५
७ वर्द्धमान १, ६२
८. वही, १, १३२

नर-रूप-वर्णन

आलोच्य काव्यों मे पुरुषो का रूप-वर्णन इतनी बहुलता से नही मिलता है जितना कि स्त्रियो का नख-शिख-वर्णन। वर्द्धमान, नलनरेश, दमयन्ती, वैदेही-वनवास आदि काव्यों मे नर-रूप का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। इन वर्णनो मे संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं का उल्लेख हुआ है।

वक्ष-सुपुष्टता दीर्घबाहुता

संस्कृत आचार्यों के अनुसार पुरुषो को दीर्घबाहु तथा सुपुष्ट वक्षस्थल वाला चित्रित करना चाहिए। बाहुओ की दीर्घता को अर्गला, भुजग, इन्द्रदण्ड तथा हस्तिशुण्ड से और वक्ष की पुष्टता और विशालता को कपाट तथा शिलापट्ट[1] आदि उपमानों से स्पष्ट करना चाहिये। आलोच्य काव्य में प्रमुख पुरुष पात्रो को आजानुबाहु तथा सुपुष्टवक्ष चित्रित कर कवियों ने परम्परा के निर्वाह का सतोष अनुभव किया है। वैदेही-वनवास के राम, प्रियप्रवास के कृष्ण, नलनरेश और दमयन्ती के नल, वर्द्धमान के महावीर स्वामी तथा एकलव्य के द्रोण के रूप-वर्णन मे इनका उल्लेख देखा जा सकता है :—

प्रियप्रवास के कृष्ण—

> सबल जानु विलंबित बाहु थी।
> अति–सुपुष्ट–समुन्नत वक्ष था।[2]

वर्द्धमान मे महावीर—

> "अलग्न अद्यावधि नारि-वक्ष से।
> सुपुष्ट था वक्ष-कपाट सोहता।"
> *प्रलंब आजानु भुजा विराजती,*
> मनोरमा कल्प-लता-समान ही।"[3]

---

१. "राज्ञामत्यन्तपीनत्वमुच्चता दीर्घबाहुता"
"युगार्गलभुजङ्गेन्द्रदण्डस्तम्भेभहस्तकैः बाहुः"
"वक्षः कपाटेन शिलापट्टेन वर्ण्यते।"
—*अलंकारशेखर*, पृ० ५६

२. प्रियप्रवास १, २३

३. वर्द्धमान १४, १११

नलनरेश में नल—

> नल-वक्षस्थल आप ही अति उन्नत था हो रहा—
> औ इन्द्र के वज्र का महा गर्व था खो रहा।[1]
> "नागलोक को जीत और फिर शासन करने
> नागराज के भूमि-भार को अथवा हरने
> छिटक गई जो भला जानुओं से भी बढ़कर
> थीं ऐसी ही श्रेष्ठ बाहुएँ नल की दृढ़तर।[2]

अंस एवं कटि

केशवमिश्र के अनुसार पुरुषों के अंस की विपुलता, मध्य भाग की कृशता का वर्णन होना चाहिये। इसके साथ ही हाथों में पद्म इत्यादि चिह्नों तथा पदों में ऊर्ध्व रेखाओं तथा धनध्वज आदि चिह्न वर्णन होना चाहिये।[3] अगर कालिदास ने दिलीप की स्कन्ध-विपुलता और पुष्टता को बताने के लिए उन्हें 'वृषस्कन्धः'[4] कहा है तो आलोच्य काव्यों में नल के कन्धों को शिव-नन्दी के लिए कष्टदायक कहकर इसी प्रभाव की अभिव्यक्ति की है।[5] 'वर्द्धमान' में महावीर स्वामी के रूप का वर्णन करते हुए कवि ने मध्य-भाग की कृशता का उल्लेख भी किया है।[6] संस्कृत ग्रंथों में पुरुषों के करों को विभिन्न चिह्नों और रेखाओं से चिह्नित चित्रित किया गया है। 'नैषधमहाकाव्य' में नल के चरणों को ऊर्ध्वगामिनी रेखाओं से चिह्नित, बुद्धचरित में सिद्धार्थ के चरणों को चक्र के चिह्न से युक्त तथा हर्षचरित में हर्ष के पदतल को कमल, शंख, मछली और मकर आदि के चिह्नों से युक्त बताया गया है। इसी परंपरा में आलोच्य काव्यों में भी पुरुषों के करों और चरणतलों

---

१. नलनरेश २, ३३
२. वही, २, ३४
३. अलंकारशेखर, १४, ४
४. रघुवंश १, १३
५. अति बलदायक होकर भी थे शिव-नन्दी को कष्ट महान—
   देते थे दिखला कर अपना कन्ध-युग्म बल पुष्टि-निधान।
   —नलनरेश, ७,७१
६. अतीव सन्वग मृगेन्द्र-संक सा,
   नितान्त ही क्षाम कटि-प्रदेश था।
   —वर्द्धमान १४, ११२

को शख, ध्वज, चक्र तथा रेखाग्रो से ग्र कित बताया गया है। चन्द्रगुप्त के पदतल ध्वजा, चक्र तथा रेखाग्रो से[1] ग्रौर नल के पदतल शखादिक चिह्नो[2] से ग्र कित हैं।

इस प्रकार ग्रालोच्य काव्यो मे स्त्री ग्रौर पुरुष दोनो के रूप-वर्णन मे कवियो ने सस्कृत काव्यों एव काव्यशास्त्रो की मान्यता दी है। सस्कृत का यह प्रभाव इन काव्यों मे चाहे सीधे रूप मे न ग्राया हो पर वह प्राकृत, पाली ग्रपभ्र श ग्रौर पूर्वाधुनिक हिन्दी साहित्य की परपरा मे होकर ग्रवश्य यहाँ तक ग्रा पहुँचा है।

जहाँ एक ग्रोर ग्रालोच्य काव्यों के नख-शिख वर्णन पर सस्कृत साहित्य का ग्रप्रत्यक्ष प्रभाव है, वहीं कई स्थलों पर प्रत्यक्ष ग्रनुवादात्मक प्रभाव भी देखा जा सकता है। वास्तव मे सस्कृत कवियों के वर्णन इतने रम्य ग्रौर ग्राकर्षक है तथा उनके उपमान इतने ग्रनूठे हैं कि ग्राधुनिक महाकवि ग्रपने काव्यो मे उनके ग्रनूदित ग्र श सज्जित करने के लोभ का सवरण नही कर पाये हैं। पार्वतीकार तो इस सबध मे कालिदास के बहुत ऋणी प्रतीत होते हैं। पार्वती महाकाव्य मे पार्वती का रूप-वर्णन कुमारसभव के रूप-वर्णन को सामने रखकर लिखा गया है। जिस क्रम से ग्रौर जिन उपमानो की सहायता से कालिदास ने पार्वती का रूप-वर्णन किया है भारतीनदनजी ने भी उसी क्रम मे ग्रौर मुख्यतया उन्ही उपमानों के सयोजन से उसे चित्रित करने की चेष्टा की है। उदाहरण के लिए पार्वती की चरण-सौन्दर्य सबधी निम्नलिखित पक्तियाँ कुमारसभव के प्रभाव को व्यक्त कर रही हैं—

प्रत्यक्ष प्रभावात्मक स्थल

---

१ ध्वजा चक्र-रेखाकित तलवे भू पर चले न बिन पदत्राण,
ग्राज प्रथम पृथ्वी चुम्बन ने किये सजल उनके भी प्राण।
—विक्रमादित्य, पृ० २४, प० १-२

२. था नल का कर युग्म ग्रलौकिक रक्त-काति धर।
शखादिक सब चिह्न प्रगट सब उसमे होकर—
बना रहे थे उसे ग्रौर भी महा मनोहर।
—नलनरेश, २, ३५

पाद-चरण से पुण्यवती यह पद-पद [illegible] बनाती,
चरण-प्रभा से धन्य धरा पर शुचि स्थल कमल खिलाती।[1]

'वर्द्धमान' के कवि अनूप ने तो वर्द्धमान के विरक्तिमय जीवन से संबंधित काव्य में स्त्री-रूप-वर्णन का अवकाश न होने पर भी रूप-वर्णन के प्रबल मोह से प्रेरित होकर वर्द्धमान की माता त्रिशला का ही नख-शिख-वर्णन प्रस्तुत कर दिया है। इस वर्णन में कवि ने संस्कृत के कई कवियों की जंघा, नितम्ब, स्तन आदि से संबंधित उक्तियों का अनुवाद सो कर के रख दिया है। इस संबंध में वर्द्धमान में कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं। त्रिशला की जंघाओं का वर्णन कवि अनूप ने इस प्रकार किया है:—

सुवर्ण मंजीरमयी सुशोभना, मनोज्ञ-जंघा-लतिकाद्वयी लसी।
यथैव शाखा युग सौकुमार्य की, प्ररूढ़ हों कुंकुम से विलेपिता॥[2]

ये पंक्तियाँ संस्कृत के निम्नोक्त छन्द का ही अनूदित रूप प्रतीत होती हैं:—

हेममंजीरमालाभ्यां, भाति जंघा लताद्वयम्।
लावण्यशालिनः स्थाने, कुंकुमेनेववेष्टितम्॥[3]

इसी प्रकार 'वर्द्धमान' में त्रिशला के कुचों का यह वर्णन भी मौलिक नहीं है:—

जिगीषु कामावनिपाल की कुटी, न कञ्चुकी उच्च उरोज पै लसी।
बनी सवप्ना रतिनाथ शत्रु के, महार्थ पै जीत समस्त मेदिनी॥[4]

ये पंक्तियाँ भी संस्कृत की निम्नलिखित पंक्तियों के प्रभाव को ध्वनित कर रही हैं.—

---

१. पार्वती, पृ० ५७

तु० की०—

आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्।
—कुमारसम्भव, १,३३

२. वर्द्धमान, १, ६०

३. रसवन्ती, पृ० २५० (अङ्क १९६१, फरवरी-मार्च)

४. वर्द्धमान १, १००

उपरि पीन पयोधर पतिता,
पटीय शुटीव मनोभव भूपते. ।
विजयिनास्त्रिपुरारि जिगीषया,
तव विराजित कामिनि ! कञ्चुकी ।[1]

सामान्य रूप से गर्भिणी स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन हिन्दी काव्यों में नहीं किया जाता रहा है, पर कालिदास इत्यादि कवियों की परम्परा के अनुकरण पर श्री हरदयालुसिंह ने दैत्यवश काव्य मे गर्भभारालसा राज्ञी के सौन्दर्य का वर्णन किया है, जो स्वय मे कोई मौलिकता लिए हुए नहीं है। यह वर्णन रघुवश मे वर्णित आसन्नगर्भा रानी सुदक्षिणा के सौन्दर्य वर्णन का ही अनुवाद प्रतीत होता है। रघुवश में रानी सुदक्षिणा गर्भावस्था मे कुछ नये सौन्दर्य से ही वलयित हो गयी है। गर्भ का प्रारम्भिक कष्ट बीत जाने पर रानी वैसे ही हृष्ट पुष्ट और सुन्दर लगने लगी जैसे बसत ऋतु मे लताएँ पुराने पत्ते गिराकर नये कोमल पत्तो से लदकर सुन्दर लगने लगती हैं। थोडे ही दिनो मे उसके बडे-बडे स्तनो की घुण्डियाँ काली पड गयी। इससे रानी के स्तन ऐसे सुन्दर लगने लगे कि उनकी शोभा के आगे कमल के जोडे पर बैठे हुए भौंरो की शोभा भी हार मान बैठी।[2] गर्भावस्था का यह वर्णन दैत्यवश काव्य मे बिना किसी विशिष्ट परिवर्तन के आ गया है —

"कुच योउन के मुख पै वर वाम के,
ऐसी लसी कछु स्यामलताई ॥
अरविन्दनि के मनो कोसनि पै,
भ्रमरावलि की छवि मजुल छाई ॥
दोहद को दुख बीतत ही,
अँगना अग अगनि छाई प्रभा-सी ॥
गात विकास प्रिया को भयो,
जगी और हो दीपति दीपसिखा-सी ॥
आनन चद अमद गही दुति,
बाढ़ी हिये अभिलाषनि रासी ॥
जीरन पात गिरे तें भई,
किसलै जुत सो ललित लतिका-सी ॥[3]"

---

१. रसवन्ती पृ० २५१
२ रघुवश, ३, ७-८
३. दैत्यवश १०, २-३

गर्भिणी होने से 'रघुवंश' की सुदक्षिणा कृशकाय तो हो ही गई है, उसका मुख भी पीला पड़ गया है। परिणामतः उसमें 'लजीलापन' भी आ गया है।[1] इसी प्रभाव को समेटते हुए प्रसाद की श्रद्धा भी गर्भावस्था में पीतवर्णा और कृशकाय चित्रित की गई है। केतकी गर्भ सा पीला मुख लिए लजीली कृशता और कंपित लतिका सी देह[2] से उसका सौन्दर्य बढ़ ही गया है, कम नहीं हुआ है। *प्रसाद की 'कामायनी' और 'दैत्यवंश' के वर्णन में प्रतिभागत अंतर अवश्य* है। प्रसाद के वर्णन में कवि की प्रतिभा का भी अंश मिला हुआ है जबकि दैत्यवंशकार के वर्णन में अनुवाद की स्पष्ट झलक है।

विवेच्य काव्यों में स्त्री-रूप-वर्णन के अतिरिक्त बाह्य-सौन्दर्य-वर्णन के कई अन्य प्रसंगों में भी कवियों की अनुवादात्मक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। 'पार्वती' में सप्तर्षियों के बाह्य सौंदर्य का अंकन 'कुमारसंभव' से प्रभावित है। 'कुमारसंभव' में सप्तर्षियों को कल्पवृक्ष के पुष्पों की सुगन्धि और दिग्गजों के मद की सुगन्ध से युक्त आकाशगंगा के जल में स्नात, मोती के यज्ञोपवीत धारण किये, पीठ पर सोने के वल्कल पहने, हाथ में रत्न मालाएँ लिए साक्षात् प्रव्रज्यानिरत कल्पवृक्ष के समान बताया है।[3] कुमारसम्भव के इसी वर्णन को 'पार्वती' के कवि ने बिना किसी परिवर्तन के अपने काव्य में इस प्रकार अनुस्यूत किया है:—

> पारिजात के रंजित पुष्प पराग से,
> मद गन्धों से पूर्ण दिव्य दिङ्नाग-से,
> नभ-गंगा के स्वच्छ जलों में स्नात थे,
> दिव्य कांति से युक्त अमल अवदात थे,
> मुक्तामय उपवीत रुचिर धारण किये,
> स्वर्णिम वल्कल, रत्न-पक्ष माला लिये,
> आप्त-काम ऐश्वर्यों से युत सतत वे
> कल्पवृक्ष-से [illegible] प्रव्रज्या निरत थे।[4]

---

१. रघुवंश ३. १-२ २. कामायनी पृ० १४२

३.
> आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्किरवीचिषु ।
> व्योमगङ्गाप्रवाहेषु दिङ्नागमदगन्धिषु ॥
> मुक्तायज्ञोपवीतानि बिभ्रतो हैमवल्कलाः ।
> रत्नाक्षसूत्राः प्रव्रज्यां कल्पवृक्षा इवाश्रिताः ॥
> —कुमारसम्भव, ६, ५–६

४. पार्वती, पृ० १७२

काव्य-क्षेत्र में विभिन्न देवी-देवताओं और उनके अवतारों के वर्ण, रूप, वेष इत्यादि के सम्बन्ध मे कुछ स्थिर मान्यताएँ दिखाई पड़ती है। संस्कृत और हिन्दी के सभी कवि राम, कृष्ण, विष्णु, शिव इत्यादि का रूप-वर्णन इन परम्परागत मान्यताओं के अनुरूप करते रहे हैं। आलोच्य काव्यों में भी कृष्ण, शिव आदि देवी देवताओं का वर्णन इसी पद्धति पर हुआ है।[1]

सौन्दर्य प्रसाधन

शृङ्गार-प्रसाधन सौन्दर्य की अभिवृद्धि के साधक है। संस्कृत काव्यों में नायिकाओं के अतिरंजित रूप-वर्णन के चित्रण के साथ ही शृङ्गार-प्रसाधनों की सहायता से उनके सौन्दर्य को और अधिक अभिवर्द्धित चित्रित किया जाता रहा है। कामशास्त्रानुसार स्त्रियों के षोडश शृङ्गार ये हैं—सुगन्धित लेप (उबटन), मज्जन, उज्ज्वल वस्त्रधारण, पैरो मे अलक्तक लगाना, केशसज्जा, सिंदूर लगाना, भाल पर तिलक-रचना, चिबुक-बिंदु-रचना, अङ्गराग लगाना, मेंहदी रचना, स्वर्णाभूषण धारण, पुष्प सज्जा, मुख को सुवासित करना, दंतरंजन, ओष्ठ-रंजन और कज्जल लगाना इत्यादि। इन शृङ्गारों का वर्णन संस्कृत काव्यो मे विपुलता से मिलता है। आधुनिक काव्यों मे जहाँ इन शृङ्गारों का का वर्णन विस्तार से हुआ है वहाँ संस्कृत के ग्रन्थों की छाया स्पष्ट है। 'पार्वती' मे पार्वती के विवाह के अवसर पर और 'नलनरेश' मे दमयन्ती के स्वयंवर के अवसर पर इनका उल्लेख विशेष रूप से देखा जा सकता है। इन दोनों काव्यों के वर्णन के पीछे क्रमशः कुमारसम्भव और नैषधीयचरित की प्रेरणा कार्य कर रही है, क्योंकि कुमारसम्भव मे भी पार्वती के परिणयपूर्व शृङ्गार का चित्रण है और नैषध मे भी नल दमयन्ती के परिणय संस्कार के पूर्व दमयन्ती के शृङ्गार का वर्णन हुआ है।

'पार्वती' मे पार्वती की देह पर आर्द्र सुगन्धित लेप करने, स्वर्ण घटों से मांगलिक स्नान कराने, उद्गमनीय वस्त्र धारण कराने, अगरु-चन्दन के धुँए से बाल सुखा कर बालों मे फूल गूँथने तथा दूब मे पिरोई हुई पीले मधूक के पुष्प की माला को वेणी पर लपेटने, पैरों को अलक्तक से रंजित करने, नेत्रों में अंजन लगाने, आभूषण पहनाने, कानों मे कर्णफूल पहनाने, गोली हरिताल और

---

१. क. कृष्णायन, पृ० २७
   ख. प्रियप्रवास पृ० १, १८-२०
   ग. पार्वती, पृ० ७०

मैनसिल से भाल पर तिलक अंकित करने का वर्णन कुमारसंभव से शतप्रतिशत साम्य रखता है।[1]

'नलनरेश' में दमयन्ती के शृङ्गार में उबटन लगाने, मज्जन कराने, केश-सज्जा करने अंगराज लगाने, अंजन लगाने, मेंहदी लगाने, दशनरंजन, ओष्ठरंजन, मुख सुवासित करने, नव वस्त्र धारण कराने, आभूषण पहनाने, सिन्दूर-बिन्दु लगाने, कस्तूरी से चिबुक-बिन्दु बनाने[2] का उल्लेख भी संस्कृत काव्यों के षोडश-शृङ्गार के वर्णन की परम्परा की ही एक कड़ी प्रतीत होता है।

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है। आदिकाल से ही मानव प्रकृति की गोद में जन्म लेकर उसके नाना रूपों पर मुग्ध होता चला आ रहा है। कल-कल करती हुई सरिताएँ, पर्वताक से बहते हुए शुभ्र निर्झर, कलरव करते हुए पक्षी, प्रातःकालीन सूर्य की सुवर्ण आभा, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना तथा विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति सुन्दरी की मोहक सज्जा अनादिकाल से मानव-मन को आह्लादित करती रही है। वैदिक ऋषि तो प्रकृति के इन सौन्दर्योपकरणों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने इनमें देवत्व की प्रतिष्ठा कर इनकी स्तुति में अनेक ऋचाओं की रचना की।

कविमानस प्रकृति के क्षण-क्षण परिवर्तित रूपों को कई प्रकार से चित्रित करता रहा है। कभी वह प्रकृति के अनुपमेय सौन्दर्य का अवलोकन करता है और वह सौन्दर्य उसकी सम्पूर्ण चेतना को अपने पाश में आबद्ध कर लेता है; विभोर कवि प्रकृति के उस सौंदर्य का यथावत् अंकन करता चलता है। कभी उसे प्रकृति के विविध तत्त्व संयोग और वियोग की अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न भावों को उद्दीप्त करते प्रतीत होते हैं और वह उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण करता है, कभी प्रकृति आत्मीया के रूप में विविध परिस्थितियों में संवेदना प्रकट करती दिखाई पड़ती है और वह प्रकृति के संवेदनात्मक रूप का चित्रण करता है, कभी-कभी यह आत्मीयता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह प्रकृति को दूत या दूती के रूप में संदेशवाहन का साधन भी बनाता है। कभी काव्यसंसार का प्रजापति अभिव्यक्ति की चारुता और भावों की सहज प्रेषणीयता के लिए प्रकृति से अनेक सुन्दर अप्रस्तुतों को भी पकड़ लाता है और कभी प्रकृति के माध्यम से मनोरम उपदेशों की योजना भी करता है।

---

१. पार्वती, पृ० १९६-२०४. कुमारसम्भव, सर्ग ७

२. नलनरेश, सर्ग १२, ८२-१०७

संस्कृत साहित्य में हमें प्रकृति वर्णन के ये सभी रूप देखने को मिलते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि विभिन्न कवियों की अभिरुचि भिन्न भिन्न शैलियों में रही है। अगर वाल्मीकि की रुचि प्रकृति के शुद्ध स्वतन्त्र रूप के चित्रण में रही है, तो कालिदास की प्रकृति के मानवीय संवेदनात्मक रूप के चित्रण में और परवर्ती श्रीहर्ष, माघ इत्यादि कवियों की प्रकृति के अलंकृत रूप के चित्रण में। हिन्दी के कवियों ने भी विभिन्न कालों में अपनी रुचि के अनुकूल प्रकृति चित्रण की विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है।

स्वतन्त्र रूप में प्रकृति-वर्णन

आधुनिक काव्यों में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में वर्णन ही प्रमुख रूप से हुआ है। इन काव्यों में प्रकृति का शुद्ध वर्णन कथाप्रसंग में आये किसी स्थानविशेष का परिचय देने के लिए किसी प्राकृतिक दृश्य का मनोरम चित्र उपस्थित करने के लिए अथवा प्रसंग-विशेष के लिए मनोहर पृष्ठभूमि उपस्थित करने के लिए हुआ है। *प्रियप्रवास, वैदेही-वनवास* और *मीरां* जैसे काव्यों में तो प्रकृति वर्णन प्राणस्वरूप हैं।

प्रकृति के वर्ण्य प्राकृतिक उपकरणों को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है—स्थलीय, जलीय एवं सामयिक। स्थलीय प्रकृति के अन्तर्गत वन, उपवन, पर्वत, कन्दरादि के वर्णन आते हैं, जलीय प्रकृति के अन्तर्गत नदी, समुद्र, जलाशय, सरोवर आदि के तथा सामयिक प्रकृति के अन्तर्गत सूर्योदय, मध्याह्न, संध्या, निशा, चन्द्रोदय इत्यादि के तथा ग्रीष्म, वर्षा शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त इत्यादि ऋतुओं के वर्णन आते हैं। आलोच्य काव्यों में इनका वर्णन आलंबन और उद्दीपन के रूप में ही प्रमुखतया हुआ है। इन काव्यों के कुछ वर्णनों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि अलंकारों का चमत्कार बताने के लिए ये वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं, प्रकृति का शुद्ध रूप में चित्रण करना कवियों का उद्देश्य नहीं रहा है। इन वर्णनों को पढ़कर संस्कृत के माघ, श्रीहर्ष, भारवि इत्यादि चमत्कारप्रिय कवियों का स्मरण हो आता है। जैसे *'अंगराज'* के चतुर्दश सर्ग के आरम्भ में रात्रि और चन्द्रोदय का वर्णन संस्कृतकवियों की अनुकारिता में लिखा गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार का वर्णन *'दैत्यवंश'* के एकादश सर्गारंभ में सूर्योदय का है। कथा प्रसंग की दृष्टि से ये वर्णन इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, जितने आलंकारिक सौंदर्य की दृष्टि से।

आलोच्य काव्यों में इस प्रकार के चामत्कारिक वर्णनों का प्राचुर्य नहीं है। कई काव्यों में प्रकृति के सूक्ष्म व्यापारों को सरलता और स्वाभाविकता से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से नूरजहाँ, प्रियप्रवास,

वैदेही-वनवास, मीरा आदि काव्यों के प्रकृति-वर्णन सुन्दर बन पड़े हैं। अन्य काव्यों में भी प्रकृति के विविध उपादनों के स्वतन्त्र वर्णनों का सौन्दर्य देखा जा सकता है।

शुद्ध स्वतन्त्र रूप से भी प्रकृति-वर्णन की दो प्रकार की शैली दिखाई पड़ती है, "प्रथम शैली वह है जिसमें दृश्य-चित्र अपनी प्रमुख वस्तु और क्रिया की स्थितियों की रेखाओं में सीमा ग्रहण करता है। ऐसे चित्रों में दृश्यात्मक पूर्णता नहीं वरन् गोचर आभास मिलता है। प्रकृति के जिस दृश्य या ऋतु के जिस रूप को कवि प्रत्यक्ष करता है, उसको विशिष्ट देश-काल में या तो बाँधना ही नहीं और या केवल सामान्य विशेषता को रेखाएँ दे पाता है। इन रेखा-चित्रों की शैली से मिलती-जुलती वर्णना की दूसरी शैली संश्लिष्ट योजना की है। दृश्य की स्थितियों की योजना का विस्तार दोनों में होता है, केवल प्रस्तुत करने के ढंग में अंतर है। एक में व्यापक चयन के आधार पर चित्र की रेखाओं को उभारा जाता है, और दूसरी शैली में स्थितियों की सूक्ष्म संश्लिष्ट योजना से चित्र अपनी पूर्णता और विशिष्टता के साथ गोचर हो उठता है।"[1] आलोच्य काव्यों में इन दोनों शैलियों में से प्रथम शैली का प्रयोग ही हुआ है। इसका कारण यह है कि प्रबन्ध कवि के पास इतना अवकाश नहीं होता कि वह कथा-प्रवाह के बीच प्रकृति के दृश्यविशेष को इतना विस्तार दे, वह तो स्थूल रेखाओं के माध्यम से देश और काल का परिचय देते हुए आगे बढ़ता जाता है और कहीं-कहीं तो प्राकृतिक वस्तुओं के परिगणन मात्र से ही काम चला लेता है। जैसा कि अंगराज,[2] नलनरेश,[3] प्रियप्रवास[4] आदि काव्यों में हुआ है।

प्रातःकाल,[5] सन्ध्या[6] और रात्रि[7] के स्वतंत्र वर्णन प्रियप्रवास, सिद्धार्थ, साकेत, साकेत-सत, दैत्यवंश, रावण, नूरजहाँ, अंगराज, दमयन्ती, विक्रमादित्य

---

१. प्रकृति और काव्य, पृ० ६५
२. अङ्गराज, १५, ८-१०
३. नलनरेश, १३, ४३-४५
४. प्रियप्रवास ६, २५-२६
५. साकेत, सर्ग १, पृ० ८-१०; नलनरेश १२, १-४; साकेत-सन्त २, १-७; सिद्धार्थ पृ० १६-२१ तथा पृ० ५१-५२; दैत्यवंश ११, १-८, रावण २; १-६; दमयन्ती पृ० ५८; वर्द्धमान ४, १-४०; विक्रमादित्य पृ० २५-२६; कामायनी, आशा सर्ग।
६. प्रियप्रवास १, १-५; सिद्धार्थ, पृ० २६५-६६; वर्द्धमान १३, १-५ तथा ११, ६-१३; विक्रमादित्य पृ० १४५-४६; वैदेही-वनवास सर्ग ५।
७. प्रियप्रवास १, १-११; अङ्गराज १४, १-१८; नलनरेश ४, १-८; दैत्यवंश १२, १-७; वर्द्धमान ३, १-१२ तथा ५, १६-२५; सिद्धार्थ पृ० १२८-३० तथा पृ० ११०-११।

आदि काव्यों में स्थान-स्थान पर हुए हैं। वनक्षेत्र, नदी, पर्वत, सरोवर इत्यादि के वर्णन भी आलंबन रूप मे ही किये गये हैं। 'अंगराज'[१] में गंगा नदी का वर्णन, 'वर्द्धमान'[२] मे ऋजुवालिका, 'नलनरेश'[३] में गोदावरी और 'नूरजहाँ'[४] मे भी नदी विशेष का वर्णन है। पर्वत-वर्णन मे 'प्रियप्रवास'[५] में गोवर्द्धन-पर्वत, 'पार्वती'[६] मे हिमाचल पर्वत, 'जयभारत'[७] मे गन्धमादन गिरि, 'नूरजहाँ'[८] में मलबुर्ज-गिरि तथा 'दैत्यवंश'[९] मे गिरिविशेष के वर्णन उल्लेखनीय हैं। वनस्थली एवं सरोवर इत्यादि के वर्णन भी प्रियप्रवास,[१०] साकेत,[११] रावण,[१२] नलनरेश,[१३] नूरजहाँ,[१४] मीरां,[१५] रावण,[१६] आदि काव्यो मे स्वतंत्र रूप से आए हैं। वैदेही वनवास,[१७] नलनरेश,[१८] जयभारत,[१९] नूरजहाँ[२०] आदि काव्यों मे विभिन्न ऋतुओं के स्वतन्त्र वर्णन देखे जा सकते हैं।

उपदेश ग्रहण के रूप में

प्रकृति के माध्यम से नीति का उपदेश देने की प्रणाली भी संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुई है। प्रकृति के माध्यम से वर्णित होने के कारण शिक्षाप्रद नीत्युक्तियो मे भी सरसता आ जाती है, अन्यथा काव्य मे वर्णित नीति-उपदेश नीरस प्रतीत होते हैं। प्रकृति-वर्णन के इस उपदेशात्मक रूप को हम श्रीमद्भागवतपुराण मे देख सकते हैं। वहाँ वर्षा और शरद् के वर्णनों के माध्यम से अनेक शिक्षाप्रद उपदेशों की आयोजना हुई है।[२१]

---

१. अङ्गराज, १५, १६-२२
२. वर्द्धमान, १०, १-२३
३. नलनरेश, पृ० ३, ५-८
४. नूरजहाँ, पृ० ३९
५. प्रियप्रवास, ६, १४-१६
६. पार्वती, सर्ग १
७. जयभारत, पृ० १७१-७२
८. नूरजहाँ, सर्ग १
९. दैत्यवंश, सर्ग १८
१० साकेत, सर्ग [illegible]
११. साकेत सर्ग ५, पृ० १३५-१३६
१२. रावण, १, १३-१६
१३. नलनरेश, १३, ४३-४८
१४. नूरजहाँ, पृ० ३७-३८
१५. मीरां महाकाव्य, पृ० ६६-७२
१६. रावण, १, १३-१६
१७. वैदेही-वनवास, १४, १-२६
१८. नलनरेश, पृ० १७, १-११
१९. जयभारत पृ० १८३-८५
२०. नूरजहाँ, सर्ग १८
२१. निशा मुखेषु खद्योतास्तमाना भान्ति न ग्रहा।
यथा पापेन पाखण्डा: न हि वेदा: कलौ युगे।
—भागवत, १०, २०, ८

हिन्दी काव्यों में भी प्रकृति के माध्यम से उपदेश देने की परम्परा का निर्वाह हुआ है। रामचरितमानस के किष्किधाकांड में भी वर्षा और शरद् ऋतु के वर्णनो में प्रकृति-चित्रण की यही शैली अपनाई गई है। यही प्रवृत्ति आधुनिक महाकाव्यो में देखी जा सकती है। प्रियप्रवास, वैदेही-वनवास, रामचरित चिंतामणि काव्यो में इसका प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। अन्य काव्यो में भी इसके विरल प्रसग दिखलाई पड़ते हैं।

'रामचरित चिंतामणि' में इसका प्रयोग विशदता से है। इस काव्य के तृतीय सर्ग में सूर्यास्त वर्णन के प्रसग में, त्रयोदश सर्ग में ग्रीष्म और वर्षा-वर्णन के प्रसग में तथा चतुर्दश सर्ग में शरद-वर्णन के प्रसंग में प्रकृति के द्वारा नीति-के उपदेशों की व्यंजना ही हुई है। कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं:—

काम के वशीभूत जो हैं गिरे,
क्रोध को देखते वे न कभी तिरे।
केतकी कण्टकाकीर्ण है देखिये,
भृंग ने प्राण तो भी इसे हैं दिये।[1]

'प्रियप्रवास' मे भी प्रकृति के माध्यम से नीति की अभिव्यक्ति इस प्रकार देखी जा सकती है —

कु-अगजों की बहु-कष्टदायिता।
बता रही थी जन नेत्रवान को।
स्व-कंटकों से स्वयमेव सर्वदा।
विदारित हो बदरी द्रुमावली।[2]

इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी कहीं-कही प्रकृति के द्वारा नीति-वर्णन का सुन्दर आयोजन हुआ है। जैसे दैत्यवंश में.—

"गिरत हवै छवि छीन विधु नभ सों कहत जनु जात।
अथिर है वैभव जगत को छिनक में बिनसात।"[3]
"विकसत कुमुद-कलाप वनज-वन सरसि माँहि सकुचाने।
जिमि दुरजन पर सम्पति को लखि निज हिय रहत लजाने।"[4]

१. रामचरित चिन्तामणि, ३, २६
२. प्रियप्रवास ६, ४३
३. दैत्यवंश, ११, ४
४. दैत्यवंश, १२, १

साकेत मे भी प्रकृति के द्वारा व्यक्त नीति का एक रूप देखिये –

पास-पास ये उभय वृक्ष देखो, अहा !
फूल रहा है एक, दूसरा झड़ रहा।
है ऐसी ही दशा प्रिये, नर लोक की,
कहीं हर्ष की बात, कहीं पर शोक की।[1]

प्रकृति मानवीय मन:स्थिति के अनुकूल कभी दु:ख में दु:खी और कभी प्रसन्नता मे आह्लादित दीख पड़ती है। भावुक कवि के हृदय को प्रकृति सचेतन प्रतीत होती है। वह उसके इतनी निकट है कि उसकी अनुभूतियों से प्रभावित होती है। प्रसन्नता मे उसके साथ उल्लसित होती है तो विषाद मे उसके साथ अश्रु बहाती है, कभी सयोगमुग्धा है तो कभी विरह-विदग्धा। मानव के ही समान उसे भी भय, शोक, करुणा की अनुभूति होती है। सस्कृत साहित्य मे प्रकृति के सवेदनात्मक रूप के बड़े सुन्दर चित्र खीचे गये हैं। इनमे कवि कालिदास के चित्र सबसे सुन्दर बन पड़े है। देखिये शकुन्तला को पतिगृह जाते देख-कर प्रकृति भी कितनी दुःखी है। मृगों ने दूर्वा खाना छोड दिया है, मयूरों ने नृत्य बन्द कर दिया है, लता पीतपत्रों को गिराती हुई अश्रु-पात कर रही है।

सवेदनात्मक रूप

उद्गलितदर्भकवला मृगय परित्यक्तनर्तना मयूराः
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता[2]

वाल्मीकिरामायण मे भी हम प्रकृति का सवेदनात्मक रूप देख सकते हैं। रावण द्वारा हरण करके ले जाती हुई सीता का रुदन सुनकर प्रकृति भी विभिन्न प्रकार से अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करती है। वृक्ष सीता को आश्वासन देने का भाव व्यक्त करते हैं, झील निराशा का और अन्य वन-चर पशु, व्याघ्र, सिंह, मृग इत्यादि रोष का, पर्वत झरनो के रूप में रुदन करते हुए अपने शिखर रूपी हाथों को उठाकर जोर-जोर से चीत्कार करते हैं।[3]

प्रकृति का यह सवेदनात्मक तथा मानवीकृत रूप जितनी बहुलता से सस्कृत साहित्य में प्रयुक्त देखा जा सकता है, उतनी ही प्रचुरता से आधुनिक

१. साकेत पृ० १३८
२ अभिज्ञानशाकुन्तल, ४, १२
३. वा० रा०, अ० का०, ५२, ३४-३७

काल में प्रबन्ध और मुक्तक सभी काव्यों में समान रूप से देखा जा सकता है। देखिये जिस प्रकार वाल्मीकिरामायण मे सीताहरण से प्रकृति मे दुःख, शोक और क्रन्दन देखा जा सकता है, उसी प्रकार आधुनिक काल मे विरहिणी यशोधरा को दुःखी देख प्रकृति भी अपना शोक किस प्रकार व्यक्त कर रही है —

> अति दुखिता धरा भी पिगला हो गयी थी,
> स-दुख पवन के ये आ रहे मद झोंके।
> सकल गगन नीला शोक से हो गया था,
> करुण क्रंदन, हा हा! निर्झरों ने मचाया।[१]

इसी प्रकार अन्यत्र भी वन में सीता का दुःखपूर्ण क्रन्दन सुनकर मयूर इत्यादि वनचर व्यग्र हो जाते हैं,[२] मनु के चले जाने से दुखी श्रद्धा की दुःखगाथा को सुनकर पर्वत भी रोमांचित हो जाते हैं[३], कृष्ण-विरह की आशंका से दुःखी यशोदा के साथ रजनी भी अनुताप करती है[४]। इसी प्रकार हल्दीघाटी के युद्ध के विभीषक वातावरण को देखकर दुःखी सूर्य जब अपनी रुलाई नही रोक पाता है तो छिप जाता है।[५] मीरों के वैधव्यजन्य दुःख की पीडा से

---

१. सिद्धार्थ, पृ० १६२

२. "केका रुकी केकिनी की भी व्यग्र हुए सब प्राणी।
करुण भरी सीता की सुनकर रोदन वीणा वाणी।
—रामचरित चिन्तामणि, पृ० ३५५

३ तृण-गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुख की गाथा।
श्रद्धा की सूनी सांसो से मिल कर जो स्वर भरते थे।
—कामायनी, पृ० १७६

४. फूलों पत्तों सकल पर हैं वारि बूंदें दिखातीं।
रोते हैं या विटप सब यों आंसुओं को दिखा के।
रोई थी जो रजनि दुख से नन्द की कामिनि के।
ये बूंदें हैं, निपतित हुई या उसी के दृगों से।
—प्रियप्रवास, ५, ५

५ मुख छिपा लिया सूरज ने, जब रोक सका न रुलाई।
सावन की अन्धी रजनी, वारिद मिस रोती आई॥
—हल्दीघाटी, पृ० २५४

प्रकृति भी संतप्त है। भूप्रतप्त है, पवन सिसकी भर रहा है, दादुर और चातक भी शोकमग्न हैं।[1]

उद्दीपन रूप में

कविगण उद्दीपन के रूप में भी प्रकृति वर्णन करते रहे हैं। प्राकृतिक उपादान जो विशेष मनःस्थिति मे मानव को प्रियकर प्रतीत होते हैं परिवर्तित मनःस्थिति मे दुःख और व्यथा के विवर्द्धक बन जाते हैं। वास्तव मे प्रकृति के उपादान परिवर्तित नहीं होते हैं, अपितु मानव मन अपनी सुखात्मक अथवा दु खात्मक स्थिति मे अपनी मनोभावना के अनुकूल भिन्न-भिन्न प्रभाव ग्रहण करता है। शृङ्गार-वर्णन के प्रसग में ही प्रकृति के उद्दीपक प्रभाव का वर्णन विशेष रूप से किया जाता रहा है। शास्त्रीय दृष्टि से भी शृङ्गार-वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का उद्दीपक रूप विशेष महत्त्व रखता है। विविध समय मे पिक का पचम स्वर, चद्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना, घन-गर्जन, मयूर-नर्तन, पक्षी-कलरव, विभिन्न पुष्पों से लता कुंजों का अच्छादन इत्यादि विविध प्राकृतिक उपकरणों को उद्दीपक के रूप मे चित्रित किया जाता है। सयोग और वियोग दोनो ही स्थितियो मे ये पदार्थ कामभाव को उद्दीप्त करने वाले हैं। सयोग काल मे ये प्रणयियो के कामभाव को जाग्रत कर उनके उल्लास और आनन्द को और अधिक बढा देते हैं तथा वियोग काल में उनकी कामव्यथा को सवर्द्धित कर दु खी करते हैं।

संस्कृत साहित्य में प्रकृति के आलबन रूप से भी अधिक सुन्दरता और मार्मिकता से प्रकृति के उद्दीपक रूप का चित्रण किया गया है। वाल्मीकि

---

१. तापित भू भी आँसू से
अपना अचल भर लेती
अविरल चीत्कार मचाता
दुख से बेसुध हो दादुर
नतमस्तक बैठे रहते
हो मौन विहग शोकातुर।
सिसकी भर-भर विटपी से
लड़खड़ा पवन टकराता
चातक दारुण पीड़ा से
अविरल हो रुदन मचाता।

—मीरां, पृ० १५२

रामायण में वियोगी राम को शरद्काल में पुष्पित बाण तथा उन पर गुंजार करते हुए भ्रमर अपने उद्दीपक प्रभाव के कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो काम-देव ने अपना प्रचंड चाप धारण कर लिया है।[1] 'शिशुपालवध' में भी वसन्त का उद्दीपक प्रभाव चित्रित है। यहाँ वसन्त कामी पुरुषों के कामभाव को बढ़ा रहा है।[2] संस्कृत नाटकों में एवं चम्पुओं में भी प्रकृति के उद्दीपक प्रभाव की सुन्दर योजना की गयी है। मुक्तक काव्यों में भी उद्दीपक रूप का चित्रण किया गया है, विशेष रूप से संस्कृत के ऋतुकाव्यों की तो यह एक प्रमुख विशेषता रही है। 'ऋतुसंहार' में तो सभी ऋतुओं के उद्दीपक प्रभाव की व्यंजना हुई है। हम कह सकते हैं कि संस्कृत में उद्दीपन के रूप में प्रकृति का वर्णन करने की बड़ी समृद्ध परम्परा रही है।

अगर हम हिन्दी साहित्य पर दृष्टि डालें तो अवगत होगा कि रीतिकाल में प्रकृति के उद्दीपक रूप का प्राचुर्य रहा है। आधुनिक काल में यह परम्परा प्रबन्धों में ही विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। आधुनिक महाकाव्यों में संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में वर्षा के उद्दीपनकारी रूप का चित्रण हुआ है। 'कामायनी' में श्रद्धा के साथ संयोग सुख में मग्न मनु को निशामुख चन्द्र की सुधामय चन्द्रिका, व्योमचुम्बन में व्यस्त शिखर, सूर्य की अन्तिम किरण का अस्त होना, प्रकृति का यह स्वप्न-शासन सुंदर प्रतीत होता है, इसमें वे विभोर हो जाना चाहते हैं।[3] 'वर्द्धमान' में वर्षा-ऋतु आकार नृपाल और रानी के कामभाव को उद्दीप्त करती है। इसी प्रकार 'सिद्धार्थ' के आठवें सर्ग में वर्षा का वर्णन भी उद्दीपन रूप में है। अन्य काव्यों में प्रकृति का विरहकालीन उद्दीपन रूप देखा जा सकता है। पार्वती, सिद्धार्थ, नलनरेश काव्यों में वसंत का वियोगोद्दीपक प्रभाव चित्रित है। 'दमयंती' में ग्रीष्म, पावस, शरद् ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। 'साकेत' में विविध ऋतुएँ आकर वियोगिनी उर्मिला के हृदय में भिन्न-भिन्न भावों की सृष्टि करती हैं। इन काव्यों के प्रकृति के उद्दीपक रूप के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है। जैसे 'सिद्धार्थ' में प्रातःकालीन लालिमा और कलरव का उद्दीपनकारी प्रभाव इस प्रकार देखा जा सकता है—

---

१. वा० रा०, किष्कि० कां० ३०, ५६

२ शिशुपालवध, ६, २० एवं ३२

३ कामायनी, पृ० ८७-८८

श्रवण में घुसता स्वर-शूल सा
विहग का मृदु गायन उग्र हो
अनल के सम दाहक हो गई
अलि प्रफुल्लित कोकनदावली
गगन की वह सुन्दर लालिमा
निधन की भयदा रसना बनी,
सरित की लहरें असु–लेहिनी
लहरने लगु व्यालिनि-सी लगीं[1]

इसी प्रकार चन्द्र की शुभ्र ज्योत्स्ना भी, जो संयोग-काल में आह्लादक प्रतीत होती है, विरह में विपरीत प्रभाव का द्योतन करते हुए विरहियों को कष्ट-प्रद प्रतीत होती है। चन्द्र के इसी पीडक रूप का चित्रण करते हुए कवियों ने विरह में चन्द्रोपालम्भ की योजना भी की है। कालिदास, श्रीहर्ष इत्यादि के काव्यों मे विरह-वर्णन के अन्तर्गत चन्द्रोपालम्भ को स्थान मिला है। नैषधकाव्य में नल के विरह में दमयन्ती को वियोग से ज्वलित करते हुए चन्द्रमा के प्रति दमयन्ती का कटु उपलांभ व्यक्त हुआ है।[2] आधुनिक महाकाव्यों में भी कहीं-कहीं चन्द्रोपालम्भ की योजना देखी जा सकती है। 'नलनरेश' में नल के वियोग में दुःखी दमयन्ती को चन्द्रमा प्रज्वलित करता हुआ सा प्रतीत होता है:—

सखियों कलंकी चन्द्र को किसने सुधाकर है कहा?
यह ज्ञात होता है मुझे सो अग्नि का गोला महा
जो अंशुएँ इसकी कुमुद को खूब हैं हर्षा रहीं
वे प्रज्वलित अगार मुझ पर आज क्यों वर्षा रहीं?[3]

---

१. सिद्धार्थ, पृ० १८६

२. "निशि शशिन्भज कैतवभानुतामसति भास्वति तापय पाप माम।
अहमहन्यवलोकयितास्मि ते पुनरहर्पतिनिह्नुतदर्पताम् ॥
अर्थात् हे पापी चन्द्र, रात में तू सूर्य के भेष में सूर्य की अनुपस्थिति में मुझे जला ले परन्तु जब दिन होगा, मैं देखूंगी कि तेरा दर्प सूर्य द्वारा कैसे अपहरण किया जाता है।
—नैषध, ४, ५४

३. नलनरेश ५, १२

'साकेत' की उर्मिला का भी चन्द्र के प्रति यही उपालम्भ है कि वह उस की वियोगजन्य ज्वाला को बढा रहा है :—

> सखि, मेरी धरती के करुणांकुर ही वियोग सेता है,
> यह औषधीश उसको स्वकरो से अस्थिसार देता है।[1]

अप्रस्तुत विधान के रूप में

प्रस्तुत भाव, क्रिया अथवा बाह्य-सौन्दर्य सम्बन्धी विशिष्ट प्रभाव की व्यंजना के लिए कवि साम्य-प्रदर्शक अप्रस्तुतों की योजना करते आये हैं। ये अप्रस्तुत मूलतः प्रकृतिगृहीत होते हैं। संस्कृत कवियों ने अप्रस्तुत-विधान के क्षेत्र में प्रकृति-गृहीत अप्रस्तुतों का एक सुन्दर और समृद्ध कोष आगे के कवियों के लिए उत्तराधिकार के रूप में छोड़ा है। विशेषतया नारी सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त उपमान तो मानो ये कवि प्रकृति के विशाल प्रागण से चुन-चुन कर लाये हैं और इन उपमानो की उपयुक्तता और सौन्दर्य ने इन्हें रूप-वर्णन के क्षेत्र में स्थायित्व प्रदान कर दिया है। संस्कृत साहित्य में कालिदास और उनके पूर्ववर्ती कवियों की अलंकार योजना बडी सार्थक बन पड़ी है। कालिदास के अप्रस्तुत तो 'उपमा कालिदासस्य' के रूप में प्रसिद्ध हैं। कालिदास ने प्रकृतिगृहीत उपमानों की सहायता से भाव, गुण, सौन्दर्य अथवा स्थितिविशेष को बड़े प्रभावकारी ढग से चित्रित किया है। इनके काव्यों और नाटकों सभी में यह सौन्दर्य द्रष्टव्य है। देखिये 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी के चले जाने पर भी पुरुरवा की समस्त अन्तश्चेतना के उर्वशी की ही ओर लगे रहने के भाव को अप्रस्तुतों के साहाय्य से कितनी सुन्दरता से उपस्थित किया है :—

> एषा मनो मे प्रसभं शरीरात् पितुः पदं मध्यमभुत्पतन्ती।
> सुरागना कर्षति खण्डिताग्रात्सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥[2]

अप्रस्तुत उपमान और प्रतीक दोनों ही रूपों मे प्रयुक्त होते हैं। जैसा कि हम अन्यत्र भी स्पष्ट कर चुके हैं कि आलोच्य काव्यों में रूप-वर्णन के प्रसंगों में तो सभी परम्परागत एव रूढ़ प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग ही किया गया है। छायावादी कवि प्रसाद के अप्रस्तुत तो कालिदास की टक्कर के हैं। 'कामायनी' के निम्नलिखित छन्द में केवल प्राकृतिक अप्रस्तुतो की सहायता से ही वियोगिनी श्रद्धा की स्थिति को चित्रित कर दिया गया है :—

---

१. साकेत, पृ० २८०
२. विक्रमोर्वशीय, १, २०

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ।
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरण कहाँ चाँदनी रही,
वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ।[1]

वास्तव मे मानव की प्रकृति इतनी परिवर्तनशील और अस्पष्ट है कि उसे कुछ सीमित शब्दों के द्वारा स्पष्ट नही किया जा सकता है, पर प्रतीको के माध्यम से तो मानो उसके विषय मे कुछ न कहकर भी सब कुछ कह दिया जाता है। 'मीरां' महाकाव्य मे कवि ने प्राकृतिक प्रतीको के द्वारा नर और नारी की अन्त:प्रकृति की भिन्नता को कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है :—

तुम नारी हो, हृदय तुम्हारा
तुहिन कणों से बना हुआ है
मानस के निर्मल अम्बर में
इन्द्र धनुष सा तना हुआ है
किन्तु पुरुष का अन्तर भी तो
घोर घटाच्छादित अम्बर है
उसको उमड़ घुमड़ का गर्जन
महाभयंकर अजर अमर है।[2]

इसमें 'तुहिन कण', 'इन्द्रधनुष', 'घोर घटा', 'उमड़ घुमड़' एवं 'गर्जन' ये सभी अपने मे कई भावों के प्रभाव को समाहित किये हैं।

विवेच्य काव्यों के प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध मे एक अन्य उल्लेख्य तथ्य यह है कि जिस प्रकार ये वर्णन संस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त विभिन्न शैलियो से प्रभावित हैं उसी प्रकार वर्ण्य-विषयों के ग्रहण की दृष्टि से भी ये संस्कृत साहित्य के आभारी रहे हैं। जहाँ प्रसाद, द्विरेफ, गुरुभक्तसिंह जैसे कवियो के प्रकृति-वर्णन मौलिकता और सूक्ष्मदर्शिता के परिचायक हैं वहाँ अन्य कवियो की दृष्टि प्रकृति के उन्मुक्त प्रागण की ओर न जाकर संस्कृत काव्यो की ओर गयी है। ये प्रकृति तक पहुँचे अवश्य है, पर संस्कृत काव्यो के माध्यम से। आचार्य शुक्ल द्वारा

विषय ग्रहण

१. कामायनी, पृ० १७३
२. मीरां महाकाव्य, पृ० २४

हिन्दी कवियों के सम्बन्ध में कहे गये ये वाक्य इन कवियों की प्रवृत्ति पर अच्छा प्रकाश डाल सकते हैं "किस ऋतु में क्या-क्या वर्णन होना चाहिए, इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया 'आप्त' शब्द हुआ। वर्षा के वर्णन में जो कदम्ब, कुटज, इन्द्रवधू, मेघगर्जना, विद्युत आदि का नाम लिया जाता है वह इसलिए कि भगवान भरतमुनि की आज्ञा थी। ...... कहना न होगा कि हिन्दी के कवियों के हिस्से मे यही आया। गिनी गिनायी वस्तुओं के नाम लेकर अर्थ-ग्रहण मात्र कराना अधिकतर उनका काम हुआ है। सूक्ष्म रूप-विवरण और आधार-आधेय की सश्लिष्ट योजना के साथ बिम्ब-ग्रहण कराना नही है।"[1] यह तथ्य आलोच्य काव्यों के ऋतु-वर्णन के सम्बन्ध मे विशेष उदग्र दिखलायी पड़ता है। इन काव्यो में वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, हेमन्त इत्यादि ऋतुओं के वर्णनो मे कोई मौलिकता नही है, संस्कृत ऋतु-वर्णनो के विषयों का ही पुनः परिगणन है। यहाँ हम विभिन्न ऋतुओं के वर्णनो पर इस दृष्टि से विचार करेंगे।

वसंत ऋतु

ऋतुराज वसंत संस्कृत-कवियों को जितना प्रिय रहा है उतना ही हिन्दी के कवियों को भी। आधुनिक काव्य-जगत में भी इसका पर्याप्त सम्मान हुआ है, पर इस ऋतु के वर्णन मे कवियों ने सूक्ष्म निरीक्षण की क्षमता का परिचय न देकर केवल उन्हीं परम्परागत वस्तुओं का उल्लेख मात्र करके वर्णन की इतिश्री कर दी है जिनका वर्णन संस्कृत कवियों द्वारा किया जाता रहा है। आलोच्य कवियों ने इस ऋतु के वर्णन में सूर्य का उत्तरायण होना,[2] ऋतुराज के आगमन से शीतहत वनस्पति जगत में नवचेतना का सचार,[3] वृक्षों मे नवकिसलयागम,[4] त्रिगुणोपेत दाक्षिणात्य मलय पवन का प्रवाहित होना,[5]

१. चिन्तामणि, भाग २, पृ० २२
२. पार्वती, पृ० ११६; नलनरेश; १६, १३, साकेत पृ० २६०
३. दमयन्ती, पृ० ६
४. प्रियप्रवास १६, ६; वैदेही-वनवास १४, ४; दमयन्ती पृ० ६; कृष्णायन, पृ० १४०
५. प्रियप्रवास १६. १४; वैदेही-वनवास १४, २; वर्द्धमान ७, १२; साकेत पृ० २६१; सिद्धार्थ पृ० २४०, पं० १७-२०; कृष्णायन पृ० १४०

कोकिल का कामोद्दीपक पचम स्वर,[1] माम्रमजरियो एव उन पर गुजार करने वाले भ्रमरों की शोभा,[2] पलाश, मल्लिका, माधवी, कर्णिकार, कुन्द, किंशुक, कोविदार, कचनार, केसर, चम्पा, तिलक, कुरबक, अशोक, वकुल, तमाल, हिंताल, कदम्ब, इत्यादि नाना प्रकार के वृक्षों की पुष्पसज्जा इत्यादि का उल्लेख ही प्रमुख रूप से किया है। इस सबध में इन कवियों की दृष्टि बडी सीमित रही है। जिन तत्त्वो मोर तथ्यो का उल्लेख इन कवियो ने किया है वे एक तो काव्याचार्यो[3] के निर्देश के अनुकूल हैं, दूसरे सस्कृत काव्यों[4] में वसत-वर्णन के सदर्भ में इन्हीं का उल्लेख होता रहा है।

ग्रीष्म ग्रीष्म ऋतु में प्रचड मार्तण्ड,[5] उष्ण वात,[6] गर्मी से व्याकुल जतुमों का शीतल स्थान खोजकर बैठना,[7] शत्रु प्राणियों का ग्रीष्म से व्याकुल हो परस्पर शत्रुता भुला बैठना,[8] सरिताओ एव सरोवरों का जल सूखना,[9] दिन-सवर्द्धन एव रात्रि-विघटन[10] इत्यादि का उल्लेख भी वस्तुत 'प्रत्यक्ष' अनुभव के माधार पर न होकर सस्कृत लेखकों के 'माप्त' शब्दों के माधार पर हुमा है।

---

१. वैदेही वनवास, १४, २५; प्रियप्रवास १६, १३; पार्वती पृ० ११८

२. सिद्धार्थ पृ० १८, प० १ एवं पृ० २२६, वैदेही वनवास, १४, २५, पार्वती, पृ० ११७

३. सुरभौ दोलाकोकिलदक्षिणवातद्रुपल्लवोद्भेदा ।
जातीतरपुष्पचयाम्रमजरीभ्रमरझकारा. ।
—मलङ्कारशेखर, पृ० ५६

४. वाल्मीकिरामायण, किष्कि० का०, सर्ग १, ऋतु सहार ६, १-२८, रघुवश ६, २४-३१, शिशुपालवध ६, २-६

५, नलनरेश, ३, ७

६ दैत्यवश १८, १६; नलनरेश १३, २

७. नलनरेश १३, ८, वर्द्धमान ६, ५-६ एव ८, साकेत सन्त पृ० २६७

८. साकेत सत १०, १२, दैत्यवश १८, १६

६. साकेत, पृ० २६७, दैत्यवश, १८, १६, नलनरेश १३, २

१०. नलनरेश १३, ५, दैत्यवश १८, १६

वर्षा ऋतु में जिन-जिन वस्तुओं का उल्लेख आलोच्य काव्यों में किया गया है वे इस प्रकार हैं—घन-गर्जन[1], विद्युत-कांति[2], निविडान्धकार,[3] मयूर-केका एवं मयूर-नर्तन[4], जल में बलाहक-पंक्ति की शोभा,[5] हरीतिमाच्छादित पृथ्वी पर रक्तिम इन्द्रवधू की शोभा,[6] इन्द्र-धनुष की सुवर्णता,[7] चातकी का कामोद्दीपक स्वर,[8] चक्रवाक-युगल की सकामता,[9] झिल्ली झकार,[10] भेकयूथ निस्वन,[11] वापी, कूप, तडागादि में जल संवर्धन,[12] कदंब,[13] केतक,[14]

वर्षा–ऋतु

---

१ नलनरेश १, १४, प्रियप्रवास १२, ५, वर्द्धमान, २, १६, सिद्धार्थ पृ० १०१

२ प्रियप्रवास २, ४, वर्द्धमान, २,१६, सिद्धार्थ, पृ० १०१, प० ३–४

३ वैत्यवंश १८, २३, सिद्धार्थ, पृ० १०१, प० ४, नूरजहाँ, पृ० ६६, प० १-२

४. प्रियप्रवास, १२,६, वर्द्धमान २, २२, दैत्यवंश, १८, २३, सिद्धार्थ, पृ० १०१, जयभारत पृ० १८४, प० ६

५ सिद्धार्थ, पृ० १०२, प्रियप्रवास १२, २

६ साकेत, पृ० २७२; वैदेही वनवास, ११, ३०, प्रियप्रवास, १२, १२, वर्द्धमान, २, २१, दैत्यवंश, १८, २४, सिद्धार्थ, पृ० १०१, प० ५–८

७ वर्द्धमान, २, २४, दैत्यवंश, १८, २३

८. प्रियप्रवास, १२, १०, जयभारत, पृ० १८४, प० २४, दैत्यवंश १८, २३, सिद्धार्थ, पृ० १०२, प० ५–८

९ वर्द्धमान, २, २६

१०. साकेत, पृ० २७४, सिद्धार्थ, पृ० १०२, प्रियप्रवास, १२, ११

११ प्रियप्रवास, १२, ११, सिद्धार्थ, पृ० १०२, प० १५–१६

१२ नलनरेश, १४, ३, रामचरित चिंता०, १३, ६८, प्रियप्रवास १२, ६

१३. जयभारत, पृ० १८४, प० ४, सिद्धार्थ, पृ० १०१, प० १६, साकेत पृ० २७२, प० १६

१४. साकेत, पृ० २७४, प० १३, सिद्धार्थ, पृ० १०२, प० १०, जयभारत, पृ० १८४

नीप[1] इत्यादि का पुष्पित होना। इन सब के वर्णन की अनिवार्यता आचार्यों ने बतलायी है।[2] संस्कृत के काव्य-ग्रंथों में भी वर्षा ऋतु के वर्णन में इन सबका उल्लेख हुआ है।

शरद ऋतु शरद-ऋतु-वर्णन के अन्तर्गत अगस्त्योदय,[3] पृथ्वी की शुभ्रता,[4] जल की पंकहीनता,[5] शरत्कालीन चन्द्र की निर्मल शुभ्राभा,[6] जल में हंस एवं सारस पक्षियों के मधुर क्रीडा-कलरव,[7] क्रौंचस्वर,[8] खंजन पक्षी की शोभा,[9] मालती,[10] काश,[11] बन्धूक,[12] कमल,[13] कुन्द एवं कुमुद[14] इत्यादि की प्रफुल्लता, धान्य-परिपाक की सुरम्यता,[15] मार्गों में आवागमन का पुनरारम्भ,[16] वृष-शिखी इत्यादि की मत्तता[17] इत्यादि का समावेश विवेच्य महाकाव्यों

---

१. साकेत, पृ० २७३, प० ३
२. वर्षासु घनशिखिस्मयहंसगमा पंककन्दलोद्भेदो।
   जातीकदम्बकेतकझंझानिलनिम्नगाहृतिप्रीति ॥—अलंकार शेखर पृ० ५९
३. प्रियप्रवास, १४, ८६
४. वैदेही वनवास, १०, २; नलनरेश, १५, १, प्रियप्रवास १४, ८१
५ वर्द्धमान, ५, ७, वैदेही वनवास, १०, ६
६. प्रियप्रवास १४, ८८; वैदेही वनवास, १०–३; वर्द्धमान ५, २; कृष्णायन, पृ० ५२
७. साकेत, पृ० २७७, प० १२; प्रियप्रवास १४, ८५; वर्द्धमान ५, ३; कृष्णायन, पृ० ५२ प० १४
८. साकेत, पृ० २७९, प० ■
९. साकेत, पृ० २७७, प० ६; नलनरेश, १५, १५
१०. नलनरेश, १५, ३
११ प्रियप्रवास, १४, ७८; वैदेही वनवास, १०, १०; नलनरेश १५, ३
१२ कृष्णायन, पृ० ५२, पं० १२; साकेत, पृ० २७७, पं० १४
१३ साकेत, पृ० २७७, प० १४; वर्द्धमान ५,५
१४. वर्द्धमान, ५, ३, कृष्णायन, पृ० ५२, पं० १३
१५ दैत्यवंश, १८, २५
१६. पार्वती, पृ० ३९, प० ७-१२
१७. नलनरेश, १५, १५

में देखा जा सकता है। ये वर्णन भी कवियों के सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक न होकर सस्कृत वर्णनों की पुनरुक्ति मात्र हैं। ये वाल्मीकि रामायण[१], ऋतुसहार[२] तथा अन्य संस्कृत महाकाव्यों[3] के शरद-वर्णनों की परम्परा से किंचित भी इधर-उधर नही हैं और न ही सस्कृताचार्यों[४] के आदेश की इन में अवहेलना है।

शिशिर आधुनिक काव्यों में शिशिर ऋतु का वर्णन बहुत ही कम हुआ है, प्रायः नगण्य-सा। सस्कृत में भी इस ऋतु का वर्णन अधिक नही हुआ है। आधुनिक काल में 'साकेत' और 'नलनरेश' काव्यों मे बड़ा सक्षिप्त-सा हुआ है। इन वर्णनों में तीव्र प्रतोदवायु चलने,[५] घने पाले से शीताधिक्य होने,[६] पीतपत्रों के गिरने,[७] धान्य-ईख इत्यादि से खेतों के भर जाने[८] का निरूपण है। ये वर्णन ऋतुसहार[९] से प्रभावित हैं। 'साकेत' में ऋतुसहार के ही प्रभाव रूप में शिशिर-रात्रि में शीतत्रासवश लक्ष्मण-ऊर्मिला का आलिंगनाबद्ध, होना,[१०] उनके भवन का कस्तूरीगन्धापूरित होना[११] भी साकेतिक रूप मे व्यंजित है।

---

१. वाल्मीकि रामायण, किष्कि० का०, सर्ग २८ एवं सर्ग ३०

२. ऋतुसहार, सर्ग ३

३. किरातार्जुनीय, ४, २२-२८, शिशुपालवध, ६, ४४-५४

४. शरदीन्दुरविपटुत्व जलाच्छतागस्त्य हसवृषदर्पा ।
सप्तच्छदवासिताभ्राब्जरुचि शिखिपक्षमदपाता ।
—अलकारशेखर, पृ० ५६

५ साकेत, पृ० २८७, प० २, नलनरेश १८, १

६. साकेत, पृ० २८६, प० १३-१४; नलनरेश, १८, १

७ साकेत, पृ० २८७; प० १२

८. वही, पृ० २८४

९. ऋतुसहार, सर्ग ५

१०. साकेत, पृ० २८४, प० १-४

११. वही, पृ० २८७, प० ९

हेमन्त

आलोच्य काव्यों में हेमन्त ऋतु का वर्णन जिन उल्लेखों से संघटित है वे हैं—हेमन्त ऋतु में सूर्य का दक्षिणायन होना,[१] सूर्य, अग्नि इत्यादि की प्रचंडता कम होना,[२] हैमतिक शर्वरी का सवर्धन[३] एवं दिवस विघटन,[४] हिमवत् शीतल पश्चिम पवन सचार,[५] विषम हिमपात[६] और उससे पद्मिनी का मालशेष होना,[७] हिमकणों से चन्द्र का कांतिहीन होना,[८] खेतो का धान्यापूर्ण होना,[९] हस बक[१०] इत्यादि का स्वर सुनाई पड़ना और कुन्द पुष्प की समृद्धि।[११] हेमन्त ऋतु के इस प्राकृतिक वैभव का दर्शन भी आधुनिक कवियो ने स्वतन्त्र प्रकृति-निरीक्षण के आधार पर न करके सस्कृत ग्रथों के माध्यम से ही किया है। अमर[१२] और केशवमिश्र[१३] आदि आचार्यों ने अपने काव्य-शास्त्रीय ग्रथों मे हेमन्त ऋतु के वर्णन के अन्तर्गत दिन के छोटा होने, शीत, मरुवक, यव इत्यादि की वृद्धि का वर्णन करने की शिक्षा दी है और वाल्मीकि रामायण,[१४] तथा ऋतुसहार[१५] के शरदवर्णनों में उक्त सभी वस्तुओ का व्यापक उल्लेख है।

१. रामचरित चिन्तामणि, १०, ४५
२. मलनरेश, १७, ३; रामचरित चिंतामणि, १०, ४६; वर्द्धमान ६, १४; वैदयवश १८, २६
३. मलनरेश, १७, ६; रामचरित चिंता०, १०, ५०, वर्द्धमान, ६, १०; वैदयवश १८, २६
४. मलनरेश १४, २
५. मलनरेश १७, ४
६. साकेत, पृ० २८६, प० १३-१४, मलनरेश १७, ६ वैदयवश, १८, २६
७. साकेत, पृ० २८४, प० ९-१०; रामचरित चिंतामणि, १०, ४८
८. रामचरित चिंतामणि, १०, ४७
९. साकेत, पृ० २८४
१०. रामचरित चिंतामणि, १०, ४६
११. वर्द्धमान, ६, १३
१२. 'हेमन्ते दिनलघुता शीतयवस्तम्बमरुवकहिमानि'—काव्यकल्पलतावृत्ति, पृ० २६
१३. 'हेमन्ते दिनलघुता मरुवकयववृद्धिशीतसपत्ति'—अलकारशेखर, पृ० ५६
१४. वाल्मीकि रामायण, अ० कां०, स० १६
१५. ऋतुसहार, सर्ग ४

वास्तविकता तो यह है कि सस्कृत के प्रकृति-वर्णनो के अगाध सागर के कुछ मुक्ता यहाँ चुन कर रख दिये गये हैं। 'साकेत' मे तो ऋतुसहार के ही प्रभावस्वरूप इस ऋतु मे स्त्रियों का कालागरु की सुगध से सुवासित होना[1] और तेल मलवाना[2] इत्यादि भी वर्णित है।

प्रत्यक्ष प्रभावात्मक स्थल आलोच्य काव्यो मे प्रकृति-वर्णन से सबन्धित स्थलों पर सस्कृत ग्रथो का अनुवादात्मक प्रभाव भी दिखलाई देता है। 'रावण महाकाव्य' के प्रथम सर्ग मे कवि ने विध्याटवी का वर्णन किया है। इस वर्णन म उक्त अटवीगत दृश्यो की स्थानगत विशेषता को चित्रित करने के लिए कादम्बरी के कथामुख मे वर्णित विध्याटवी वर्णन का सहारा लिया गया है। 'रावण' काव्यानुसार पूर्वी और पश्चिमी घाटो के बीच फैली यह अटवी मध्यदेश की विभूषणरूपा है तथा पृथ्वी की मेखलाभूत है। यहाँ मदमत्त कुरर पक्षी मिर्च के पत्तों का दशन करते रहते हैं, करि-कलभों की सूडो से मसले गये तमाल के पत्तो की सुगन्ध चारों ओर फैली रहती है तथा मदिरा के मद से रक्तवर्ण हुए बालाओं के कपोल के समान अरुण कान्तिवाले पत्तो से इसकी भूमि आच्छादित रहती है:—

बन्दनीय भारत के मध्य कटि भाग माहि,
राजै विन्ध्य भूधर की अटवी सुहाई है।
पूरबी औ पश्चिमी सुघाटनि लौं फैली फबि,
सुषमा न जाकी सारदा पै जाति गाई है।
मानो मध्य-देस को विभूषन यहै है चारु,
कैधौं मजु मेखला मही को पहराई है।[3]

तथा

मद माते कुरिल कुतरि मिरचानि डारै
त्यों ही करि-कलभ तमाल मसल्यो करै।
सुण्डा दण्ड घातनि सों किसलै खसि डारै

१. साकेत, पृ० २८३, प० ११-१२ एव ऋतुसहार ४-५
२ वही, पृ० २८४, प० १ २ एव ऋतुसहार, ४, १८
३ रावण, १,२

जासो सुरबंनो तौलो गंधि वगर्‌यो करे
छाके मद ग्रांसोमाला-वार वर वालनि कै,
ग्ररुन कपोलनि की समता कर्‌यो करे ।
ऐसे पत्र जालनि सौं छादित जहाँ की भूमि,
जन-मन-मानस में ग्रानद भर्‌यो करे ।[1]

उक्त वर्णन में कादम्बरीगत विंध्याटवी-वर्णन की इन पंक्तियों का प्रतिबिंब स्पष्ट है:—

ग्रस्ति पूर्वापर-जलनिधि-वेलावलग्ना मध्यदेशालंकारभूता मेखलेव भुव ।....... मदकल-कुररकुल-दश्यमान्-मरीच-पल्लवा, करिकलभ-करमर्दित-तमालकिसलयामोदिनी, मधुपदोपरक्त-केरली कपोल कोमलच्छविना सचरद्वनदेवता-चरणालक्तक-रस-रजितेनेव पल्लवचयेन सच्छादिता........विंध्याटवी नाम ।[2]

ग्रालोच्य काव्यों मे ऋतुवर्णन के कुछ प्रसगों में भी संस्कृत का भावानुवाद हुग्रा है । 'पार्वती' के निम्नोक्त छद में वसतकालीन दाक्षिणात्य पवन के सबंध मे कालिदास के एक भावचित्र को ही यथावत् चित्रित कर दिया गया है । यह भावचित्र है कि वसंत ग्राते ही रवि दक्षिण दिशा को छोडकर उत्तरायण हो गया है । इस समय जो मलय पवन चल रहा है वह ऐसा प्रतीत होता है मानो दक्षिण दिशा ग्रपने प्रियतम रवि के दूरगमन के कारण विरहोच्छ्‌वास भर रही है । साम्य के लिए दोनों ग्र थो से ग्र श उद्धृत हैं:—

'पार्वती' में—

समय ग्रतिक्रमण कर प्रिय रवि के दूर गमन से दीना,
भरती विरहोच्छ्‌वास ग्रनिल मे दिग् दक्षिणा मलीना ।[3]

'कुमारसभव' में—

कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिश्वासमिवोत्ससर्ज ।।[4]

---

१. रावण, १, ३
२. कादम्बरी, कथामुख, विंध्याटवी वर्णन, पृ० ५५-५६
३ पार्वती, पृ० ११७
४. कुमारसभव, ३, २५

इसी प्रकार 'पार्वती' में ही एक अन्य वसतसबधी चित्र 'कुमारसम्भव' के प्रभाव को स्पष्ट कर रहा है, जहाँ रसाल-मंजरियों को कामदेव के बाण, नवकिसलयों को बाण के पुंख, गुंजित भ्रमरों को अस्त्रों की झंकार बताते हुए रसालों को काम के अस्त्रागार के समान बताया है —

नव प्रवाल के पत्र-पुंख से संयुत शोभा वाले,
मदन-बाण की मंजरियों से पूर्ण नवीन निराले,
अस्त्रागार समान काम के बने रसाल रसीले,
अस्त्रों की झंकार सदृश थे गुंजित भ्रमर हठीले।[1]

'कुमारसम्भव' में यह कल्पना अपने मूल रूप में इस प्रकार है —

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्ति नवचूतबाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य।[2]

ऊपर हमने आलोच्य काव्यों के कुछ प्रकृति-सम्बन्धी चित्रों पर संस्कृत के स्पष्ट प्रभाव का अवलोकन किया है। उक्त निर्दिष्ट स्थल तो ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इन पर संस्कृत ग्रंथों के अमुक अंशों का ही प्रभाव है।

अन्य स्थल

इन अंशों के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे स्थल भी विवेच्य काव्यों में देखे जा सकते हैं जिनके विषय में पूर्णतया निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता है कि इन पर संस्कृत के किसी विशेष वर्णन का प्रभाव ही है पर यह सम्भावना अवश्य की जा सकती है कि इन प्रसंगों की रचना करते समय कवियों के मस्तिष्क में संस्कृत कवियों की कुछ विशिष्ट कल्पनाएँ ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में अवश्य रही होंगी। इस प्रकार के प्राकृतिक बिंब द्रष्टव्य हैं। जैसे 'कृष्णायन' में चन्द्रोदय काल का वर्णन करते हुए कवि यह चित्र उपस्थित करता है कि इस समय आकाश में तारे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो पश्चिम समुद्र में सूर्य के गिरने से उछले हुए जलबिन्दु हैं तथा विगलित लालिमावाला चन्द्रबिंब व्योम-सरिता के जल में स्नात गतसेंदुर सुरकुंजर सा प्रतीत होता है —

फूली सन्ध्या, भानु मुख, अवनत सलिल निज भाल,

1. पार्वती, पृ० ११५
2. कुमारसंभव, ३, २७

बूडेउ पश्चिम वारनिधि, पतन-सलज्ज बिहाल।
गिरत जलधि जल बिन्दु उछारे, बिखरे सोइ व्योम जनु तारे।

+ + +

क्रम क्रम विगलित उदय-ललाई, परेउ निशापति बिम्ब सरायो
मानहुँ मज्जत व्योम-सरति जल, गत सेंदुर सुर-गज कुंभस्थल।[1]

इस चित्र को पढते ही कादम्बरी का तत्सम चित्र सामने आ जाता है —

"अपर-सागराम्भसि पतिते दिवस करे तत्पतन-वेगोत्थितम्
अम्भ शीकर-निकरमिव तारागणमम्बरम् अधारयत्।.... ......
विगलितसकलोदयराग रजनिकर-बिम्बमम्बरापगावगाह धौत-
सिन्दूरमैरावत-कुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत।"[2]

'कृष्णायन' और 'कादम्बरी' के इन दोनों वर्णनों में कल्पना का ही नहीं प्रयुक्त शब्दों और अलंकार तक का साम्य दृष्टिगत है।

'दैत्यवश' काव्य मे भी चन्द्रोदयसम्बन्धी एक अन्य कल्पना 'कादम्बरी' से प्रभावित प्रतीत होती है, जहाँ चन्द्र रूपी सिंह द्वारा तम रूपी गज के कुंभ-स्थल को विदीर्ण कर उसमे से धवल नक्षत्र रूपी मुक्ता विकीर्ण करने का वर्णन है:—

मृगपति-सरिस निसक निसाकर कानन गगन विहारी।
मुकता-नखत बिखेरि दियो नभ-तम-गज-कुंभ विदारी।[3]

यह कल्पना 'कादम्बरी' की इस पंक्तियों का प्रभाव लक्षित करती है—

"तत शशि–केशरि–कर–नखर–विदार्यमाण–तमः–करि–कुम्भसम्भवेन मुक्ताफलक्षोदेनेव धवल–तामुपनीयमानम्'... दिगन्तरमदृश्यत।[4]

उक्त दोनों कल्पनाएँ पर्याप्त साम्य रखती हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि कादम्बरी में दिशाओं को मुक्ताचूर्ण की धवलिमा से युक्त बताया गया है

१ कृष्णायन, पृ० ८०
२ कादम्बरी, पू० भा०, हारीतादिप्रश्नवर्णनम्, पृ० १४५ एवं १४८
३. दैत्यवश, १२, ४
४. कादम्बरी, पू० भा०, महाश्वेतायाः स्वविषयालो० वर्णनम्, पृ० ८७१

ग्रौर 'कृष्णायन' में नक्षत्रों को ही मुक्तारूप कहकर कल्पना को और अधिक सार्थक बना दिया है।

रात्रि के अभिसारिका रूप की कल्पना भी आलोच्य काव्यों में नयी नहीं है। 'दमयन्ती' काव्य में उप काल का वर्णन करते हुए कवि ने रात्रि को अभिसारिका बताया है जो कि प्रात काल होते ही अपने प्रणयी चन्द्र को छोड़कर चली जा रही है, यह देखकर विधु मूर्छित सा हो रहा है —

चल पड़ी रात, नभ-वदन हुआ पीला सा
पृथ्वी अवल पट हरित हुआ गीला सा।
यह सुअभिसारिका गई चिह्न ये छोड़े।
हत-प्रभ से तारे उसे पकड़ने दौड़े।
मूर्छित सा विधु हो गया न यह सह पाया।[1]

'अगराज' के कवि ने भी यामिनी का अभिसारिका रूप चित्रित किया है पर यह प्रात काल के समय जाती हुई अभिसारिका न होकर सध्यावसान के समय आती हुई सुवासिनी, प्रनयवती अभिसारिका है।[2] रात्रि की यह मनोहर कल्पना भी आधुनिक कवियों की अपनी प्रतीत नहीं होती है। सस्कृत काव्यों म भी रात्रि का सुन्दर अभिसारिका रूप देखा जा सकता है —

शिशिरकिरणकान्त वासरान्तेऽभिसार्य
श्वसनसुरभिगन्धि साम्प्रत सत्वरेव।
व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखांगरागं
परिमलितमनिन्द्यंरम्यराम्त वहन्ती ॥
+ + + +
अयमपरदिशोऽङ्के मु चति स्रस्तहस्तः
शिशयिषुरिव पाण्डु म्लानमात्मानमिन्दु ॥[3]

इसी प्रकार वर्षा को देखकर युद्ध की कल्पना करना तथा शरद-ऋतु को सुन्दरी के रूप मे कल्पना भी आधुनिक काव्यों मे सस्कृत-प्रभाव को ही प्रदर्शित कर रही है। वर्षाकालीन घोर गर्जना करने वाले मेघों को मदमत्त कुजर

---

१. दमयन्ती, पृ० ५८
२ अगराज, १४, ५४
३. शिशुपाल वध, ११, २२-२३

तथा तीक्ष्णधारा को वर्षाधारा के समान बतलाते हुए नलनरेशकार इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

धनन धनन कर नील गगन में जो घन आते जाते थे,
वे न मेघ थे, किन्तु मनोहर सुर-कुंजर मदमाते थे।[1]

+ + +

इन्द्रधनुष का दृश्य न था, वह चढ़ा हुआ था धनु सुन्दर
वे थीं वर्षा की न बिन्दुएँ, बाण-वृष्टि थी वह अतितर।[2]

आलोच्य कवियों के इस वर्णन को भी संस्कृत के प्रभाव से पृथक नहीं देखा जा सकता है। 'वाल्मीकि रामायण' और 'ऋतुसंहार' में भी तद्वत कल्पना देखी जा सकती है:—

गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा
मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्था.।[3]

बलाहकाश्चाशनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तडिद्गुणम्
सुतीक्ष्णधारापतनोग्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम्[4]

आश्रम-वर्णन

आलोच्य काव्यों में आश्रम-वर्णन भी प्रसंगानुसार आए हैं। इन वर्णनों को प्रकृति-वर्णन से भिन्न नहीं किया जा सकता है। ये एक प्रकार से इसके अंगभूत ही हैं। इन वर्णनों में प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन ही विशेष रूप से हुआ है। 'कृष्णायन'[5] में सांदीपन मुनि के आश्रम का, 'वैदेही-वनवास'[6] में वसिष्ठ के आश्रम का, 'रामचरित चिंतामणि'[7] में भारद्वाज मुनि के आश्रम का तथा

---

१. नलनरेश १, १४
२. वही, १४, २
३. वाल्मीकि रामायण, किष्कि० कां० २८, २०
४ ऋतुसंहार, २, ४
५. कृष्णायन, पृ० १०१
६. वैदेही वनवास, ८, १—१४
७. रामचरित चिंतामणि, ८,१४-२३

'रावण'[1] और 'रश्मिरथी'[2] में क्रमश मुनि विश्रवा और परशुराम के आश्रमों का वर्णन हुआ है। इन वर्णनो मे आश्रम के बाहर नि शक घूमते हुए या रोमथन करते हुए मृगो का,[3] इगुदिफल कूटने से चिकने हुए पाषाणों का,[4] चीवर लटकने से झुकी हुई टहनी वाले वृक्षों का,[5] स्वाभाविक शत्रुता छोडकर निश्चिन्त विहार करते हुए गाय और बाघ, सर्प और मयूर, सिंह और मृग इत्यादि पशुओ का,[6] हवन सामग्री से धूमायित एव सुवासित वातावरण का,[7] वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ करते हुए ब्रह्मचारियो का[8] तथा शुभ *सिद्धात वाक्यों एव मन्त्रो का उच्चारण करते हुए शुकसारिकाओं[9] का* चित्रण पूर्णतया सस्कृत ग्र थो में आए आश्रम-वर्णनो की अनुकारिता में हुआ है।

प्रत्यक्ष प्रभाव

कहीं-कहीं इन वर्णनो पर सस्कृत ग्र थो के एतद्विषयक वर्णनों का प्रत्यक्ष प्रभाव भी परिलक्षित होता है। किसी किसी स्थान पर तो सस्कृत के भिन्न-भिन्न ग्र थो मे आए वर्णनो के आधार पर भानुमती का कुनबा जोडने का प्रयास भी किया गया है। जैसे 'रावण' मे मुनि विश्रवा के आश्रम का वर्णन करते हुए 'रघुवश और कादम्बरी' दोनो से ही उल्लेख्य वर्णनाशों को खोज कर लाया गया है। 'रावण' काव्य के इस आश्रम-वर्णन मे मृगों के झुण्डों का विश्वासपूर्वक विचरण करना, विहगो का वृक्षों के थाँवलो मे भरे जल को तृप्त होकर पीना

---

१. रावण, २,२६–२६

२ रश्मिरथी, पृ० ११

३. रावण, २, २६

४. रश्मिरथी, पृ० ११

५ वही, पृ० ११

६ वैदेही वनवास, ८, ६-१२; रामचरित चिंतामणि, ८, १५-१८; रावण, २, २७,

७ कृष्णायन, पृ० १०१, रावण, २, २६, वैदेही वनवास, ८, १३

८. वैदेही वनवास, ८, १०, रामचरित चिंतामणि, ८, २१

९. रामचरित चिंतामणि, ८, २३

होम-हुताशन का प्रज्वलित होना इत्यादि 'रघुवंश' से प्रभावित प्रतीत होता है।[1] इसी प्रसग में वानरगणों द्वारा बूढ़े और अन्धे मुनियों को बाँह पकड़ कर कुटिया तक ले जाने, सिंहशावक द्वारा गाय के दुग्ध का पान करने, बाघिनी द्वारा बछड़े को तृप्त होकर चाटने, मृग का वनराज के सटाभार खींचने तथा मयूर का साँप के सिर पर छाया करने के वर्णन 'कादम्बरी' से बहुत निकटता से प्रभावित हैं।[2]

'रश्मिरथी' में भी परशुराम के आश्रम का वर्णन 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के कण्व-आश्रम-वर्णन को दृष्टि-पथ में रखकर लिखा गया है। इसमें धूप-धूम से तरु-किसलय के श्यामल होने, मृगों के सुखपूर्वक रोमंथन करने तथा वृक्षों

---

१. बिसवास कै झुंड कुरंगनि के,
जहँ पै बिहरैं सबै संक बिहाय कै।
चहकैं बहु जाति बिहंगम-वृन्द,
पियौं बल थाल्हनि माँहि अघाय कै।
लगे होम-हुतासन-ज्वालनि सौं,
रहे पादप के किसलै कुमिलाय कै।
—रावण, २, २६
साम्य देखिये—रघुवंश, १, ५१-५३

२. गाय कौ दूध पियै हरि-सावक,
बाघिनि चाटै बछाँहि अघाई।
त्यौं बनराज-सटा कौ कुरंग,
रह्यौ निज सींगनि सौं छितराई।।
छाया मयूर करैं सिर साँप के,
सिंह रह्यौ करि-कुम्भ खुजाई।
आँधरे तापस कौ गहि बाँह,
कुटी लगि बानर जात पठाई।
—रावण, २, २७
मिलाइये—कादम्बरी, पू० भा०, जाबाल्याश्रम वर्णन,
पृ० १२०, १३८-३६

के नीचे इंगुदिफल पीसने से चिकने हुए पत्थरों का वर्णन इस प्रभाव की व्यंजना कर रहा है।[1]

विवेच्य काव्यों में कथाप्रसंगों के बीच विविध नगरों का वर्णन करने की प्रवृत्ति भी विशिष्टता से देखी जा सकती है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग में साकेत नगरी का वर्णन, 'कामायनी' में द्वारावती नगरी का वर्णन, 'नलनरेश' के द्वितीय सर्ग में निषध देश का वर्णन, 'अंगराज' के तृतीय सर्ग में कर्ण के स्वागत में सज्जित अंगपुरी का वर्णन, 'दमयन्ती' के आठवें सर्ग में कुंडिनपुरी वर्णन, 'पार्वती' के आठवें सर्ग में हिमवत्पुर वर्णन, 'सिद्धार्थ' के सत्रहवें सर्ग में कपिलवस्तु नगरी का वर्णन, 'रामचरित चिंतामणि' के प्रथम और चतुर्थ सर्ग में अयोध्यानगरी और जनकपुरी के वर्णन, 'तारकवध' में शोणितपुर वर्णन इसके प्रमाणस्वरूप देखे जा सकते हैं। इन नगर वर्णनों में से अधिकांश वर्णन मौलिक हैं, कुछ में तो बिल्कुल आज के नगरों और आज के समाज का ही स्पष्ट चित्र देखा जा सकता है। जैसे 'दमयन्ती' के द्वितीय सर्ग में निषध देश का वर्णन पूर्णतया आज के समाज की ही प्रतिकृति है। निषध में अनिवार्य-शिक्षाव्यवस्था, श्रमिकों का कठोर श्रम, सिंचाई के हेतु विस्तृत कुल्याजाल और कूपों की व्यवस्था, राज्य द्वारा कृषि के उत्कर्ष के लिए कृषकों को बीजइत्यादि देना, राज्य में अनाथालय एवं अनिवार्य सैनिकशिक्षा संस्थानों का निर्माण, पंगु, विधवा, ग्रहहीन एवं कार्य करने में असमर्थ व्यक्तियों के लिए राज्य की ओर से व्यवस्था, पशुओं और मनुष्यों के लिए निःशुल्क चिकित्सालयों की स्थापना इत्यादि का वर्णन किया गया है। कवि ने कथानककालीन वातावरण का चित्रण किया हो अथवा नहीं पर आज के समाज का चित्रण तो अवश्य ही कर दिया

नगर-वर्णन

---

[1] धूप धूम चर्चित लगते हैं तरु के श्यामल छादन कैसे,
झपक रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।
बैठे [illegible] सुखद आतप में मृग रोमन्थन करते हैं,
वन के जीव विवर से बाहर हो विश्रब्ध विचरते हैं।
सूख रहे हैं चीवर रसाल की नन्ही झुकी टहनियों पर,
नीचे बिखरे हुए पड़े हैं इंगुद से चिकने पत्थर।
—रश्मिरथी, पृ० ११

मिलाइये—अभिज्ञानशाकुन्तल, १, १४-१५

है। इसी प्रकार 'तारकवध' मे शोणितपुर-वर्णन मे किसी पौराणिक नगर का उल्लेख न होकर आज के अव्यवस्थित और दूषित समाज का चित्र है। इस नगर-वर्णन में यन्त्रवाद, श्रमिक-शोषण, आज के मनुष्य की अर्थप्रधान मनोवृत्ति, युवतियो की स्वच्छन्दता और विलासिता, फैशन-परस्तता, अनेक-निष्ठता तथा तलाकशीलता का अच्छा चित्रण हुआ है। यह किसी पौराणिक दैत्यपुरी का वर्णन न होकर आज की विषम सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का वर्णचित्र है। कुछ पंक्तियों मे आज की आर्थिक कुव्यवस्था का चित्र देखिये: —

यन्त्र-मूल्य से श्रमिक मूल्य घट कर पाता था
मरने ही के हेतु विवश उनमें जाता था।
उत्पादन की वृद्धि एक उद्देश्य वहाँ था
अर्थ लाभ की सिद्धि एक उद्देश्य वहाँ था।
+ + + +
यंत्राधीश्वर श्रमिक वर्ग का श्रम लेता था
उसके बदले गिने पैसे देता था।
पिस कर भी दिन-रात श्रमिक विकल ही रहते
यंत्राधिप की मार और फटकारें सहते।[1]

ऐसे ही शोणितपुर की स्त्रियाँ और कोई नही आज की आधुनिकाएँ ही हैं :—

शोणितपुर की चपल नारियाँ अति मतवाली।
कामुक थीं, हो रिक्त न यौवन-रस की प्याली।
रोग-मात्र से नहीं, जरा से भी लड़ती थीं।
दिखे स्वल्प ही वयस सदा इस पर अड़ती थीं।
नित नूतन उपचार कराती ही रहती थीं।
विधि को शत-शत बार हराती ही रहती थीं।
होता था सौन्दर्य-द्वन्द्व प्रति मास नगर में।
होती हलचल प्रबल विजय के हित घर-घर में।[2]

'दमयन्ती' और 'तारकवध' दोनो काव्यो के उक्त नगर-वर्णनों से स्पष्ट है कि प्रथम मे आज के समाज की सुव्यवस्था और अच्छाइयों तथा

१. तारकवध, ६, १७०
२. वही, ६, ३३०

द्वितीय में समाज के कुपक्ष के चित्र अंकित हैं। आधुनिक काव्यों के अन्य नगर वर्णनों में यह आधुनिकता तो नहीं देखी जा सकती है पर मौलिक कल्पना का उपयोग अवश्य है। कुछ नगर-वर्णनों पर संस्कृत ग्रंथों का प्रभाव भी है पर इस प्रकार के स्थल कम ही हैं। 'साकेत'[1] और 'रामचरित चिंतामणि'[2] में अयोध्या-नगरी के वर्णन वाल्मीकि रामायण[3] के प्रभाव को व्यंजित कर रहे हैं। 'साकेत' में वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही साकेतनगरी को शोभा और सम्पन्नता में अमरावती की प्रतिस्पर्धी बताया गया है। यहाँ गगनस्पर्शी सौधों और नाट्यशालाओं का होना तथा यहाँ के निवासियों को बाह्यभोगी, आंतरिक योगी, व्याधि-आधि से रहित, पुत्र-पौत्र सपन्न, अश्व-गौ सम्पन्न तथा धनधान्योपेत बतलाया गया है। इसके साथ ही साकेत नगरी के प्रसंग में विविध शालाओं, उनके भित्तिचित्रों, भवनों की कपोतपालियों, कौंध-पताकाओं इत्यादि का उल्लेख भी संस्कृत नगर-वर्णनों की सामान्य प्रवृत्ति के आधार पर हुआ है। इसी प्रकार 'रामचरित चिंतामणि' के अयोध्यानगरी वर्णन में ये उल्लेख वाल्मीकि रामायण से साम्य रखते हैं—अयोध्या नगरी अद्वितीय है, जिसमें सबके लिए चारों पदार्थ सुलभ हैं, इसमें दृढ़ ऊँचा और सुविस्तृत दुर्ग शोभित है जिसे नीरपूरित खाइयों ने घेर रखा है, नगरी के बीच में चारु, चौड़ा और सम राजपथ बना हुआ है जिस पर सदा केवड़े का जल छिड़का जाता है, यहाँ के मनुष्य दानी, धनी, धैर्यवान, सत्यवादी, ज्ञानवान, जितेन्द्रिय और परस्पर प्रेमभाव रखने वाले हैं, चोर-कपटी तथा नास्तिकों का यहाँ नाममात्र भी नहीं है। 'पार्वती' महाकाव्य में पार्वती के परिणय-प्रसंग में हिमवत्पुर का जो संक्षिप्त-सा वर्णन आया है उसकी मौलिकता भी संदिग्ध है। इस वर्णन को तो एक प्रकार से 'कुमारसम्भव' के वर्णनविशेष का ही अनूदित रूप कहें तो अनुचित न होगी। उक्त वर्णन के अनुसार इस नगर ने अपने वैभव से अलकापुरी को भी अतिक्रान्त कर दिया है। इसके चारों ओर गंगा का प्रवाह परिखा के समान बहता है। मणियों के परकोटे चारों ओर बने हैं, औषधियों का उज्वलित प्रकाश उसे प्रकाशमान कर रहा है, यहाँ के हाथी ऐसे हैं कि सिंहों को भी विजित कर लें, घोड़े तो यहाँ सभी भील जाति के हैं, यहाँ के नागरिक किन्नरों, और देवों के समान तथा स्त्रियाँ

---

१. साकेत, पृ० ३-५
२. रामचरित चिंतामणि, १, १-२४
३. वाल्मीकि रामायण, सर्ग ५ एवं ६

वनदेवियो के समान सुन्दर हैं। यहाँ गृहशिखरों पर घन आच्छादित रहते हैं तथा कल्पवृक्ष की पुष्पयुक्त शाखाएँ अंतरिक्ष मे मंद-मंद लहराती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं मानो पताकाएँ फहरा रही हैं। औषधियों के प्रभापूर्ण आलोक के प्रकाश से क्षमा किसी के लिए भी दिशाभ्रमकारिका नहीं है। निशा के तम से अभिसारिका को किसी प्रकार का कष्ट नही होता। इस संपूर्ण वर्णन को कुमारसंभव के छठे सर्ग के हिमवत्पुर वर्णन से विलग करके नही देखा जा सकता है। कथाक्रम की दृष्टि से भी यह उसी स्थान पर अनुस्यूत है जिस स्थान पर कुमारसंभव मे है। 'कृष्णायन'[1] में भी द्वारावती नगरी का वर्णन कथाक्रम मे भागवत के प्रभावस्वरूप आया जान पड़ता है।

नगर-वर्णन से संबंधित एक अन्य वर्णन-रूढि संस्कृत काव्यों मे यह देखने को मिलती है, वह यह कि जब किसी महान् व्यक्ति का नगर मे आगमन होता है तो नगर सज्जा के वर्णन के साथ-साथ नगर की स्त्रियो को उत्सुकतापूर्वक गवाक्षों और झरोखों से देखते हुए चित्रित किया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियो को अपने कार्यों को बीच ही मे छोड़कर बड़े वेग से गवाक्ष की ओर दौड़ते हुए बताया जाता है। 'कुमारसंभव' मे जब शिवजी विवाह के लिए हिमवत्पुर पहुँचते हैं तो नगर की स्त्रियाँ अपने-अपने कार्यों को छोड़कर छतो पर आकर खड़ी हो जाती हैं। कोई स्त्री पैरो मे आलक्तक लगा रही थी, पर जैसे ही उसने शिव के आगमन के विषय मे सुना वह भूमि पर आर्द्र आलक्तक के चिह्न अंकित करती हुई चल दी, इसी प्रकार दूसरी स्त्री जो अपनी दाहिनी आँख मे अञ्जन लगा चुकी थी अपनी दूसरी आँख को निरञ्जन ही छोड़ शलाका हाथ मे लिए चल दी। एक अन्य सुन्दरी सूत्र में मणियाँ पिरो रही थी वह हड़बड़ा कर दौड़ पड़ी और सूत्र मे से सीरी मणियाँ निकल कर गिर पड़ीं।[2] इसी प्रकार का वर्णन रघुवंश,[3] शिशुपाल वध[4], तथा संस्कृत के अन्य कई ग्रन्थो मे भी हुआ है।

आलोच्य काव्यों के रचयिताओं को भी इस वर्णन के आकर्षण ने

१. कृष्णायन, पृ० १३१-३२
२. कुमारसंभव, ७, ५६-६१
३ रघुवंश सर्ग, ७
४. शिशुपालवध सर्ग, १३

मुग्ध कर लिया है। यही कारण है कि पार्वती,[1] दैत्यवंश,[2] दमयन्ती,[3] आदि कई काव्यों में इस वर्णन की स्थिति देखी जा सकती है। इन काव्यों में यह वर्णन यद्यपि विशेष विस्तार से नहीं है, पर जितना भी है वह उक्त संस्कृत काव्यों के वर्णनों से किंचित्मात्र भी इधर-उधर नहीं है। प्रभाव-परिलक्षन के हेतु 'पार्वती' और 'दैत्यवंश' के निम्नलिखित अंश प्रस्तुत हैं—

"रंजन हित जो था प्रसाधिका हाथ में,
अग्रपाद को खींच वेग के साथ में,
आर्द्र अलक्तक की रेखा सी खींचती
चली राग से कोई धरती सींचती,
इसलिए दृग में अंजन अंजित कर रही
(स्वर-धारा में श्रवण-तरी सत्वर बही)
छोड़ निरञ्जन वाम नयन को हाथ में
लिए शलाका दौड़ी मन के साथ में।"[4]
"गूँथति मुक्तानि माल रही कोऊ अलबेली,
'अरी भाग किन देखु' कह्यो कोउ चतुर सहेली।
बँध्यो अँगूठा ताग तासु की सुधि बिसराई,
मोतिन की तिय पाँति गही बिथुरावत आई।"[5]

आवास वर्णन

आधुनिक महाकाव्यों में राज-प्रासाद और राजसभा-भवनों के वर्णनों का बाहुल्य है। 'कृष्णायन' में कृष्ण के प्रासाद का, 'सिद्धार्थ' में कुमार सिद्धार्थ के प्रासाद का, 'रावण' मे मेघनाद के सौध का, 'दैत्यवंश' में दिति द्वारा मयदानव से बनवाये गये सौध का, 'नूरजहाँ' में राजकुमार सलीम के राजप्रासाद का, 'साकेत-संत' में भरत के भवन का, 'बाणाम्बरी' में सम्राट हर्षवर्द्धन के राजप्रासाद का 'कृष्णायन' में युधिष्ठिर के सभा-भवन का, 'एकलव्य' में धृतराष्ट्र के और 'विक्रमादित्य' में सम्राट् रामगुप्त के राजभवन का वर्णन हुआ है। ये वर्णन

---

१ पार्वती, सर्ग ११
२ दैत्यवंश, ८, २३-३७
३. दमयन्ती, सर्ग, पृ० १४५-४६
४. पार्वती, सर्ग ११,
५. दैत्यवंश, ८, ३६

भी सस्कृत ग्रन्थों मे वर्णित प्रासादों और सभाभवनो के वर्णनों से प्रभावित हैं।

इन वर्णनों में प्रासादों के गगनचुंबी होने तथा इन्द्रनील, मरकत, स्फटिक, वैदूर्य इत्यादि मणियो से निर्मित होने का उल्लेख तथा चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणियों की व्यवस्था, रत्नमणिजटित दीवारो पर निर्मित विविध-चित्रों की एव सुगधित पदार्थों की आयोजना, सलिल-यंत्र, सरोवर, कृत्रिम क्रीडाशैल एव विविध वृक्षों से युक्त वाटिकाओ के वर्णन पूर्णतया परम्परागत हैं। सस्कृत के भवन-वर्णनों की तो ये सामान्य विशेषताएँ हैं। कादम्बरी[1] में राजा शूद्रक के सभाभवन-वर्णन में तथा शिशुपालवध[2] के नलप्रासाद वर्णन में इन सबका उल्लेख देखा जा सकता है।

'दैत्यवश' और 'सिद्धार्थ' काव्यों में आये विशिष्ट सौध वर्णनों मे उनका

गगनचुंबी — गगनचुम्बी होना स्पष्ट रूप से वर्णित है। दिति का भवन इतना विशालाकार है कि सूर्य डर के कारण अपने घोडों को उसके पास नही जाने देता है :—

> दिति मयदानवै बुलाय बनवायो दिव्य
> मन्दिर, छुवत जाके कलस अकास हैं।
> रथ टकराय टूटि जैहैं यह भीति मानि,
> जान देत अरुन न बाजि वाके पास है।[3]

इसी प्रकार सिद्धार्थ के हेतु जिस सौध का निर्माण करवाया गया है वह भी अभ्रभेदी है —

> आगार स्वर्ण सुख का गृह अभ्र-भेदी,
> है रग-धाम अति रजित स्वच्छता से।[4]

'नूरजहाँ', 'कृष्णायन', 'एकलव्य', 'सिद्धार्थ' काव्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार

भित्तिचित्र — के भित्ति चित्रों का उल्लेख हुआ है। 'नूरजहाँ' में सलीम के महल की दीवारों पर अनेकानेक मजुल एव भाव-अभिमांकित दृश्य चित्रित हैं :—

---

१. कादम्बरी, कथामुख, सभामडपगमन वर्णन
२ शिशुपालवध, १८, ३-२३
३. दैत्यवश, १, २२
४ सिद्धार्थ, पृ० ८६

नाना मंजुल चित्रों से था क्रीड़ा कक्ष अलंकृत ।
दृश्यों की अनुपम झाँकी, थी भाव भंगिमा अंकित ।[1]

'नूरजहाँ' में शेर अफगान के महल में भी विहग-समूह के चित्र अंकित हैं—

स्वाभाविक रंगों में चित्रित हैं विहगों की टोली ।
ऐसी गढ़ी मूर्ति है मानो अब बोली तब बोली ।[2]

'सिद्धार्थ' के प्रासाद मे राधा और ब्रजेन्द्र के, दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन चित्र, हनुमान से राम की कथा सुनती हुई सीता का चित्र तथा अनेक जगवन्दित प्रेमियों की प्रेममयी कथाएँ चित्रित हैं :—

शोभामयी खचित चित्रित भीतियों पै
हैं अंकिता सुरति की विविधा कथाएँ,
राधा ब्रजेन्द्र-सग झूल रहीं, कहीं पै
सीता सदेश सुनती हनुमान से है,
दुष्यन्त से मिलन मंजु शकुन्तला का,
था कृष्ण से हरण अंकित रुक्मिणी का,
देखो अनेक जग-वन्दित प्रेमियों की
हैं भीति पै लिखित प्रेममयी कथाएँ ।[3]

'एकलव्य' मे धृतराष्ट्र के सभा-भवन मे उसी प्रकार स्त्रियों के चित्र उट्टंकित हैं जिस प्रकार कि 'कादम्बरी' मे शूद्रक के सभा-भवन में । इसके अतिरिक्त हंस, क्रौंच, पारावत आदि विविध पक्षियों के चित्र भवन की भित्तियों पर खुदे हैं :—

एक-एक प्रस्तर में शत-शत चित्र हैं,
निर्मल सरोवर में, नभ में या तरु में,
हंस, क्रौंच, पारावत, कोकिल, मयूर हैं
नारियों की शोभा खिची शत-शत रूप में ।[4]

आलोच्य काव्यों मे जिन भवनो का वर्णन हुआ है वे सभी राजभवन ,

---

१. नूरजहाँ, पृ० २३
२. वही, पृ० १२५
३. सिद्धार्थ, पृ० ६४
४. एकलव्य, पृ० २८

मणिजटित एवं सुगंधित

हैं जिनकी रचना साधारण भवनों के समान नहीं है। ये प्रासाद बहुमूल्य मणियों से रचित और खचित हैं। 'कृष्णायन' में कृष्ण के प्रासाद, वलभि, कुट्टिम (फर्श) इत्यादि सभी स्थानों पर इन्द्रनील इत्यादि मणि तथा विविध प्रकार के रत्न जटित हैं, यहाँ तक कि आसन भी मरकत मणिमय हैं—

इन्द्रनील वलभि अप्रतिम, रत्न खिटक, वेदिका कुट्टिम
आसन मरकत मणि-मय झलमल, शयन शरद शशि-हास-समुज्ज्वल।[1]

'रावण महाकाव्य' में मेघनाद का सौध भी मणियों से द्युतिमान है :—

पौन बिलौर को सौध बन्यौ,
द्युति मैं जड़ी तारावली हुती जाकी।
भौन की भीतिन पै चहुँ ओर,
मनीन की बेलें खेंची हुती बाँकी ॥[2]

इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी सौधों के विविध रत्नों और स्फटिक, विद्रुम, नीलम, मरकत इत्यादि से विनिर्मित होने का उल्लेख है।[3] इसके साथ ही संस्कृत वर्णनानुकृति के रूप में अगरु इत्यादि के धूम से तथा गुलाब इत्यादि के सुगन्धित जल से प्रासादों को शुचि और सुगन्धित बनाने का वर्णन भी आलोच्य काव्यों के प्रासाद-वर्णनों में हुआ है। रामगुप्त के सभा-भवन में और कृष्ण के प्रासाद में चतुर्दिक विभिन्न आधारों में सुगन्धित द्रव्य प्रज्वलित हो रहे हैं,[4] शेर अफगान के महल में जलयन्त्रों से गुलाब का सुवासित जल प्रस्फुरित हो रहा है।[5]

वाटिका एवं क्रीड़ापर्वत

उद्यान और क्रीड़ा-पर्वत का वर्णन प्रासाद-वर्णन का अनुपेक्षणीय अंश है जिसके महत्त्व को संस्कृत के साहित्यकार भली प्रकार समझते रहे हैं। आधुनिक महाकाव्यों में 'रावण', 'सिद्धार्थ', 'दैत्यवंश' के अन्तर्गत आये सौध-वर्णनों में इनका उल्लेख देखा जा सकता है। 'रावण'[6] में मेघनाद के सौध की

१. कृष्णायन, पृ० १६८
२. रावण, ७, ८
३. दैत्यवंश १, २२; सिद्धार्थ पृ० ६४; नूरजहाँ पृ० १२५
४. विक्रमादित्य, पृ० १५
५. नूरजहाँ, पृ० १२५
६. रावण, ७, १०

वाटिका को देखकर नन्दन भी मोहित है। 'सिद्धार्थ'[1] और 'दैत्यवंश'[2] में कुमार सिद्धार्थ तथा दिति के प्रासादों की वाटिकाएं भी विभिन्न सुन्दर और सुगन्धित पुष्पों से तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से शोभायमान हैं।

'सिद्धार्थ'[3] के प्रासाद में सुन्दर कृत्रिम पर्वत स्थापित है जिस पर से एक कृत्रिम नदी प्रवाहित हो रही है। 'रावण' में[4] मेघनाद के सौध में निर्मित क्रीड़ापर्वत हरित मणियों का बना है, इसके बीच में कृत्रिम चन्द्रमा आलेखित है जिसका मनोमुग्धकारी सौन्दर्य है। इस प्रकार आलोच्य काव्यों में प्रासादों के वर्णन भी संस्कृत के प्रासाद-वर्णनों की अनुकृति में ही किये गये हैं।

आधुनिक काव्यों के इन भवन-वर्णनों पर कहीं-कहीं संस्कृत ग्रन्थों के विशेष वर्णनों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रत्यक्ष प्रभाव

'बाणाम्बरी' में सम्राट हर्ष के राजप्रासाद का वर्णन बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में हर्ष के राजभवन-वर्णन का स्पष्ट आधार लिए है। 'हर्षचरित' के द्वितीय उच्छ्वास में आये विस्तृत प्रासाद वर्णन के आधार पर ही 'बाणाम्बरी' के कवि ने स्थान निकाल कर हर्ष के राजप्रासाद का एक संक्षिप्त सा वर्णन प्रस्तुत कर दिया है, जिसमें प्रासाद के विभिन्न विभागों, स्थानों तथा अन्य आयोजनों का वर्णन हर्षचरित के प्रभाव में ही चित्रित है। यह वर्णन इस प्रकार है—"स्कन्धावार के *बाह्य सन्निवेश में बिना अनुमति के प्रवेश नहीं* किया जा सकता है, प्रासाद के इसी भाग में *साम्राज्यान्तर्गत* नरेशों के भव्य शिविर बने हुए हैं, विशाल हस्ति-सेना, पद्मभद्र मल्लिकाक्ष, कृत्तिकापिंजर आदि अश्वों की सुगठित सेना और समर शिक्षा प्राप्त उष्ट्रसेना यथास्थान बँधी है। शत्रु-सामन्तों के, आश्रित भूपालों के तथा सन्यासियों, दार्शनिकों एवं *मित्रों* इत्यादि के लिए कक्ष बने हैं। यवन, पारसीक, हूण आदि म्लेच्छ जाति के अभ्यागतों तथा अनेक देशों से प्राप्त राजदूतों के भव्य भवन बने हैं। स्कन्धावार के अंतर सन्निवेश में प्रवेश प्रतिबंध है, यहाँ आरम्भ में आस्थान मण्डप है, जहाँ राजवल्लभ तुरंगों की मंदुरा बनी

---

१ सिद्धार्थ, पृ० ६३
२. दैत्यवंश, १, २३
३ सिद्धार्थ, पृ० ६३
४. रावण, ७, १

है, इसको पार करने पर भुक्तास्थानमण्डप है जहाँ महावाहिनीपति सम्र हर्षदेव अपने विशिष्ट अभ्यागतो से मिलते हैं।"[1]

इसी प्रकार 'कृष्णायन' मे युधिष्ठिर की प्रसिद्ध राजसभा का वर्ण महाभारत[2] और शिशुपालवध[3] मे युधिष्ठिर की राजसभा के वर्णनानुसार इस प्रकार किया गया है—"यह राजसभा विविध मणिरत्नों से मंडित स्फटिकनिर्मित यह सभा हाथ के स्पर्श से ही जानी जा सकती है अन्यथा उस और चाँदनी मे कोई अन्तर प्रतीत नही होता है, इसका मरकतमणिमय कुट्टि यह भ्रम उत्पन्न करता है कि यहाँ जल है, इसमे बने स्फटिकमणि के सरोव के जल को इस प्रकार नलिनी के दलो से आवृत कर दिया गया है कि व स्थल भाग सा प्रतीत होता है।"[4] इस राजसभा के शिल्पगत सौन्दर्य को कवि ने सस्कृत के आधार ग्रथो के अनुसार ही चित्रित किया है। वैसे इस राजसभ का यह सौन्दर्य महाभारत की कथा मे एक विशिष्ट महत्त्व भी रखता है।

युद्ध वर्णन

आलोच्य काव्यों के युद्ध-वर्णन भी सस्कृत के प्रभाव से विनिर्मुक्त नह हैं। इन काव्यों में मूलग्र थो के कथाप्रसगानुसार युद्ध वर्णन के प्रसग भी अवतरित हुए हैं तथा अन्य वर्णन की अपेक्षा ये वर्णन विस्तार से भी चित्रित हुए हैं इन वर्णनों पर मूलग्र थों का प्रभाव स्पष्ट है। 'रावण' महाकाव्य मे राम रावण-युद्ध 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित है तथा 'कृष्णायन', 'अगराज, 'जयभारत', 'सेनापति' कर्ण आदि काव्यों में कौरव-पाण्डवीय-युद्ध के वर्णन महा भारत से प्रभावित हैं। इन वर्णनो से स्पष्ट है कि इन काव्यों के रचयिता मूलग्र थो से भिन्न युद्ध की कल्पना नही कर सके हैं। इनमें अस्त्र शस्त्रों के नाम, युद्धकालीन वातावरण, व्यूह-युद्ध, द्वैरथ युद्ध, माया-युद्ध, द्व [illegible] युद्ध इत्यादि का वर्णन सस्कृत के मूल ग्र थो के अनुरूप हुआ है। इसके अतिरिक्त किस योद्धा ने किस प्रतिपक्षी योद्धा से युद्ध किया और कौन-कौन से अस्त्र-शस्त्र प्रयुक्त किये, ये वर्णन भी मूलग्र थों के ही अनुसार हैं। उक्त काव्यों के अतिरिक्त 'पार्वती' और 'दैत्यवश' काव्यो में भी देवासुर-सग्राम के विस्तृत वर्णन

---

१. कादम्बरी, सर्ग १३, पृ० २८४
२. महाभारत, स० प०, ४७, ३—१३
३. शिशुपालवध, १३, ५०—६०
४ कृष्णायन पृ० २३१

'कुमारसंभव' और 'भागवत पुराण' के कथानुक्रम के अनुसार आये हैं। यद्यपि इन ग्रंथों पर मूलग्रंथों का विशेष प्रभाव दृष्टिगत नही होता है फिर भी हम इन्हें संस्कृत साहित्य की युद्ध-वर्णन-पद्धति और परंपरा से भिन्न नही कह सकते हैं।

अस्त्र-शस्त्र एवं व्यूह

आलोच्य काव्यों के युद्ध-वर्णन मे समस्त अस्त्र-शस्त्रो का उल्लेख संस्कृत ग्रंथो के आधार पर ही हुआ है। युद्ध-वर्णन मे विभिन्न अस्त्र-शस्त्रो का बार बार नामोल्लेख करने की जो रीति हमे महाभारत इत्यादि ग्रंथो मे दिखाई पडती है उसका निर्वाह आधुनिक काव्यो मे भी हुआ है।[1] तोमर, पट्टिश, असि, गदा,[2] वत्सदंत, नाराच, क्षुरप्र, विपाठ,[3] क्षेपणी, शतघ्नी, नालिक, खग, कुन्त,[4] अर्धचन्द्रशर,[5] भिन्दिपाल,[6] सर्पबाण, कंकपत्र, अग्निबाण, इन्द्रबाण,[7] वरुण अस्त्र,[8] प्रभंजन अस्त्र,[9] वराहकर्णबाण[10] प्रभंजन-महास्त्र,[11] वज्रदण्ड[12], उरगायुध,[13] अंजलिकबाण,[14] नागपाश,[15]

---

१ बजी सहस्रों भेरियाँ माया निर्मित मेघ से।
तोमर, पट्टिश, असि, गदा गिरे अयुतश वेग से।
—अंगराज, १६, ४३

तु० की० : महाभारत, भी० प०, १०६, ५७-५८

२ अंगराज, १६, ४३

३. वही, १६, ४२

४. वही, १७, १६

५. कृष्णायन, पृ० ३६४

६. अङ्गराज, २१, ३७

७ अङ्गराज २१, १३१

८ कृष्णायन, पृ० ४२३

९. अङ्गराज, २१, १३६

१०. वही, २१, १३२

११. वही, २१, ११६

१२ वही, २१, १३६

१३. वही, २१, १४६

१४. वही, २१, २२४

१५ रावण, १३, १४

इत्यादि अस्त्रशस्त्रों का बार-बार उल्लेख भी संस्कृतप्रभाव को व्यक्त करता है। संस्कृत ग्रन्थों में चाहे महाभारत हो, रामायण हो, अथवा भागवतपुराण इन अस्त्रशस्त्रों का उल्लेख युद्धवर्णन के प्रसंग में बार-बार आया है। इन अस्त्रशस्त्रों के अतिरिक्त विविध योद्धाओं द्वारा विविध व्यूहों की रचना का उल्लेख भी मौलिक नहीं है। आधुनिक काव्यों में गरुड-व्यूह,[1] चक्रव्यूह,[2] शकट व्यूह,[3] सूची व्यूह,[4] पद्मव्यूह,[5] इत्यादि की रचना का वर्णन महाभारत के प्रभावस्वरूप किया गया है।

वातावरण चित्रण — युद्धकालीन विभीषक वातावरण उपस्थित करने के लिए भी विवेच्य कवि संस्कृत ग्रंथों के मुखापेक्षी प्रतीत होते हैं। संस्कृत ग्रंथों में युद्ध-वर्णन के वातावरण का चित्रण बड़े विस्तार से हुआ है। युद्धभूमि में चारों ओर गोमुख, भेरी इत्यादि वाद्यों का स्वर, योद्धाओं के सिंहनाद और आयुधप्रहार इत्यादि का व्याप्त होना, कुशल योद्धाओं के बाणप्रहार से सारे में बाण छा जाना, युद्धस्थल में भीषण शोण-नदी वाहित होना, छिन्नमस्तक कबन्धों का रणक्षेत्र में नर्तन, मृत शरीरों पर काक, गृद्ध का मँडराना इत्यादि वर्णन पारंपरिक हैं। महाभारत में तो इन वर्णनों की पुनरावृत्ति कई बार हुई है। आलोच्य काव्यों में युद्ध वातावरण के चित्रण से संबंधित कुछ प्रसंगों पर तो संस्कृत के युद्ध-वर्णनों की, विशेष रूप से महाभारतगत युद्धवर्णन की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस संबंध में 'जयभारत' का यह वर्णन उद्धरणीय है —

> लाल लाल भूमि सब ओर विकराल थी,
> दीखे रक्त कर्दम में हाथी भी अशक्त से।
> कट—कट शीश गिर राहु से उदित थे,
> केतु से कटे भी बाहु भय उपजाते थे।
> कर्तित थीं कन्धराएँ, नर्तित कबन्ध थे।

---

1. कृष्णायन, पृ० ३७०
२. वही, पृ० ३८८
३ वही, पृ० २०४
४ वही, पृ० ३६६
५ वही, पृ० ४०३

टूटे रथ आँतें-सी बिखेर कर अङ्गों की,
तड़प रहे जतु शीघ्र मर जाने को।[1]

उक्त वर्णन से साम्य रखता हुआ 'महाभारत' का निम्नलिखित वर्णन देख सकते हैं —

उत्कृत्तवदनैर्देहै शरीरैं कृत्तबाहुभिः।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैं पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैं॥
कृत्ताग्रहस्तैं, करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैं।
हयैश्च विधुरग्रीवैं रथैश्च शकलीकृतैं॥
निकृत्तान्त्रैं कृत्तपादैस्तथान्यैं कृत्तसन्धिभिः।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥[2]

द्वन्द्व युद्ध

आलोच्य काव्यों मे मूलग्रथो के अनुकरण पर द्वन्द्व युद्ध का वर्णन भी हुआ है। द्वद्व युद्ध के वर्णन मे भी इन कवियो ने स्वतंत्र प्रतिभा का परिचय न देते हुए मूल संस्कृत ग्रथों के आधार पर ही उनका चित्रण किया है। किस योद्धा ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करने के लिए कौन-कौन से दाव-पेच अपनाये, किन-किन हाव-भावो का प्रदर्शन किया, इनके चित्रण में भी मूलग्रथो का साहाय्य स्पष्ट है। 'कृष्णायन' मे भीम-जरासध, कृष्ण-कुवलयापीड, कृष्ण चाणूर इत्यादि के द्वद्व-युद्ध 'भागवतपुराण' के आधार पर ही वर्णित हैं।

'कृष्णायन' के भीम-जरासध युद्ध-वर्णन पर यह प्रभावातिशय द्रष्टव्य है। इस वर्णन मे भीम और जरासध की चेष्टाओ, मल्लयुद्ध मे प्रयुक्त उरोहस्त, कक्षाबध आदि विशेष दाँव-पेचों का वर्णन भागवतानुसार ही है।[3] कृष्णायनगत भीम-जरासध-युद्ध-वर्णन के अनुसार ये वीर परस्पर अभिवादन कर भिड जाते हैं, कभी ताल ठोकते हैं कभी प्रतिद्वद्वी को कक्षाबन्ध का प्रयोग कर बाँध लेने की चेष्टा करते हैं, कभी उराहस्त (छाती पर थप्पड मारना) का प्रयोग कर भूमि पर गिरा देते हैं, एक दूसरे पर भुजाओं का प्रहार करते हैं, कभी झपटते हैं, कभी शरीर को सिकोडकर एक दूसरे की पकड से छूटने

---

१. जयभारत, पृ० ४७४
२. महाभारत, द्रो० प०, १४६, २४-२६
३. कृष्णायन, पृ० २१८—१९, महाभारत, स० प०

की चेष्टा करते हैं, कभी घोर गर्जना करते हैं। इन सब हाव-भावों और चेष्टाओं का वर्णन भागवतपुराण के प्रभाव रूप मे गृहीत है। साम्य-प्रदर्शन के लिए 'कृष्णायन' और 'महाभारत' से इस वर्णन का एक अंश उद्धृत है—

कपि महत दोउ एकहिं एका, करत घात प्रतिघात अनेका।
भरि युग बाहु बहुरि बिलगाहीं, 'उरोहस्त' डारहिं महि माहीं।
पाणि पाणि अंग-अंगन मारी, झपटत, सिमिटत, हटत पछारी
गरजत घोर मनहुँ पचानन, छिटकत दृग-अंगार अग्नि-कण।

× × × ×

विकल बार शत अधर भँवायो, पटकेउ महि बल सकल लगायो
जानु प्रहार मेरु करि घोरा, मर्दि अस्थि-पंजर सरि तोरा।[1]

भागवतपुराण—

"बाहुपाशादिकं कृत्वा पादाहतशिरावुभौ।
उरोहस्त ततश्चक्रे पूर्णकुम्भौ प्रयुज्य तौ।
कर सम्पीडनं कृत्वा गर्जन्तौ वारणाविव।
नर्दन्तौ मेघसंकाशौ बाहुप्रहरणावुभौ।
उभौ कट्या सुपार्श्वे तु तक्षवन्तौ च शिक्षितौ।
अधोहस्त स्वकराठे तूदरस्योरसि चाक्षिपत्।
भ्रामयित्वा शतगुणं जानुभ्यां भरतर्षभ।
बभञ्ज पृष्ठ संक्षिप्य निष्पिष्य विननाद च॥[2]

उत्सव-वर्णन आधुनिक महाकाव्यों में पुनर्जन्म, स्वयंवर, अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, राज्याभिषेक, शस्त्रास्त्र प्रदर्शन इत्यादि उत्सवों के प्रसंग भी संस्कृत कथानकों के प्रभावरूप मे स्थान-स्थान पर आए हैं। इनमे से कुछ स्थलो को तो कथाप्रसंग के रूप मे चलता-सा कर दिया गया है, कुछ ऐसे भी हैं जहाँ वर्णन वर्णन करने की इच्छा से प्रेरित होकर किये गए हैं और इन्ही वर्णनो पर संस्कृत ग्रंथो का प्रभाव विशेष रूप से देखा जा सकता है। इन संस्कृत-प्रभावित वर्णनो मे तद्युगीन रीति-नीतियो एव वातावरण का अच्छा दिग्दर्शन

---

१. कृष्णायन, पृ० ११८-११६
२. भागवतपुराण, २३, १४-१५-१८, २४, ६

हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि इन वर्णनों के सबंध में ये कवि मौलिक कल्पना से काम ले भी नहीं सकते थे और अगर लेते भी तो युग विशेष की सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों का सही चित्र उपस्थित नहीं हो पाता और पाठक को भी कालक्रम का दोष खटकता। यही कारण है कि इन कवियों ने कुछ विशिष्ट उत्सव वर्णनों को मूल ग्रथों से यथावत् उतार कर रख दिया है। ऐसे वर्णन या तो स्वयवर के हैं, राज्याभिषेक के हैं अथवा शस्त्रास्त्र प्रदर्शनोत्सव से सम्बन्धित हैं।

स्वयवर-वर्णन

आधुनिक काल में स्वयवर की प्रथा तो समाप्त हो चुकी है पर स्वयवर के मनमोहक वर्णन काव्यजगत में अब भी अपना स्थान पूर्ववत बनाये हुए हैं। स्वयवर-वर्णन में आधुनिक कवि उतने ही तन्मय दीख पड़ते हैं जितने कि संस्कृत कवि। आलोच्य काव्यों में से कृष्णायन में द्रौपदी-स्वयवर,[1] नलनरेश[2] और दमयन्ती[3] में दमयन्ती-स्वयवर, दैत्यवंश[4] में लक्ष्मी स्वयवर, अगराज[5] में कलिंगकुमारी स्वयवर तथा साकेत[6] में सीता-उर्मिला-स्वयवर का उल्लेख हुआ है पर काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'नलनरेश', 'दमयन्ती', 'दैत्यवंश' काव्यों के वर्णन विशेष महत्त्वपूर्ण हैं अन्य काव्यों में ये केवल कथा-प्रसंग की दृष्टि से ही उल्लिखित हैं।

'दमयन्ती', 'दैत्यवंश', 'नलनरेश' काव्यों के स्वयवर-वर्णनों में जहाँ एक ओर संस्कृताचार्य के आदेश का अनुपालन हुआ है[7] वहीं इन वर्णनों के

---

१ कृष्णायन, पृ० १६६-६७
२ नलनरेश, सर्ग ७ एव ८
३. दमयन्ती, सर्ग ७
४. दैत्यवंश, सर्ग ४
५. अगराज, सर्ग ५
६. साकेत, सर्ग १०
७ स्वयवरे शचीरक्षा मच मण्डप सज्जना।
राजपुत्री नृपाकाराव्ययचेष्टाप्रकाशनम्।
अर्थात् स्वयवर में शची द्वारा रक्षा, मच-मण्डप आदि की सज्जा, राजकुमारी तथा राजाओं के आकार, अवयव, चेष्टा आदि का वर्णन होना चाहिए।
—अलकारोत्तर, पृ० ५६

विस्तार पर संस्कृत ग्रंथों मे ग्राये स्वयंवर-वर्णनों का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। ग्राचार्यों के निर्देश की ग्रनुज्ञा रूप मे 'दमयन्ती' महाकाव्य मे दमयन्ती के स्वयवर-वर्णन मे सभा-मडप की सज्जा, राजकुमारी दमयन्ती के रूप-सौन्दर्य तथा स्वयवर मे ग्रागत राजाग्रों के गुण, सौन्दर्य ग्रौर चेष्टाग्रों का तथा विभिन्न नृपो को देखकर तथा उनके गुणो का श्रवण कर उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप दमयन्ती की चेष्टाग्रो का ग्रच्छा वर्णन हुग्रा है। 'दैत्यवश' मे भी लक्ष्मी के स्वयवर मे मण्डप-सज्जा, लक्ष्मी सौन्दर्य तथा ग्रागत राजाग्रों के सौन्दर्य ग्रौर उनकी चेष्टाग्रों का वर्णन है। इसके साथ ही श्री 'हर्ष' के नैषध काव्य की छाया भी इन पर दिखायी पड़ती है।

मडप सज्जा

इन स्वयवर-वर्णनो मे सभा-मडप की विशिष्ट सज्जा का उल्लेख भी संस्कृत प्रभाव की घोषणा कर रहा है। 'कृष्णायन' ग्रौर 'दमयन्ती' काव्यो मे मडप-सज्जा का सुन्दर वर्णन है। इन काव्यों के ग्रनुसार ये सभा-मडप दिव्य सज्जा से सुशोभित हैं, इनके चारो ग्रोर प्राकार एव परिखा निर्मित हैं। चारों ग्रोर से स्फटिक सौध ग्रौर ग्राकाशचुम्बी भवनो से घिरे, मणिमय फर्श से युक्त स्वर्णिम जालियों से सज्जित, हारावृत विशाल रत्नस्तम्भो से युक्त मण्डप के बीच-बीच चदोवा लगे हुए तथा चदन, ग्रगरु, घनसार एव पुष्पों की सुगन्धो से व्याप्त है।[१] महाभारत मे विभिन्न स्वयवरो में निर्मित स्वयवर मण्डपों में इसका उल्लेख देखा जा सकता है। द्रौपदी के स्वयवर में सभा-मडप का उल्लेख भी महाभारत में लगभग इसी प्रकार से है।[२]

राज्याभिषेक

कृष्णायन[३] में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का वर्णन इसी प्रकार है। यह वर्णन एक प्रकार से महाभारत[४] के इसी वर्णन की ग्रनुकृति है। महाभारत मे जहाँ राज्याभिषेक का वर्णन कुछ विस्तार से है वहाँ कृष्णायन मे उसे कुछ प्रमुख वस्तुग्रों एव व्यापारों का उल्लेख कर सक्षिप्त कर दिया गया है। यहाँ युधिष्ठिर से हेम, मणि, महि का स्पर्श करवाना, गोरस, घृत,मधु

१. कृष्णायन, पृ० १६६-१६७ तथा दमयन्ती पृ० ११२-११३

२. महाभारत, ग्रा०प०, ग्र० १८४

३. कृष्णायन, पृ० ४४८

४. महाभारत श०प०, ४० ८-१४

इत्यादि के घट, हवन-काष्ठ, हेमविमंडित शंख, लाज तथा अनेक प्रकार के मौक्तिक लाकर एकत्र करना, तदुपरान्त सविधि निर्मित वेदी पर युधिष्ठिर को द्रौपदी सहित आसीन करना तथा शंख हाथ में लेकर कृष्ण, धृतराष्ट्र तथा अन्य गुरुजनों का शंख के जल से युधिष्ठिर का अभिषेक करने का वर्णन महाभारत के शांति पर्व के अभिषेक-वर्णन के आधार पर है। 'कृष्णायन' में यह वर्णन महाभारतकालीन परम्पराओं और रीति-रिवाजों की छाया में चित्रित होकर उस समय के सांस्कृतिक वातावरण को अवतारणा में भी सहायक हुआ है।

शस्त्रास्त्र प्रदर्शन महाभारत की कथा पर आधारित 'कृष्णायन',[1] 'एकलव्य'[2] आदि काव्यों में कौरवों-पाण्डवों के शस्त्रास्त्र-प्रदर्शन के उत्सव का वर्णन विस्तार से किया गया है। इन काव्यों में ये वर्णन मूलरूप से महाभारत[3] के आदि पर्व में आये शस्त्रास्त्र-प्रदर्शन-उत्सव के वर्णन पर आधारित हैं। इन वर्णनों में महाभारतीय वर्णन से साम्य रखने वाले तत्त्व इस प्रकार हैं—शस्त्रास्त्र कौशल के प्रदर्शन के लिए चुनी गयी भूमि समतल वृक्षहीन, गुल्महीन तथा उत्तरदिशा की ओर से नीची है, क्रीडा भूमि के चारों ओर एक विशाल प्रेक्षागृह निर्मित किया गया है जिसमें राजवर्ग और स्त्रियों के बैठने की व्यवस्था है, इसके बीच में सुन्दर-सुन्दर भवनों का निर्माण किया गया है। द्विजों के स्वस्त्ययन के उपरान्त प्रदर्शन आरम्भ होता है। सर्वप्रथम श्वेतकेश, श्वेतश्मश्रु, शुक्लाम्बर शुक्लमाला और शुक्ल यज्ञोपवीत धारण किये गुरु द्रोण प्रवेश करते हैं इसके उपरान्त अंगुलित्राण, तूणीर इत्यादि धारण किये, कमर कसे राजपुत्र प्रविष्ट होते हैं। सर्वप्रथम राजपुत्र धनुर्बाण सचालन का और गज एवं अश्व की पीठ पर बैठकर विचित्र शस्त्रकौशल का परिचय देते हैं। फिर रथ-चर्या (रथ सचालन के विविध मार्ग) और चर्म-खड्ग-युद्ध-प्रहार का प्रदर्शन करते हैं। खंग चर्म-प्रदर्शन में इनका लाघव, दृढमुष्टि शोभा, स्थिरता आदि द्रष्टव्य हैं। तदुपरान्त भीम और दुर्योधन का अद्भुत गदा-संचालन प्रदर्शन होता है। अन्त में पार्थ आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्जन्यास्त्र, भौमास्त्र तथा अंतर्धा-

---

1. कृष्णायन, पृ० १४७–१४६
2. एकलव्य, प्रदर्शन सर्ग
3. महाभारत, आ० प० अ० १३३–१३४

शास्त्र चलाकर अद्भुत अस्त्रकौशल का प्रदर्शन करते हुए सामाजिको का मनोरंजन करती हैं।

इतर वर्णन

इन वर्णनो के अतिरिक्त जलक्रीडा, वनविहार, मद्यपान, मृगया और सुरत इत्यादि के वर्णनो की अवतारणा भी परम्परानुपालन के रूप में हुई है। जलक्रीडा का वर्णन संस्कृत काव्यो[1] मे विशेष रूप से देखने को मिलता है।

अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित

आधुनिक काल में दमयन्ती,[2] सिद्धार्थ,[3] दैत्यवश,[4] विक्रमादित्य[5] आदि काव्यो मे जलक्रीडा के सक्षिप्त वर्णन कवियो के परम्परामोह का परिचय दे रहे हैं। इन वर्णनो में स्त्री-पुरुषो की जलक्रीडा, एक दूसरे पर पय क्षेप आलिंगन तथा अरविन्द, हंस, आंगिक सौन्दर्य इत्यादि का वर्णन परम्परागत है।

जल क्रीडा

संस्कृत ग्रथो मे मद्यपान[6] मृगया[7], वनविहार[8] इत्यादि के वर्णन भी विशेष सौन्दर्य के साथ चित्रित किये गये है। यद्यपि आधुनिक काल में इन वर्णनों को मान्यता नही दी गई है फिर भी आधुनिक महाकाव्यों मे कही-कही इनका उल्लेख मिल ही जाता है। 'नलनरेश' में ऋतुपर्ण और उसके साथियो के सम्मिलित मद्यपान का वर्णन है।[9] 'दमयन्ती' मे राजा नल की मृगया का

मद्यपान मृगया

---

१ किरातार्जुनीय, सर्ग ८

२ दमयन्ती, सर्ग १, पृ० ११

३. सिद्धार्थ, पृ० ६८

४ दैत्यवश १८, २१

५ विक्रमादित्य, सग ४२

६ शिशुपाल वध, सर्ग १०, किरातार्जुनीय, सर्ग ९

७ रघुवश, सर्ग ९

८ शिशुपाल वध, सर्ग ७

९. नलनरेश, सर्ग १६

वर्णन है जिसमे मृगाधिक्य, मृगत्रास, हिंसद्रोह और त्वरित गति का उल्लेख[१] भी सस्कृत की परम्परा[२] को ही परिलक्षित करा रहा है ।

'नूरजहाँ[३]' और 'दैत्यवश'[४] मे वनविहार का वर्णन भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार आलोच्य काव्यों मे

वनविहार, सुरतादि

सुरत-वर्णन स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। इन काव्यो मे यद्यपि सुरत वर्णन मे सस्कृत काव्यो के समान नखक्षत, दन्तक्षत इत्यादि का वर्णन तो नहीं हुआ है पर सात्त्विक भाव, शीत्कार, कुड्मलाक्षता इत्यादि का वर्णन साकेत,[५] कामयानी,[६] नूरजहाँ,[७] वर्द्धमान,[८] सिद्धार्थ,[९] दैत्यवश,[१०] विक्रमादित्य[११] आदि काव्यो मे देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

वर्णनों की दृष्टि से आधुनिक महाकाव्यो के सदर्भ से प्रमुखतः दो बातें सामने आती है : पहली बात तो यह है कि इन कवियो ने वर्णनो को अपना लक्ष्य नहीं बनाया है। जानबूझ कर वर्णनों के फेर मे पडना इन्हें रुचा नहीं है। कारण यह है कि कवियों का मानस युगचेतना के साथ मे विकसित हुआ है फिर भी वर्णनों की परपरा जहाँ भी आई है वहाँ सस्कृत काव्यों

---

१. दमयन्ती सर्ग ३, पृ० ४१-४२
२. अलकार, शेखर पृ० ६०, ८० ११-१२
३ नूरजहाँ, पृ० १३८-४०
४. दैत्यवश, १८,७
५. साकेत (द्वितीयावृत्ति), पृ० २३-२४
६. कामायनी (प्रथम सस्करण), पृ० ६४
७ नूरजहाँ पृ० २५
८. वर्द्धमान, २, ४६
९ सिद्धार्थ पृ० ६६
१०. दैत्यवश, पृ० २३५
११. विक्रमादित्य, पृ० २२०

वर्णनों से आगे जाने की स्थिति नहीं दिखाई देती है। ध्यान रखने की बात यह है कि जो भी वर्णन आये हैं वे कथा की माँग के कारण ही आये हैं।

दूसरी बात यह है कि इन महाकाव्यों पर जो वर्णनगत प्रभाव है वह एक ओर तो अप्रत्यक्ष संदर्भ लिए हुए है और दूसरी ओर वह अनुवादात्मक हो गया है। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवियों ने संस्कृत से वर्णनों को ज्यों का त्यों उठा लिया है। इस प्रकार ये वर्णन कवियों की मौलिकता की अपेक्षा अध्ययनशीलता के अधिक परिचायक हैं।

नीति

६. नीति

हमारा जो व्यवहार या आचरण जीवन को लौकिक अन्तरायों या अवरोधों से सफलतापूर्वक निकाल ले जाये वह नैतिक माना जाता है। नीति का सम्बन्ध जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक, दोनों पक्षों से है, अतएव "समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति कराने के लिए विधि या निषेधमूलक जिन वैयक्तिक और सामाजिक नियमों का विधान देश, काल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है, उन्हें 'नीति' शब्द से अभिहित किया जाता है।"[1]

'धर्म' और 'मोक्ष' शब्दों के सामंजस्य से 'लौकिक' शब्द के अभिप्राय-ग्रहण में कुछ बाधा प्रस्तुत हो सकती है, किन्तु वास्तव में इसके प्रयोग से 'नीति' शब्द का अभिप्राय कुछ अधिक व्यापक बन जाता है। धर्म अपने व्यापक रूप में साधन भी है और साध्य भी, इसलिए धर्म को लोक विरहित करके देखना समीचीन न होगा। धर्म अपने साध्य रूप में मोक्ष के अभिप्राय को भी समाहित कर लेता है। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण से राजनीति और सामान्य-नीति की सीमाएँ भी धर्म से असम्पृक्त नहीं रहतीं।

धर्म वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक परिपार्श्वों में अभिव्यक्त हो सकता है। स्वार्थ के उदात्त होने पर धर्म का व्यापक एवं उदात्त रूप स्पष्टतः परिलक्षित होने लगता है। पूर्णाङ्ग धर्म वसुधा के परिवार में निवास करता है और इसी स्तर पर स्वार्थ का विराट किन्तु उदात्त रूप दृष्टिगोचर होता है। अतः धर्म के वृत्त का केन्द्र व्यष्टि और परिधि समष्टि है। दूसरे शब्दों में नीति और धर्म आचरण के ही दो पहलू हैं। दोनों से जीवन-मार्ग में प्रस्तुत होने वाली बाधाएँ विनष्ट होकर, लक्ष्य सुगम एवं सुखद बनता है।

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी : हिन्दी नीति काव्य, पृ० ४

धर्म और नीति की सकीर्णता मे दोनो का भेद बढ जाता है, किन्तु दोनों की उदारता में भेद मिटकर घनिष्टता प्रतिष्ठित हो जाती है। यही कारण है कि साहित्य मे अनेक स्थलों पर धर्म और नीति का मिला-जुला रूप दृष्टिगत होता है। जिस प्रकार धर्म-शास्त्र मे धर्म की विवेचना नीति-विरहित नही है उसी प्रकार नीति-ग्रन्थो में नीति-निरूपण धर्म से विप्रकृष्ट नही है।

नीति-शास्त्र की विशेषताएँ

भारत मे नीति-ज्ञान को इतना अधिक महत्त्व दिया गया था कि नीति-ग्रन्थो मे उसे शास्त्र सज्ञा प्रदान की गयी। नीति-शास्त्र अन्य शास्त्रों की अपेक्षा विशेषता लेकर अवतीर्ण हुआ है। अन्य शास्त्र विशेषार्थ साधक होने से साधारण अर्थ की सिद्धि में सहायक नही होते,[१] किन्तु नीति-शास्त्र सब मनुष्यो के लिए उपयोगी, मर्यादाविधायक, धर्म-अर्थ-काम-मूल, त्रिवर्गहेतुभूत तथा मोक्षप्रद है।[२] नीतिशास्त्र के विशेष अवबोध से नृपादि (राजा प्रजा) शत्रु-जित् एव लोक-रजक हो जाते हैं।[३] जिस प्रकार भोजन बिना प्राणियो की देह स्थित नहीं होती उसी प्रकार नीति बिना लोक की व्यवहार-स्थिति (आचरण रक्षा) नही होती।[४] नीति को छोडकर स्वतत्र होकर आचरण करने वाला व्यक्ति दुःख से छुटकारा नहीं पाता।

नीति-साहित्य परम्परा

यह कहने की आवश्यकता नही कि नीति-साहित्य सस्कृत साहित्य का प्रशस्त अग रहा है। सस्कृत साहित्य मे नीति सम्बन्धी प्रशस्त ग्रन्थ भी मिलते हैं जैसे—चाणक्य-नीति, नीति-शतक, नीति-सार, नीति-वाक्यामृत, नीति-सग्रह आदि। अन्य कथात्मक रचनाओं में भी नीति प्रसग मिलते हैं। महाभारत, रामायण, पुराणो, महाकाव्यों, नाटकों, कथाओं आदि मे इस प्रकार के नीति प्रसगो का बाहुल्य है। हिन्दी-नीति-साहित्य का कलेवर इतना पुष्ट एव पीन तो नही है जितना संस्कृत नीति-साहित्य का है, किन्तु प्राचीन परपरा को हिन्दी ने किसी न किसी रूप में जीवित रखा है इसमें कोई सन्देह नहीं है। हिन्दी में नीति परपरा स्वतत्र और प्रासगिक दोनो रूपो मे समाहृत हुई

---

१. शुक्रनीति (वेंकटेश्वर प्रेस, सवत् १९८२), १, १०

२. वही १, ५

३. वही, १, ६

४. वही, १, ११

है। जहाँ वृन्द और गिरिधर की रचनाओं में नीति-साहित्य का स्वतन्त्र रूप दीख पड़ता है वहाँ कबीर, तुलसी, रहीम आदि की रचनाओं में नीति का सपुटित मुक्तक रूप भी दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी नीति-साहित्य के ये दोनों रूप हिन्दी की मुक्तक-माला की भास्वर मणियाँ हैं। इनके अतिरिक्त रामचरित मानस, रामचन्द्रिका आदि में नीति के जिस रूप का प्रणयन हुआ है, वह मात्र प्रासंगिक है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के इस अध्याय में नीति का प्रासंगिक रूप ही अपेक्षित है और उसे ही संस्कृत नीति-साहित्य के प्रभाव की छाया में देखा गया है। यह प्रभाव कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष है। उन आधुनिक महाकाव्यों में, जो संस्कृत की कथात्मक भूमिका प्रस्तुत करते हैं, प्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित होता है, किन्तु 'मीरा महाकाव्य' जैसी रचनाओं में अप्रत्यक्ष प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं इनमें भी अनुवाद की बड़ी तीव्र गंध की प्रतीति होती है।

धर्म-नीति को राजनीति और सामान्य नीति के विशेष परिपार्श्वों में देखने पर नीति के ये दो ही विवेचनीय रूप हमारे सामने आते हैं।

राजनीति

राजनीति नीति का वह पक्ष है जिसका सम्बन्ध राजा और राज्य से है। संस्कृत के नीति ग्रन्थों में राजा, राजा के गुण, राज्य के अंग, राज्य-व्यवस्था आदि का वर्णन बड़ी विशदता से हुआ है। महाभारत को तो हम राजनीति का महान् कोष भी कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त पुराणों और स्मृतियों में भी राजनीति को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है।

राजा

भारत में राजा को देवताओं के स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया था। राजा और देवता में यदि कोई अन्तर था तो केवल इतना कि देवता देवलोक में निवास करते हैं और राजा भूतल पर निवास करता है। राजा के इस पद की पुष्टि मनु-स्मृति के इस वाक्य से हो जाती है —

महतीदेवता ह्येष नररूपेण तिष्ठति।[1]

मनु ने राजा को आठ देवताओं के अंश से उत्पन्न माना है।[2] चाणक्य

१. देखिये, मनुस्मृति, ७,८
२. देखिये, मनुस्मृति, ७,४

ने तो राजा के सम्बन्ध मे यहाँ तक कह डाला है कि उससे बड़ा कोई देवता नही है ।[1]

याज्ञवल्क्य ने राज्य को सप्तांग बतलाते हुए राजा को प्रथम स्थान दिया है ।[2]

राजसत्ता की ग्रावश्यकता पर प्रकाश डालते हुए मनु कहते हैं "ग्रराजकता की स्थिति मे जब यह लोक भय से ग्रत्यन्त ग्रापीड़ित हो गया तो विधाता ने उसकी रक्षा के लिये राजा का सृजन किया"[3] ।

ग्राधुनिक युग मे राजा के सम्बन्ध में उक्त मान्यतायें स्थिर न रह सकीं । भावना के स्थान पर बौद्धिक घटाटोप ने प्राचीन मान्यताग्रो की दुर्बलताग्रो को देखकर उन पर ग्राक्रमण करना ग्रारम्भ कर दिया । परिणामतः राजा को जो स्थान स्मृति ग्रादि मे मिला था वह तो सुरक्षित न रह सका, किन्तु ग्राधुनिक कवियो ने राजतन्त्र को प्रजातन्त्र के झरोखों से देखते हुये राजा के कर्तव्य को बडी तत्परता से प्रस्तुत कर दिया ।

राजा का कर्तव्य

राजा के कर्तव्य पर दृग्पात करते हुए सस्कृत कवियों ने उसे प्रजारक्षक कहा है । मनु राजा को प्रजा के साथ पितृवत् व्यवहार करने का निर्देश करते हैं ।[4] ग्राचार्य शुक्र ने प्रजारक्षण करना ग्रौर दोषियो को दण्ड देना राजा के ये दो प्रमुख कर्तव्य बतलाये हैं ।[5] महाभारत मे भी प्रजानुरंजन ही राजा का प्रथम कर्तव्य घोषित किया गया है-प्रजा का कार्य ही राजा का कार्य है, प्रजा का सुख ही राजा का सुख है, प्रजा का प्रिय ही राजा का प्रिय है ग्रौर प्रजा का हित

---

१. देखिये, चाणक्यप्रणीत सूत्र, ३७२

२. स्वाम्यमात्या जनो दुर्गं कोशो दण्डस्तथैव च ।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते ॥
—याज्ञवल्क्यस्मृति, १,१३,३५३

३. ग्रराजके लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥
—मनुस्मृति, ७,३

४ मनुस्मृति, ७,८०

५. शुक्रनीति, १,२७,२८

हो राजा का हित है अर्थात् राजा का सर्वस्व प्रजा के लिये है ।[1]

आलोच्य महाकाव्यों में भी प्रजानुरंजन ही राजा का कर्तव्य घोषित किया गया है । महाभारत के स्वर में स्वर मिलाते हुये महाकवि प्रतापनारायण पुरोहित 'नल नरेश' में कहते हैं-राजा चाहे आ रहा हो, चाहे जा रहा हो, चाहे स्वस्थ जीवन की स्थिति में हो और चाहे मृत्युशय्या पर पड़ा हो, चाहे वह सोच रहा हो और चाहे वह रो रहा हो, चाहे वह सो रहा हो या जाग रहा हो और चाहे वह खा रहा हो अथवा पी रहा हो, उसका प्रमुख कर्तव्य प्रजानुरंजन है । उसकी सिद्धि के लिये राजा को समुचित साधन जुटाने चाहियें । जो राजा अपनी प्रजा का अनुरंजन करता है, वही वास्तव में राजा है । जो ऐसा नहीं करता अथवा नहीं कर सकता वह केवल नाम का राजा है । धर्मशास्त्र के अनुसार उसकी सत्ता व्यर्थ है । [2]

महाकवि हरिऔध ने भी 'वैदेही वनवास' में इसी विचार की अभिव्यञ्जना की है:—

प्रजा-रंजन हित-साधन भाव ।
राज्य-शासन का है वर-अंग ।। [3]

कर्तव्य के परिपार्श्व में अधिकार

संस्कृत साहित्य में राजा के कर्तव्यों को उसके अधिकारों के परिपार्श्व में देखने का प्रयत्न हुआ है । यों तो अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है, किन्तु अधिकारवान् के लिये विशेष कर्तव्य का निर्देश किया गया है । राजा को अनेक अधिकार मिले हुए हैं, जिनमें से प्रमुख दो हैं-१. उचित कर लेकर प्रजापालन करना और २. अपराधी को दण्ड देना । शासन की व्यवस्था के लिये इन दोनों की बड़ी आवश्यकता है । संस्कृत नीति ग्रन्थों में यह निर्देश किया गया है कि राजा प्रजा से उसकी

---

१. प्रजाकार्यं तु तत्कार्यं प्रजासौख्यं तु तत्सुखम् ।
प्रजाप्रियं प्रियं तस्य स्वहितं तु प्रजाहितम् ।।
प्रजार्थं तस्य सर्वस्वमात्मार्थं न विधीयते ।
—महाभारत, अनु० प०, अध्याय १४५

२. नलनरेश, २,५५

३. वैदेही वनवास, ३,४

भाग या षष्ठांश [1] ग्रहण कर सकता है, इसलिये उसका यह कर्तव्य है कि प्रजा के धन और प्राणो की रक्षा करे,प्रजा का पुत्रवत् पालन करे। जो राजा अपने इस कर्तव्य का पालन नही कर पाता, वह अधर्मी और अघी है। [2]

आधुनिक महाकाव्यों मे भी यही स्वर स्फुरित दिखायी पड़ता है। द्वारिका प्रसाद मिश्र के शब्दो मे इस स्वर को सुनिये—

लेत नृपति षष्ठांश जो, रच्छत नहिं धन प्राण,
साखी वेदस्मृति सकल, अघी न तेहि सम आन। [3]

चाणक्य राजा का प्रमुख गुण नीतिशास्त्रानुगता मानते हैं [4] और शुक्राचार्य नीतिज्ञ राजा को सम्मान्य बतलाते हैं। [5]

गुण

उनका कहना है कि जो राजा स्वय धर्माचरण करता है वही अपने प्रभुत्व से प्रजा को धर्मानुसारी बना सकता है। [6]

महाभारत मे सयम या इन्द्रिय निग्रह राजा की नैतिक आवश्यकता मानी गयी है। इससे राजा का हित होता है। राजा के लिये इन्द्रियनिग्रह की आवश्यकता पर बल देते हुये धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से कहते हैं—

इन्द्रियाणि च सर्वाणि वाजिवत् परिपालय।
हितायैव भविष्यन्ति रक्षित द्रविणं यथा॥ [7]

इन गुणो के अतिरिक्त सभी भारतीय नीतिशास्त्रियों ने विनय, सयम, सनियमता, पराक्रम, दया, औदार्य, न्यायप्रियता आदि को राजा की योग्यता का अनिवार्य अ ग बतलाया है।

आलोच्य महाकाव्यों में भी राजाओं की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख इसी प्रकार हुआ है। शाक्यवंशीय राजाओ के गुणों का उल्लेख 'सिद्धार्थ' मे अनूप शर्मा ने इस प्रकार किया है—

---

१ देखिये, महाभारत, शा० प०, ६९, २५
२ देखिये, म०, शा० प०, १४०,१००
३ कृष्णायन, द्वारका काण्ड, पृ० १९४
४ चाणक्यप्रणीत सूत्र, ४८
५ शुक्रनीति, १,३३
६. वही, १, ५०-५१
७. महाभारत,आश्रमवासिक पर्व, ५, १३

विनय-युक्त उदार गंभीर थे,
अति सहिष्णु तथा अति धीर थे;
परम न्याय-परायण वीर थे,
सतत संयत भूपति शाक्य के।[1]

ऐसा ही चित्रण 'नलनरेश' महाकाव्य में राजा नल के गुणों का किया गया है—

वीरसेन के बड़े पुत्र, नल अति बल-धारी,
पराक्रमी, नीतिज्ञ और वैरी-बल-हारी।
+ + +
वे महान् गंभीर थे, दानवीर, रणवीर थे।
धर्मवीर थे और वे दयावीर थे, धीर थे।[2]

दण्डविधान

संस्कृत नीति-ग्रन्थों मे साम, दान, दण्ड, और भेद नीति के चार प्रमुख अंग बतलाये गये हैं। इनमें से दण्ड राजनीति का भी प्रमुख अंग है। दण्ड राजा का आयुध है, यह उसका कर्तव्य है।[3] प्रजा की रक्षा और शान्ति की व्यवस्था के लिये राज्य मे दण्ड-विधान की बड़ी आवश्यकता होती है। नृप चाहे कितना ही मृदु क्यों न हो, उसे दण्ड का आश्रय लेना ही चाहिये। जगत् की रक्षा करने वाला धर्म भी दण्ड की भूमिका पर ही गतिशील होता है। प्रिय-अप्रिय, माता-पिता और गुरु भी दोषी होने पर राजदण्ड के भागी हो सकते हैं।[4]

मंत्रि-चयन

राजा को मन्त्रियों का चयन बड़ी सावधानी से करना चाहिये,[5] क्योंकि मंत्री शासन-भार को सम्भालने के लिये स्तम्भ का कार्य करते हैं। जो राजा सम्यक् परीक्षा करके मन्त्रियों का चयन करता है उसकी हित-हानि नहीं होती।[6] महाभारत में भी स्थान-स्थान पर इसका निर्देश हुआ है।

---

१. सिद्धार्थ, पृ० १
२. नलनरेश, पृ० २७–२८
३. देखिये, शुक्रनीति १, २५
४. कृष्णायन, पृ० ४६५
५. देखिये, महाभारत
६. कृष्णायन, पृ० ४६४

मन्त्रियों के गुणों की प्रशंसा जिस प्रकार संस्कृत नीति साहित्य में की गयी है,[१] उसी प्रकार आधुनिक प्रबन्ध काव्यगत नीति-उक्तियों में भी की गयी है।[२]

सतर्कता

जैसी सतर्कता राजा को मन्त्रि-चयन में बरतनी चाहिये वैसी ही उसके साथ व्यवहार में बरतनी चाहिये। महाभारत में नीतिज्ञ राजा के लिये निर्देश किया गया है कि वह विश्वस्त पर भी विश्वास न करे। इसी आशय का अनुकरण 'कृष्णायन' की इस पंक्ति में मिलता है—

सचिव अनुचरहु समुचित पायी,
रहहि सतर्क सतत नर रायी।[४]

स्ववशता

"विश्वस्ते न विश्वसेत्" वाक्य से स्पष्टतः यह ध्वनि निकलती है कि राजा को चाहिये कि वह अतिविश्वास के फंदे में पड़कर अपनी स्ववशता को न खो दे। "सचिव, समासद्, सुहृद्, सजातीय आदि अनेक लोग राजा को दिनरात घेरे रहते हैं और सभी अपनी-अपनी इच्छा से प्रेरित होकर राजा को अपने वश में करना चाहते हैं, किन्तु नीतिनिपुण राजा राज्यसूत्र को किसी दूसरे के हाथों में अर्पित नहीं कर देता। वह अविश्वासी नहीं होता, किन्तु उसकी विश्वासिता स्ववशता एवं स्वतंत्रता की परिधि का अतिक्रमण नहीं कर पाती। प्रतीति का आभास देने वाला विश्वास ही राजा का प्रमुख सहायक होता है। इससे वह भृत्यों को सुहृद के समान आदर प्रदान करता है और सुहृद को सहोदर के समान सम्मान देता है। उसके व्यवहार से सहोदर को ऐसी प्रतीति होती है मानो सारा राजपाट उसी का हो। ऐसे आचरण से राजा अपने निकटवर्ती सब लोगों के हृदय को विजित कर लेता है।"[५]

जिस प्रकार अतिशय विश्वास राजा के हित का घातक होता है उसी

१. महाभारत, आश्रमवासिक पर्व, ५, १४

२. देखिये कृष्णायन, पृ० ४६४

३. कृष्णायन, पृ० ४६४, प, १५

४. कृष्णायन, पृ० ४६४ ५८ तु० की० किरातार्जुनीयम् १, १०

प्रकार अतिशंका भी उसके हित की शत्रु होती है। अतिविश्वास और अतिशंका के बीच का मार्ग ही राजा के लिये अनुसरणीय है।[1]

शत्रु के प्रति

पीछे कहा जा चुका है कि संस्कृत नीति-साहित्य में शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये साम, दान, दण्ड, भेद चार नीतियों का वर्णन है, किन्तु हितोपदेश साम, दान और भेद में से एक अथवा अनेक से शत्रु का समाधान करने का निर्देश करता है, युद्ध से कदापि नहीं।[2] युधिष्ठिर के प्रति भीष्म के मुख से इसी आशय का निर्देश 'कृष्णायन' में कराया गया है। भीष्म कहते हैं, "मुझे वही नृप प्रिय है जो प्रयत्न करके युद्ध रोकता है। प्रवीणतम राजा की विजय भी युद्ध में दैवाधीन होती है। विषम स्थिति उत्पन्न होने से अथवा दैवयोग से रणपरिणाम निश्चित नहीं होते। इस कारण नीतिनिपुण नृप साम, भेद और दान की नीति अपनाते हैं"।[3]

हितोपदेश के निर्देशानुसार प्रबल शत्रु के साथ कभी युद्ध नहीं करना चाहिये क्योंकि उसके साथ युद्ध करना हाथी के साथ युद्ध करके साक्षात् मृत्यु का आह्वान करना है।[4] इसी उक्ति की प्रतिध्वनि हमें 'कृष्णायन' की इस पंक्ति में मिलती है—

जब लगि सबल शत्रु नरनाथा।
आत्मघात सगर तेहि साथा॥[5]

साम

महाभारत के निर्देशानुसार राजा को वैतसीवृत्ति अपनानी चाहिये।[6] इस निर्देश की प्रतिध्वनि 'कृष्णायन' में देखिये :—

---

१. वही, पृ० ४६४, प० २५-२८

२ साम्ना दानेन् भेदेन समस्तैरथवा पृथक्।
साधितुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन॥
—हितोपदेश, विग्रह, ४३

३. कृष्णायन, पृ० ४६५

४. बलिना सह योद्धव्यमिति नास्ति निदर्शनम्।
तद्युद्धं हस्तिना सार्धं नराणां मृत्युमावहत्॥
—हितोपदेश, विग्रह, ४६

५. कृष्णायन, ४६६, प० ५

६. महाभारत, आश्रमवासिक पर्व, ६, १८

महति जबहिं सुरसरि घहरायी, बचत वेत्र लघु शीश नवायी ।
वृहदाकारहु तरु प्रतिकूला, नष्ट होत अविनीत समूला ॥
तिमि आपन-पर बल पहिचानी, अवसर परखि आचरहि ज्ञानी ।
रिपु प्रकृतिहि नित परखत रहही, जस रुचि सोइ करहि, सोइ कहही ।[1]

अर्थात जिस प्रकार नदी के तीव्रता से प्रवाहित होने पर वेत्र तो अपने को झुका कर बचा लेता है, किन्तु महावृक्ष प्रतिकूल धारा के सामने झुकता नही है, इसलिये वह समूल नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार प्रबल शत्रु के सामने उसके बल को परख कर आचरण करने वाला राजा नैतिक सफलता प्राप्त करता है और प्रतिकूल आचरण करने वाला अपना विनाश कर लेता है। अतएव वैतसीवृत्ति शत्रु पर विजय पाने का शान्तिपूर्ण उपाय है ।

दान

कभी-कभी राजा को दान नीति से भी काम लेना चाहिये । 'शुक्रनीति' मे यह बात स्पष्टत उल्लिखित है कि शक्तिशाली शत्रु को अनुकूल दान देकर शांत करना चाहिये ।[2] यही आशय दान नीति के सम्बन्ध म कुछ आधुनिक महाकवियों ने व्यक्त किया है । नीचे के उद्धरण मे यह आशय इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

रिपु प्रकृतिहिं × ×
लोभि बिलोकि देहि धन दाना ।[3]

भेद

नीति के सब अ गों मे भेद को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है, क्योंकि उसमें बुद्धिवैभव का कुशल प्रयोग होता है । नीति ग्रन्थों[4] मे भेद नीति की बड़ी प्रशसा की गयी है । कृष्णायनकार ने भी भेदनीति की प्रशसा की है । भेदनीति में कुशल राजा स्वय तो सबल राजा से मित्रता कर लेता है और शत्रु को उससे भिड़ा देता है । इस प्रकार वह रणभूमि मे भेद के सहारे शत्रु पर विजय प्राप्त

---

१. कृष्णायन, पृ० ४६६, प० ६-९
२ देखिये, शुक्रनीति, ४, ३०
३. कृष्णायन, पृ० ४६६, प० १०
४. देखिये, शुक्रनीति, ४,३४-३६

कर सकता है।[1] जो राजा साम दान में दक्ष होते हैं वे भी भेद का सम्मान करते हैं।[2]

"अत्यन्त प्रबल शत्रु को सेवा और नीति से, प्रबल को मान और दान से तथा हीनबल को युद्ध से सिद्ध करना चाहिये।[3] शुक्राचार्य ने भेद-नीति को सब से बढ़कर बताया है। वे कहते हैं कि "समबल शत्रु को मित्रता से तथा अन्य सब प्रकार के शत्रुओं को भेद-नीति से जीतना चाहिये। इतर शत्रुओं को जीतने का भेदेतर उपाय नहीं है"।[4]

दण्ड

दण्डनीति अन्तिम उपाय है। प्राण-संशय की स्थिति में राजा को दण्ड-नीति का आश्रय लेना चाहिये।[5] वास्तव में दण्ड-विधान हीन शत्रु के लिये है,[6] सबके लिए नहीं है। मित्र के साथ सदैव साम और दान से ही काम लेना चाहिये। उसके साथ भेद और दण्ड वर्जित है। रिपु और प्रजा का भेद तथा उसका पीड़न अपनी विजय के लिए ही होते हैं।[7]

असदाचार से निवारण दण्ड-दमन कहलाता है। जिससे प्राणी दमन को प्राप्त हो, वह उपाय भी दण्ड संज्ञक होता है।[8] यह उपाय राजाधीन होता है क्योंकि वह सबका प्रभु होता है। निर्भर्त्सन, द्रव्य हरण, पुर-निर्वासन, अंकन, व्यस्त क्षौर, असद्यान आरोहण, अंगच्छेद, वध और युद्ध, ये सभी उपाय दण्ड कहलाते हैं।[9]

युद्ध

दण्ड नीति में युद्ध का प्रमुख स्थान है क्योंकि युद्ध का प्रभाव राजा और प्रजा, दोनों पर पड़ता है। इससे कभी-कभी तो देश और राष्ट्र भ्रष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव भारतीय नीति में युद्ध को वर्जित बताया गया है। नीति-निर्देश

१. देखिये, इण्डायन, पृ० ४६६, प० १६–२०
२. वही पृ० ४६६, प० १८
३ शुक्रनीति, ४, १०२०
४. वही, ४, १०२१
५ वही, ४,३४
६ वही, ४,३५
७. शुक्रनीति, ४,३६
८. वही, ४,४०
६. वही, ४,४१–४३

है कि राज्य -हितैषी बुद्धिमान राजा को चाहिये कि वह यथासमव युद्ध को टालता रहे। उसे अपनी आय की वृद्धि के लिए साम, दान और भेद से ही काम लेना चाहिये। [१]

मिश्र जी ने भी 'कृष्णायन' मे यही आशय व्यक्त किया है—

तदपि तात मोहिं नृप सोइ भावत, करि उपाय जो समर बरावत।
केतनहु कोउ नृप बली प्रवीणा, युद्ध माहि जय दैव अधीना।
नाहिं दैव पर जासु भरोसा, देव परिस्थिति कहँ सो दोषा।
विषम स्थिति या दैव-वशाता, रण-परिणाम न निश्चित ताता।
ताते साम, भेद अरु दाना, अपनावत नृप नीति-निधाना॥ [२]

राजनीतिक दृष्टिकोण से कभी-कभी युद्ध आवश्यक हो जाता है, किन्तु युद्ध-प्रस्थान से पूर्व राजा को यह देख लेना चाहिये कि वह किस शत्रु पर आक्रमण करने जा रहा है। यदि वह अल्पसाधन है तो उसे लघु शत्रु पर भी आक्रमण नही करना चाहिये अर्थात् साधन सम्पन्न होने पर ही आक्रमण करना नीति-सगत होता है। [३] इसी आशय की अनुकृति मे मिश्र जी की यह उक्ति भी देखने योग्य है—"जब राजा दृढमूल हो तभी उसे शत्रु के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहिये" [४]।

प्रबल शत्रु द्वारा स्वय आक्रान्त होने की स्थिति मे राजा का कर्तव्य है कि वह या तो पलायन करदे अथवा दुर्गाश्रय प्राप्त करे। [५] आधुनिक महाकाव्यों मे भी इसी नीति का समर्थन किया गया है:—

सबल रिपुहिं लखि करत चढाई,
लेय दुर्ग महँ आश्रय धायी। [६]

---

१. देखिये महाभारत, शा० प०, ६६, २३–२४

२. कृष्णायन, पृ० ४६५

३ देखिये, शुक्रनीति, ४,१०११

४. कृष्णायन, पृ० ४६७, प० १७

५ यदा तु पीडितो राजा भवेद् राज्ञा बलीयसा।
तदाभिसश्रयेद् दुर्गं बुद्धिमान् पृथ्वीपति:॥
—महाभारत, शा० प०, ६९,३३

६. कृष्णायन, पृ० ४६७, प० २६

शुक्राचार्य ने मूलतः दो प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है—सहाय दुर्ग और सैन्य दुर्ग। ये दोनों सब दुर्गों के आश्रय होते हैं। राजा को ऐसे दुर्ग का आश्रय लेना चाहिये जो युद्ध सामग्री से पुष्ट अर्थात् अन्न, शूर, अस्त्र और कोष से सम्पन्न हो।[1]

दुर्गाश्रय

बिल्कुल इन्हीं शब्दों में तो नहीं, किन्तु कुछ भिन्न शब्दों में इसी आशय की प्रतिपादना आधुनिक महाकवि ने की है :—

जनपद-प्रतिनिधि, धनिक प्रजाजन,
सचिव, पुरोहित, सुहृद, राजजन,
तजहि न इनहि चतुर नर-नाथा,
राखहि दुर्ग माहि निज साथा।
खेतन ते द्रुम अन्न मँगायो,
राखहि सबल दुर्ग महँ लायो।[2]

"यदि शत्रु के आक्रमण के कारण राजा को सेना का स्थानान्तरण करना पड़े तो उसे चाहिये कि वह स्थानगत सभी सुविधाओं को ध्वस्त कर, जल, अन्न, तृण आदि के यत्नपूर्वक सरोध से शत्रु को पीड़ित करे और विषम देश में स्थित शत्रु को, पीछे से सेना का वेग बढ़ाकर, ध्वस्त कर दे।"[3] इसी प्रकार का निर्देश महाभारत में भी मिलता है कि राजा स्वयं ध्यान देकर खेतों में तैयार हुई अनाज की फसल को कटवाकर किले के भीतर रखवा ले अथवा जलवा दे।[4] नदी के मार्गों पर बने हुए सभी पुलों को तुड़वा दे, शत्रु के मार्ग में जो जलाशय हों, उनका सारा जल इधर-उधर बहा दे और जो जल बहाया

---

१. शुक्रनीति, ४,८५५, ८६०

२. कृष्णायन, पृ०, ४६७, प० ३०; पृ० ४६८, प० १–२

३. शुक्रनीति, ४,११८६

४. शस्याभिहारं कुर्याच्च स्वयमेव नराधिपः।
असम्भवे प्रवेशस्य दहेद् दावाग्निना भृशम्॥

—महाभारत, शा० प०, ६९,३७

न जा सके, उसे दूषित करदे, जिससे वह पीने योग्य न रह जाये।[1]

इसी ग्राशय का समर्थन मिश्र जी के इन शब्दों में मिलता है :—

सकहि न जेतिक धान्य सँभारो,
जेहि थल तहँहि देय सब जारी।
सकल सरित–सेतुन कहँ तोरी,
देय तड़ाग सरोवर फोरी।

कूप-वारि जो नहिं सकहि, नृपति बहाय सुखाय,
विष मिलाय दूषित करहि, सकहि न ग्ररि सोउ पाय। [2]

ग्रापत्काल में राजा को चाहिये कि वह धनी व्यक्तियों से धन उधार लेकर सेना की रक्षा करे।[3] इसी की भाव-छाया 'कृष्णायन' में भीष्म के वचनों में देखी जा सकती है :—

तदपि करहि जब सबल चढ़ायी।
दुर्दिन घटा घिरहि जब ग्रायी॥
धनिकन तें धन याचि उधारा,
करें नृपति वाहिनि विस्तारा।[4]

भारतीय राजनीति में ग्रनेक व्यक्तियों, वस्तुग्रों ग्रौर स्थानों की ... ग्रों का उल्लेख मिलता है। ... सबके ... चर ... की ग्रावश्यकता नहीं ... विशेष ... महत्त्व ग्राज ... जिस प्रकार ग्राज चर होते हैं ... प्रकार के होते थे। राजदूत ... प्राचीन ग्रौर ...

१.

२.

३.

४. कृष्णायन,

की स्थिति में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है, किन्तु 'गुप्तचर' की वही स्थिति है। यदि रामायण के अंगद को हम राजदूत के रूप मे देखते हैं तो मुद्रा-राक्षस के 'सपेरे' को गुप्तचर के रूप मे पाते हैं। दोनो का कार्यक्षेत्र भिन्न है।

दूत का प्रमुख कार्य अपने प्रभु का संदेश ले जाता है। गुप्तचर गुप्त रूप से गुप्तागुप्त बातों का पता लगा कर अपने स्वामी को सूचना देता है, इसलिये चर को राजा का चक्षु तथा राजा को 'चारनेत्र' (चरचक्षु)[1] कहा गया है।

वह साधु अथवा असाधु भाषी होने पर भी क्षम्य है।[2] 'रावण' महाकाव्य में इसी का छायानुवाद इस प्रकार मिलता है।:—

राजनीति इमि कहत, होत नृप के चर लोचन।
मृदु अथवा कटु कहौं, सुनिय तेहि छांडि संकोचन ॥[3]

भारतीय राजनीति ने दूत को अवध्य बतलाया है।[4] इसी नीतिवाक्य का समर्थन 'रावण' महाकाव्य मे इस प्रकार मिलता है:—

दूत हूं आयो अवध्य भयो,
मग सामुहे ते यहि देहु हटाई।[5]

उक्त विवेचन के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो में राजनीति के सम्बन्ध में जो उल्लेख, अथवा विवरण प्रस्तुत किया गया है, उस पर संस्कृत का पृथुल प्रभाव है। कहीं वाक्यो और पदों का अनुवाद है तो कही स्वतंत्र वाक्य-रचना में संस्कृत की भावछाया है।

सामान्य नीति

सामान्य नीति जहाँ व्यक्ति के अर्हणीय गुण, भाव एवं आचरण इत्यादि का निरूपण करती है वहीं सज्जनो और असज्जनों के लक्षणों पर

---

१. चारनेत्रः प्रजावेक्षी, महाभारत, शा० प०. ११८, २२
२. किरातार्जुनीय, १, ४
३. रावण महाकाव्य, १०, ६
४. वा० रा०, सुं० कां०, ५२, २१
५. रावण महाकाव्य, १०

भी प्रकाश डालती है। आलोच्य काव्यो मे राजनीति के समान ही सामान्य नीति का विवेचन भी यथाप्रसग और यथास्थान हुआ है। इन काव्यो का यह नीति विवेचन इतना विस्तृत और विशद नही है जितना कि सस्कृत काव्यो मे देखा जाता है। इनमे अधिकाश नीत्युक्तियाँ नितान्त मौलिक हैं और वे कवियो के स्वतत्र विचारो और जीवन-दर्शन को प्रकट कर रही हैं, कुछ ऐसी भी हैं जो संस्कृत के नीति ग्रन्थो मे तथा इतर ग्रन्थों मे वर्णित नीति से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हैं। यहाँ हम विषय की सीमाओं का ध्यान रख सस्कृत से प्रभावित उक्तियो का ही विवेचन करेंगे। सस्कृत से प्रभावित इन उक्तियो को हम तीन विभागो मे रख सकते हैं—१. व्यक्ति सम्बन्धी, २. आचरण सम्बन्धी तथा ३. गुण एव भाव सम्बन्धी।

व्यक्ति-सम्बन्धी

इस वर्ग मे सज्जन–दुर्जन आदि के लक्षणो तथा नारी, पुत्र आदि से सम्बन्धित उक्तियाँ हैं। दुर्जनो की निंदा और सज्जनो की प्रशसा तथा नारी, पुत्र आदि के कर्तव्य एव अधिकार से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ सस्कृत के नीति एव इतर ग्रन्थो मे प्रचुरता से विकीर्ण मिलती हैं। आलोच्य काव्यों मे भी ऐसी उक्तियाँ विविध प्रसगो मे अनुस्यूत हैं। नीचे प्रस्तुत किए गये उद्धरणो से प्रभाव की भूमिका का अनुमान लगाया जा सकता है:—

तेजस्वी

"तेजस्वी पुरुष अपने शत्रु का उत्कर्ष नही देख सकता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि दूरस्थ घन की गर्जना सुनकर सिंह वहाँ न पहुँचने पर भी समानान्तर गर्जना करता हुआ क्रोध से उसकी ओर देखता है।"[१]

शठ

शठो की निंदा सस्कृत काव्यो के समान ही आलोच्य काव्यो मे भी यथाप्रसग हुई है। "शठ व्यक्ति चाहे कितना ही अशक्त और असहाय क्यो न हो, वह कभी शठता नही छोडता।"[२] दुष्ट व्यक्तियो को सुश्रूषा से नही शक्ति से ही सीधा किया जा सकता है।

---

१. कृष्णायन, पृ० कां, छद ११८
   तुल०—किरातार्जुनीयम्, २, २१

२. केतनेउ शठ अशक्त असहायो,
   सकत न शाठ्य कबहुँ बिसरायो। —कृष्णायन, पृ० ७९

तुलनीय :—

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
—चाणक्य नीति ... ६

हमारी संस्कृति में नारी को बड़ा महत्त्वपूर्ण पद दिया गया है। नारी जहाँ रहती है उस स्थान को अपने गुणों से पवित्र कर देती है। वह पूज्या है। मनु नारी के सम्मान स्थल को देवालय के समान पवित्र मानते हैं—

नारी

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"[१]

आलोच्य महाकाव्यों में नारी को बड़ा सम्मान देने की घोषणा की गयी है। नलनरेशकार ने उसी व्यक्ति को देवता कहा है जो स्त्री का सम्मान करता है और वही देवधाम है जहाँ स्त्री का सम्मान होता है।[२]

"पुत्रो वै आत्मा" कह कर उपनिषद् ने पुत्र की महत्ता स्थापित कर दी थी। कादम्बरी[३] में पुत्र पिता को नरक से बचाने वाला बताया गया है, किन्तु यह उक्ति केवल सुपुत्र के लिए ही लागू हो सकती है, कुपुत्र के लिए नहीं।

पुत्र

इसीलिए नीति में कहा गया है कि—"एक ही सुपुत्र से वंश उसी प्रकार चमक उठता है जिस प्रकार एक ही चन्द्र चारों ओर प्रकाश करता है। इस काम को अनेक कुपुत्र उसी प्रकार नहीं कर सकते जिस प्रकार कि अनेक तारागण संसार के अंधकार को दूर नहीं कर सकते।[४]

श्री अनूपशर्मा उसी उक्ति के अनुकरण में, किन्तु कुछ आगे बढ़ा कर, इस प्रकार कहते हैं— 'जिस प्रकार अकेला सूर्य संसार का तप नष्ट कर देता

---

१ मनुस्मृति, ३, ५६

२. वही देवता कहलाता है, जो करता है स्त्री सम्मान।
देव धाम है वही, जहाँ पर है महिला का मान ॥
—नलनरेश, १२, ४५

३. पुन्नाम्नो नरकात्त्रायत इति पुत्रः, कादम्बरी, पूर्वभाग, राजा विलासवती-मातृवनय प्रसंग।

४. हितोपदेश, मित्रलाभ, १७

लगता है।[1] 'कृष्णायन' में मिश्र जी ने भी इस नीति का समर्थन करते हुए कहा है:—

जो अघ वधे अवध्यहिं होई,
वध्य वधे बिनु लागत सोई।[2]

धर्मपरायणता

'धर्म' मनुष्य द्वारा धारण किया जा सकता है और किया जाना चाहिये, इसलिए वह 'धर्म' है। भारतीय धर्म-शास्त्रियों ने धर्म को अनश्वर बतलाया है। संसार मे चित्त, वित्त, मही, गेह, देह, मित्र, शत्रु आदि सभी नाशवान् हैं। इनमे से कुछ भी तो साथ नही जाता, केवल धर्म ही मृत्यु के बाद मनुष्य का साथ देता है —

चल चित्त है, चल वित्त है, चल है मही, चल गेह है।
चल मित्र है, चल शत्रु है, चल पुत्र है, चल देह है।
बस धर्म यश को छोड़कर, कुछ हाथ में आता नहीं।
कुछ साथ मे आता नहीं, कुछ साथ मे जाता नहीं।।[3]

धर्म के विषय मे ऐसी उक्तियाँ संस्कृत-साहित्य मे स्थान-स्थान पर बिकीर्ण मिलती हैं। हितोपदेश[4] आदि इसके प्रमाण हैं।

शठेशाठ्यसमाचरेत्

'शठे शाठ्य समाचरेत्' संस्कृत की यह प्रसिद्ध उक्ति है तथा संस्कृत ग्रन्थों ने बार-बार इसका समर्थन किया है। अगर दुर्जन के साथ सज्जनता का व्यवहार किया जायगा तो यह सर्प को दुग्धपान कराना ही होगा। दुर्जन हमेशा दण्ड देने से ही सीधे होते हैं, इसलिए उनके किये गये दुष्ट व्यवहार का बदला दुष्टता करके ही लेना चाहिये—

---

१. यस्त्ववध्यवधे दोष स वध्यस्यावधे स्मृत ।
—महाभारत, शा० प०, १४३, २७

२ कृष्णायन, पृ० २८६

३. रामचरितचिन्तामणि, ७, २८

४. एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य ।
शरीरेण सम नाश सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥
—हितोपदेश, मित्रलाभ, १, ६७

वज्र से ही वज्र कटता है सभी हैं जानते,
दुष्टता जब कीजिये सब दुष्टजन हैं मानते। [1]

इस संसार में कोई व्यक्ति विश्वसनीय नहीं है। अविश्वस्त व्यक्ति पर तो वैसे भी विश्वास नही करना चाहिये। अगर बहुत

विश्वास

विश्वस्त मित्र भी हो तो भी उस पर पूरा विश्वास न करे, जैसा कि कहा भी है "न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्[2]। हमारे कवि मिश्र भी यही कहते हैं —

नेहीं विश्वसनीय चिर, कोऊ माँहि संसार,
मित्रहु ते रिपु-सम सजग, यह मत नीतिन सार। [3]

जीवन की जटिलताओं और विविधताओं मे घिरा हुआ मनुष्य कई बार अपने को यह सोचता हुआ पाता है कि वह किस

अनुकरणीय पथ

पथ का अनुसरण करे? कौनसा मार्ग धर्ममार्ग है? इस किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में पड़ा मनुष्य अपने अनुकरणीय पथ को नही जान पाता है। इस सम्बन्ध में संस्कृत-नीतिकार उसका मार्ग निर्देश करते हुए कहते हैं "धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्था" अर्थात् धर्म का तत्त्व बहुत गूढ़ है, सत्पथ वही है जिसका अनुसरण महापुरुषों ने किया है। हमारे विवेच्य कवि भी इसी विचार से सहमत प्रतीत होते है। पंत कहते हैं —

धर्म का तत्त्व गुहा में लीन,
महाजन बना गए जो पथ,
उसी पर चलने मे कल्याण। [4]

और 'जय भारत' मे कवि गुप्त भी यही निर्देश करते है—

विविध श्रुति-स्मृतियाँ कल्याणी,
भिन्न भिन्न मुनियों वाणी।

---

१. रामचरितचिन्तामणि, १८, ५६
२ म०, उ० प०, ३८,६
३ कृष्णायन, पृ० ७८
४. लोकायतन, पृ० ३१४

गूढ़ धर्म गति, पूछूँ किससे,
पथ यह, गये महाजन जिससे। [1]

विशुद्ध धर्मांग के रूप में सत्य के महत्त्व को सभी ग्रंथों में स्वीकारा गया है। चाणक्य नीति में कहा गया है—

सत्य — सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रवि।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्येप्रतिष्ठित॥ [2]

वाल्मीकि रामायण में भी यही उल्लिखित है कि जगत् में सत्य ही ईश्वर है, सदैव सत्य के आधार पर ही धर्म की स्थिति है। सत्य ही सबका मूल है, सत्य के अतिरिक्त कोई अन्य गति नहीं है। [3] सत्य के इसी नीति-सम्मत रूप को 'साकेत' के दशरथ प्रस्तुत करते है,—

सत्य से ही स्थिर है ससार,
सत्य ही सब धर्मों का सार,
सत्य ही यहाँ, प्राण-परिवार,
सत्य पर सकता हूँ सब वार। [4]

मनुष्य की कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी होती हैं जिन पर वश पाना उसके लिए असम्भव होता है। मनुष्य की कामवासनाएँ भी इन्हीं काम—वासना के अन्तर्गत आती हैं। ये कामेच्छाएँ निरन्तर परिवर्द्धमान हैं। इन पर अकुश रखना बड़ा दुष्कर है और इनको तृप्त करना बडा भयकर है। जितना इन्हें तृप्त किया जाता है, ये शान्त होने की अपेक्षा उसी प्रकार बढती जाती हैं जिस प्रकार कि घृत डालने से अग्निज्वाला। मनु अपना यह विचार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

---

१. जयभारत, पृ० २३४
२ चाणक्यनीति दर्पण, ५,१६
३. सत्यमेश्वरो लोके सत्यो धर्म सदाश्रित।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति पर पदम्।
वा० रा०, अ० कां०, १०६,१३
४. साकेत, सर्ग २, पृ० ४७

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ [1]

द्वारिकाप्रसाद मिश्र भी इसी भाव को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं:—

शांत होत नहिं कामना, किये काम उपभोग,
बढ़ति लालसा भोग-सम, ज्वाला जिमि घृत-योग । [2]

भाग्य

मनुष्य का भाग्य परिवर्तनशील है । कभी जीवन में सुख का प्रकाश और कभी दुःख का अंधकार होता है । मनुष्य को न तो सुख में प्रतिहर्षित होना चाहिये और न दुःख में प्रतिदुःखी, क्योंकि मनुष्य की भाग्य-रेखा काल-क्रम से उसी प्रकार परिवर्तित होती रहती है जिस प्रकार कि रथ-चक्र की नेमि कभी घूमती हुई नीचे आजाती है और कभी ऊपर चली जाती है । [3]

इस विवेचन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक महाकाव्यों में प्राचीन नीति-पद्धति का ही अनुकरण है । यह दूसरी बात है कि आधुनिक कवि कहीं-कहीं अपने शब्दों के साथ थोड़ा इधर-उधर चला गया हो, किंतु भाव में विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता । आधुनिकता ने सांस्कृतिक धारा को कभी अवरुद्ध नहीं किया है । हिन्दी-साहित्य इसका प्रमाण है ।

---

१. मनुस्मृति, २,६४

२. कृष्णायन, पृ० ४५३

३. रावण ७,४६

४. तु० की०—

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

—मेघदूत, उत्तरमेघ, ५२

●●●●

दार्शनिक सिद्धांत

७ दार्शनिक सिद्धांत

भारतीय महाकाव्यों मे दर्शन प्रमुख न होते हुए भी महत्त्वपूर्ण स्थान लिये हुए है। किसी सीमा तक यह प्रसिद्धि ठीक ही है कि भारतीय जन्म से ही दार्शनिक होता है। इस उक्ति में जो कुछ भी अतिशयोक्ति हो, किन्तु यह तथ्य विस्मरणीय नहीं है कि भारत मे दर्शन को बडी प्रमुखता मिली है और इस प्रमुखता के पीछे निहित रहा है धर्म-गुरुओं और आचार्यों के प्रति भारतीयों का वह सम्मान जिसके लिए वह विश्वविख्यात है। 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर' में इस बात की पुष्टि मिलती है। जो हो, इतना सही है कि दर्शन आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों मे दर्शन के लिए अवतीर्ण नहीं हुआ है, उसकी अवतारणा प्रासगिक ढग से धर्म या समाज के परिपार्श्व मे ही हुई है।

भारतीय दर्शन के दो प्रमुख वर्ग रहे हैं—'आस्तिक दर्शन' और 'नास्तिक दर्शन'। पहला ईश्वरवादी है और दूसरा अनीश्वरवादी। भारतीय षड्दर्शन प्रथम वर्ग में आते हैं तथा बौद्ध, जैन एव चार्वाक दर्शन दूसरे वर्ग मे। इन दोनों वर्गों का अपना-अपना महत्त्व है। दार्शनिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा में जितना योग मूल दार्शनिक ग्रथों का रहा है उससे कही अधिक पुराणों का रहा है। समाज पर दार्शनिक छाया डालने में जैनों के चरित-काव्य तथा बौद्धों की अनेक धार्मिक कथाओ का योग भी अविस्मरणीय है। इनसे समाज ने जो सस्कार ग्रहण किये हैं उनसे प्रत्येक भारतीय जन्मजात दार्शनिक बन गया है। आलोच्य काव्यो पर वेदान्त दर्शन का प्रमुख प्रभाव दीख पडता है। वेदान्त ने अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद के क्षेत्र में अनेक स्तर व्यक्त किये हैं। इसके प्रसार और प्रचार मे भारतीय सतों का भी बडा भारी योग रहा है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं हैं। यदि 'कामायनी' शैवाद्वैत की झाँकियो

से ओतप्रोत है तो 'साकेत' वेदान्त की भूमिका पर भक्ति की प्रतिष्ठा करता दिखाई पड़ता है। सांख्य का द्वितत्त्ववाद भी स्थान-स्थान पर अपने अस्तित्व का उद्घोष कर रहा है, किन्तु निरूप्य महाकाव्यों में न्याय, वैशेषिक, योग और मीमांसा के बहुत विरल प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं।

निरीश्वरवादी दर्शनों में से जैन दर्शन के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन 'वर्द्धमान' और 'परम ज्योति महावीर' में हुआ है तथा बौद्ध दुःखवाद और चार्वाक सुखवाद की भावना भी विवेच्य काव्यों को अनुप्राणित कर रही है। इसके साथ ही मानवतावादी दृष्टिकोण में जहाँ टाल्सटाय का निकटतम प्रभाव दृष्टिगोचर होता है वहाँ वैदिक सर्वसुखवाद तथा वेदान्तिक सर्वात्मवाद के साथ-साथ अहिंसावाद का भी साक्षात्कार होता है जिसमें बौद्ध, जैन और वैष्णव धर्मों की त्रिवेणी दिखाई देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक महाकाव्य दार्शनिक परिपार्श्व में नव्यताओं से प्रेरित होकर भी भारतीय दर्शन ■ प्रकार से अपनी दार्शनिक चेतना को पूर्ण करते हुए संस्कृत साहित्य के प्रति आभार व्यक्त कर रहे हैं।

प्रस्तुत अध्याय में हम विविध अनीश्वरवादी और ईश्वरवादी दर्शनों के सिद्धान्तों से आधुनिक महाकाव्य कहाँ तक प्रभावित हैं यह देखने का प्रयास करेंगे। अनीश्वरवादी दर्शनों में चार्वाक दर्शन भौतिकवाद का प्रतिपादक रहा है। इसे 'जड़वाद' और 'लोकायतमत' भी कहते हैं। इसके

चार्वाक दर्शन

प्रवर्तक बृहस्पति माने गये हैं।[1] इसे लोकायतमत इसलिये कहते हैं, क्योंकि यह लोगों में आयत या विस्तृत है।[2] इसका कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। वेदों, पुराणों तथा अन्यान्य भारतीय दर्शनों में इस मत का उल्लेख हुआ है और इन्हीं से इस मत का परिचय मिलता है।[3] इस सिद्धान्त को सार रूप में इन शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है—"सर्वथा लोकायत ही एक शास्त्र है जिसमें प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु—ये चार तत्त्व हैं, अर्थ

---

१. देखिये, सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाक-दर्शनम्' पृ० ३
२. देखिये, भारतीय दर्शन, पृ० ३६
३. देखिये, भारतीय दर्शन, पृ० ३५

ग्रौर काम दो ही पुरुषार्थ हैं, भूतो मे ही चैतन्य है। परलोक नहीं है। मृत्यु ही अपवर्ग है।[१]

चार्वाक 'शब्द' ग्रौर 'अनुमान' जैसे प्रमाणों का निषेध करते हुए प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं- प्रत्यक्षमेव प्रमाणं[२] अर्थात् प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। इन्द्रियो के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वही विश्वास-योग्य ग्रौर सत्य है। 'कृष्णायन' मे इन्द्रियग्राह्य वस्तुग्रों का ही ग्रस्तित्व बतलाते हुए चार्वाक मुनि धर्मराज से कहते हैं—

प्रत्यक्ष ही प्रमाण है

इंद्रिय-ग्राह्य वस्तु जो नाहीं,
नहिं ग्रस्तित्व तासु भव माहीं।[३]

अधिकांश भारतीय दर्शन जगत् की रचना आकाश, वायु, जल, ग्रग्नि ग्रौर पृथ्वी इन पाँचों तत्त्वों के योग से मानते हैं, पर लोकायतिक वायु, जल, अग्नि ग्रौर पृथ्वी इन चार प्रत्यक्ष भूतों की सत्ता ही स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार किण्व आदि मादक द्रव्यों से मदशक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार इन चारों तत्त्वों के देह-रूप में परिणत होने पर इन्ही से चैतन्य उत्पन्न होता है। इनके नष्ट होने पर चैतन्य का भी विनाश हो जाता है।[४] आधुनिक महाकाव्यो में भी भौतिकवाद के समर्थक चार्वाक से यही कहलवाया गया है—

चतुर्भूतात्मक सृष्टि

पृथ्वी, वारि, हुताशन, वाता,
इनते निर्मित यह तनु ताता।
भूत चारि ये तजि भव माहीं,
पचम तत्त्व कतहुँ कछु नाहीं।

---

१. सर्वथा लोकायतमेव शास्त्र तत्र प्रत्यक्षमेव प्रमाण,
पृथिव्यप्तेजोवायवस्तत्त्वानि, ग्रर्थकामौ पुरुषार्थौ भूतान्येव
चेतयन्ते। नास्ति परलोक । मृत्युरेवापवर्ग"
—देखिये, प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, द्वितीय ग्र क

२. सर्वदर्शन सग्रह, पृ० ३

३. देखिये, कृष्णायन, पृ० ५४६

४. सर्वदर्शन सग्रह, चार्वाक दर्शन, तत्त्वमीमासा, पृ० ४

मन बुद्धिहु नहिं तत्त्व नवीना,
इन सयोगज, इनहि अधीना ।
लेत जीव जब अ तिम श्वासा,
तन-सग मानस बुद्धि विनाशा ।
भूमि तत्त्व पुनि भूमि समायो,
सलिल माहिं पुनि सलिल विलायो ।
पावक महँ पावक मिलत, मिलत समीर समीर
रहत शेष नहिं कुछ कतहुँ, विनसत जबहि शरीर ।[1]

आत्मा का अनस्तित्व

चार्वाक आत्मा के अस्तित्व को भी नहीं मानते हैं, क्योंकि उसका प्रत्यक्ष नही होता है । वे तो चैतन्य-विशिष्ट देह को ही आत्मा मानते हैं,[2] क्योकि इसका ही प्रत्यक्ष होता है । आलोच्य काव्यों मे भी आत्मा के अनस्तित्व का प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है—

आत्मा कर श्रुति करति बखाना,
दख, केहि, कहाँ लखेउ, कस जाना ।

'सुख'–जीवन का चरम लक्ष्य

जीवन मे अधिक से अधिक सुख की प्राप्ति करना ही जडवादियो का नैतिक आदेश है । मानव जीवन समय की सीमा मे आबद्ध है, मृत्यु के पाश से कोई भी नही बच सकता है । वर्तमान जीवन को ही सुखपूर्वक जीने का प्रयास करो, क्योंकि एक बार नष्ट हुई देह का पुनरागमन नहीं हो सकता ।[4] परलोक-सुख की झूठी आशा में रहकर हमे इस जीवन के सुख को भी ठुकरा नही देना चाहिये । कल मयूर मिलेगा, इस आशा मे कोई हाथ मे आये कबूतर को नही छोड देता ।[5]

---

१ देखिये कृष्णायन, पृ० ४४६
२. 'चैतन्यविशिष्ट देह एवात्मा'—सर्वदर्शन सग्रह, पृ० ४
३. कृष्णायन, पृ० ४४६
४. 'यावज्जीव सुख जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचर ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत ।'—सर्वदर्शन सग्रह, चार्वाकदर्शन
५. भारतीय दर्शन (दत्त-चट्टोपाध्याय), पृ० ४३

स्त्री-आदि के आलिंगन आदि से उत्पन्न सुख ही पुरुषार्थ है। [1] इसी सुखवादी विचारधारा को 'साकेत-संत' में ऋषि जाबालि इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

धर्म-तत्त्व कहता है, सुख ही
एक ध्येय जीवन का जानो। [2]
मरे सभी परलोक-विचारक
मरे सभी संन्यस्त-प्रवतारी।
जिया वही, जिसने जग में,
मस्ती से निज आयु सँवारी। [3]

और

दो दिन का तो यह जीवन है
वह भी तप ही करते बीते ?
तप वे बेचारे करते हैं—
जिनको भोगों के न सुभीते।
यौवन की ये नयी उमंगें
दुनिया से उफ ! दूर न भागो।
ईश्वरता के सुख लो भोगो,
इस नन्दन में कुछ तो जागो। [4]

'जयभारत' में कीचक भी इसी सुखवादी विचारधारा का अनुमोदन करता हुआ कहता है—

रहने दो यह ज्ञान-ध्यान ग्रंथों की बातें,
फिर-फिर आती नहीं सुयौवन की दिन-रातें।
करिये सुख से वही काम, जो हो मनमाना,
क्या होगा मरणोपरान्त, किसने यह जाना ?
जो भावी की आशा किये वर्तमान सुख छोड़ते
वे मानो अपने आप ही निज हित से मुख मोड़ते। [5]

---

१. 'अङ्गनाद्यालिंगनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः'—सर्वदर्शन संग्रह, पृ० ५
२. साकेत-संत, १३, २८
३. वही, १३, २३
४. साकेत-संत, १३, २४
५. जयभारत, पृ० २६५

वेदाचार

चार्वाकों की मान्यतानुसार न तो स्वर्ग है, न अपवर्ग, न परलोक में रहने वाली आत्मा ही है। [1] अग्निहोत्र करना, त्रिवेद पढना, त्रिदण्ड धारण करना, भस्म लगाना आदि बुद्धि और पौरुष से हीन व्यक्तियों की धातृ-निर्मित जीविका है। [2] इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से किये गये वेदोक्त कर्मों का भी बहुत उपहास किया है। [3] इन्होंने वेदों को धूर्तों का कार्य बतलाया है। [4] भौतिकवादियों के इस दर्शन की छाया आधुनिक महाकाव्यों के कुछ प्रसंगों में मिलती है। वह नीचे के उद्धरण में देखी जा सकती है—

पौरुष-रहित, अकिंचन, दीना,
विप्र चाट—पटु, कपट प्रवीणा,
जग प्रत्यक्ष असत्य बतायो,
वचत धनिन स्वर्ग-गुण गायो।
हरि धन तासु करावत अनशन,
आपु पचावत षटरस व्यंजन।
निरय पंथ नव पंथ बनावत,
सुर पूजा मिस आपु पुजावत।
श्रुति पाखंडहिं, नाहिं प्रमाणा,
धूर्तन-वार्ता शास्त्र पुराणा। [5]

जैन दर्शन

'वर्द्धमान' जैसे महाकाव्य में जैन-दर्शन का विस्तृत विवेचन हुआ है। वास्तव में इसके रचयिता का उद्देश्य जैन-दर्शन के सिद्धान्तों को काव्य में निरूपित करना रहा है। इसी प्रकार 'परम ज्योति महावीर' में भी इस दर्शन की मान्यताओं का उल्लेख व्यापक धरा पर हुआ दिखाई पड़ता है।

---

१ न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
—सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाकदर्शन, छंद १२

२. अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता।
—सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाक दर्शन, छं० १३

३, सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाक दर्शन, छं १४-१७

४ त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचरा, वही, छं० २१

५. कृष्णायन, पृ० ४४६

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष[1] आदि जिन सात तत्त्वों का वर्णन जैन दार्शनिकों ने किया है उन सभी का विवेचन आलोच्य काव्यों में हुआ है।

षड्द्रव्य

जैन दार्शनिक तत्त्वों को दो रूपों में विभक्त करते हैं—अस्तिकाय द्रव्य तथा अनस्तिकाय द्रव्य। अस्तिकाय द्रव्य दो प्रकार के हैं—जीव और अजीव तथा अनस्तिकाय द्रव्य केवल 'काल' है।[2] 'जीव' चेतन द्रव्य है।[3] धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्‌गल ये पांच 'अजीव' हैं।[4] इस प्रकार पांच अस्तिकाय और एक अनस्तिकाय (काल) को मिलाकर छह द्रव्य प्रसिद्ध हैं।[5] इन षड्द्रव्यों का वर्णन 'परम ज्योति महावीर' काव्य में बहुत कुछ इसी प्रकार से मिलता है —

> हे भव्यो ! जीव-अजीवों का-
> समुदाय जगत कहलाता है।
> औ' पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, काल,
> आकाश अजीव कहाता है।
> अतएव उक्त इन छह द्रव्यों-
> से भिन्न वस्तु है कोई नहीं।[6]

आस्रव और बंधन

अधिकांश भारतीय दर्शन यह मानते हैं कि जीव अपने वास्तविक रूप में शुद्ध-बुद्ध-चेतन है, पर वह देह के बंधन में पड़कर अनेक प्रकार के दुःख भोगता है। जैन दर्शन चैतन्य जीव के बंधन पर अपने ढंग से विचार करता है।

जैन दर्शन के अनुसार शरीर का निर्माण जड़तत्त्वों (पुद्‌गलों) से होता है। ये पुद्‌गल इसलिये कहलाते हैं कि इनका संघटन और विघटन

---

१. 'जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्'-तत्त्वार्थ सूत्र, १,४
२ भारतीय दर्शन (डा० दत्त एवं चटर्जी), पृ० ६०
३. 'चेतनालक्षणो जीव',षड्दर्शन—समुच्चय, ४७ पर गुणरत्न की टीका(४६)
४. 'अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्‌गला', तत्त्वार्थसूत्र, ५, १
५ 'षड् द्रव्याणीति प्रसिद्धि,—सर्वदर्शन संग्रह, आर्हतदर्शन, अनु० २०
६ परम ज्योति महावीर, सर्ग २०, पृ० ५२७

संभव है।[1] विशिष्ट प्रकार के शरीर के लिए विशिष्ट प्रकार के पुद्गलों की आवश्यकता होती है। इन पुद्गलो का संचय मनुष्य मे कर्मों के अनुसार ही होता है। "*जीव की ओर कितने तथा किस प्रकार के पुद्गल कण आकृष्ट होंगे, यह कर्म या 'वासना' पर निर्भर है। ऐसे पुद्गल कण को कर्म-*पुद्गल का नाम दिया जाता है, इसी को कर्म भी कहते हैं। जीव की ओर जो कर्म पुद्गलो का प्रवाह होता है, उसे आस्रव कहते हैं।"[2] क्रोध, मान, माया, लोभ आदि 'कषाय' ही कर्म-पुद्गलों के प्रवाह या आस्रव के कारण हैं।[3] इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार कषायो के कारण जीव का कर्मानुसार पुद्गलबद्ध होना ही 'बंधन' है। जैसा कि उमास्वाति भी कहते हैं कि 'सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलान् आदत्ते स बन्ध'[4]। महाकवि अनूप शर्मा भी आस्रव के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

> स राग आत्म-स्थित राग भाव से
> समागता पुद्गल राशि कर्म हो,
> शरीर मे आगत दुख-दायिनी
> प्रसिद्ध है आस्रव नाम से सदा।[5]

जब तक जीव की ओर कर्मास्रव होता रहता है तब तक जीव का मुक्ति पाना असंभव है—

> सलिल-आस्रव हो जिस कूप में
> विगत नीर कभी बनता नहीं,
> इस प्रकार स-कर्म मनुष्य को
> कब अवाप्त हुई गति निर्जरा ?[6]

कवि सुमेश भी कर्म—क्षय को मुक्ति का उपाय मानते हैं—

---

१. 'पूरयन्ति गलन्ति च', सर्वदर्शन संग्रह, आर्हतदर्शन
२ भारतीय दर्शन (दत्त एवं चटर्जी कृत), पृ० ६६
३, तत्त्वार्थ सूत्र, ८, १०
४ तत्त्वार्थ सूत्र, ८, २
५. वर्द्धमान, १०, ६५
६. वही, १३, ६४

जब तक न कर्म क्षय होते हैं
तब तक होता अवतरण-मरण ।
कर्मों के क्षय होते ही तो
कर लेती इसको मुक्ति वरण ।[1]

जैन धर्म मोक्ष के दो कारण मानता है-संवर और निर्जरा । गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह-जय, चारित्र्य आदि से आस्रव का निरोध करना ही संवर है ।[2] आलोच्य काव्यों में संवराभिधेया क्रिया का वर्णन इसी प्रकार मिलता है—

संवर, निर्जरा

मुनीश योग व्रत-गुप्ति आदि से
सयत्न कर्मास्रव-द्वार रोकते;
यही क्रिया संवर नाम-धारिणी
विमुक्ति-सपादन में अमोघ है ।[3]

'संवर' के उपरान्त निर्जरा नामक अवस्था आती है । जीव में प्रविष्ट हुए कर्मों को तपस्या आदि से नष्ट कर देना ही 'निर्जरा' है । यह दो प्रकार की होती है—'सकाम निर्जरा' और 'अकाम निर्जरा' ।[4] यम धारण करने वाले योगियों की निर्जरा सकाम होती है तथा अन्य प्राणियों की निर्जरा अकाम अर्थात् यथाकाल स्वतः होने वाली होती है ।[5] महाकवि अनूप ने 'निर्जरा' और उसके भेदों का वर्णन बड़ी विशदता से किया है । 'निर्जरा' के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए और उसे मुक्ति में सहायक बताते हुए वे लिखते हैं—

---

१. परम ज्योति महावीर, पृ० ४७८

२. 'आस्रवनिरोध संवर,' 'सगुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः'—तत्त्वार्थसूत्र, ६, १–२

३. वर्द्धमान, १३, ७३

४. संसारबीजभूतानां कर्मणां जरणादिह ।
निर्जरा सम्मता द्वेधा सकामाकामनिर्जरा ॥
—सर्वदर्शन संग्रह, आर्हत दर्शनम्, छं० ३८

५. 'स्मृता सकामा यमिनामकामा त्वन्यदेहिनाम्
—सर्वदर्शन संग्रह, आर्हत दर्शनम्, छं० ३६

यथा-यथा योग-तपादि यत्न से
करे यती नित्य स्व-कर्म-निर्जरा,
तथा-तथा ही उसके समीप में
अवश्य आती शुभ मोक्ष-इन्दिरा ।[1]

'निर्जरा' के दोनों भेदो को उन्होंने 'सकाम' और 'अकाम' नाम न देकर 'सविपाक' और 'अविपाक' नाम दिया है । दोनो की व्याख्या नीचे के दो छन्दों मे देखी जा सकती है—

अतीत से संचित कर्म-राशि का
विनाश होना अविपाक निर्जरा,
कही गयी सिद्ध मुनीन्द्र से सदा
अवश्य ही संग्रहणीय साधना ।[2]

तथा

स्वभाव से ही वह, जो मनुष्य के
स्वतंत्र कर्मोदय-काल मे उठे,
सदा परित्याग करे स-यत्न सो
विकार-युक्ता सविपाक निर्जरा ।[3]

त्रिरत्न

कर्मास्रवों के निरोध और मुक्ति की प्राप्ति के लिए जिन साधनों का वर्णन जैन ग्रंथो में हुआ है उनका विशद न सही पर सांकेतिक उल्लेख तो आधुनिक काव्यों मे भी मिल ही जाता है । जिन धर्म में सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान तथा सम्यक्-चरित्र इन त्रिरत्नों को मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है ।[4] आधुनिक महाकाव्य 'वर्द्धमान' में इसकी छाया इस प्रकार दिखाई देती है—

अमोघ रत्नत्रय के प्रभाव से
अवाप्त होती वह मुक्ति जीव को

---

१. वर्द्धमान, १३, ८०
२. वर्द्धमान, १३, ७८
३. वही, १३, ७९
४. सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः ।

—तत्त्वार्थसूत्र १.१

अनंद-आनंद समुद्र-रूपिणी
प्रसिद्ध है जो जिन-धर्मशास्त्र में ।[1]

जैन धार्मिकों ने दशांग धर्म, द्वादश अनुप्रेक्षा, पंचमहाव्रत, द्वाविंशति परीषहजय को कर्मास्रव-निरोध के लिए आवश्यक माना है। संवर क्रिया पर विचार करते हुए हमने इनका उल्लेख किया है। ये सम्यक्-चरित्र के आवश्यक अंग हैं। विवेच्य काव्यों में इनका उल्लेख भी देखा जा सकता है। जैन धर्म में दस प्रकार के धर्मों को आचरणीय माना है। ये हैं—क्षमा, मार्दव (मृदुता), आर्जव (सरलता), शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य।[2] इस दशांगशोभी धर्म का रूप 'वर्द्धमान' की इन पंक्तियों मे द्रष्टव्य है—

दशांग धर्म

क्षमा-दया, सयम, सत्य, शौच से,
तपाऽऽर्जव-त्याग विरागभाव से,
कि युक्त जो मार्दव ब्रह्मचर्य से
दशांग-शोभी जिन-धर्म रूप है।[3]

अनुप्रेक्षादि साधन

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व और धर्म के चिंतनरूप जो द्वादश अनुप्रेक्षाएँ जैन धर्म में मान्य हैं,[4] उन सभी का विस्तृत विवेचन 'वर्द्धमान' महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में हुआ है। इनके अतिरिक्त पंच महाव्रतों[5] और परीषहजय[6] आदि साधनों का सांकेतिक विवरण भी विवेच्य काव्यों में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है।

---

१. वर्द्धमान, १३, ३०
२. "उत्तम. क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः।"

—तत्त्वार्थ सूत्र, ९, ६

३. वर्द्धमान, १३, ६५
४. तत्त्वार्थसूत्र, ९, ७
५. परम ज्योति महावीर, पृ० ३६५
६. 'बाईस परीषह सह लेते, विचलित करते परिणाम न पर'

—परमज्योति महावीर, पृ० ३६५

यह विवेचन यह प्रमाणित करता है कि 'जैन दर्शन' ने आधुनिक हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया है। आलोच्य महाकाव्य इस मत की छाया को किसी-न-किसी अंश मे व्यक्त अवश्य करते हैं।

बौद्ध दर्शन

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो पर जिस प्रकार यत्र तत्र जैन-दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। बौद्धदर्शन की *जिन प्रमुख चार भावनाओं का उल्लेख माधवाचार्य ने* 'सर्वं क्षणिक क्षणिक, दु ख दु ख, स्वलक्षण स्वलक्षण, शून्यशून्यमिति'[1] कहकर दिया है, उनमे से क्षणिकवाद, दु खवाद और शून्यवाद की भावनाएँ तो आलोच्य महाकाव्यो मे भी प्रस्फुटित दीख पड़ती हैं।

दु.खवाद

बौद्ध दार्शनिक सासारिक जीवन को नितात दुख मय बताते हैं। बुद्ध ने जिन चार आर्यसत्यों का प्रतिपादन किया था उनके मूल मे भी दु ख ही रहा है।[2] आधुनिक हिन्दी काव्यों मे भी स्थान-स्थान पर दु.खवादी विचारधारा का विनिवेष दृष्टिगोचर होता है। 'मीरां महाकाव्य' की निम्न पक्तियो मे दु खवाद का स्पष्ट आभास मिलता है—

> उसको कुछ ऐसा हुआ ज्ञात
> *इस मर्त्यलोक मे तो केवल दु ख ही दु ख है आयात, घात।*[3]

बुद्ध चरित्र पर आधारित 'सिद्धार्थ' महाकाव्य मे दु खवादी विचारधारा पाया जाना का नितान्त स्वाभाविक ही है। बौद्ध दर्शन के अनुकूल 'सिद्धार्थ' मे ससार को नाना सतापो, क्लेशों और बाधाओ से युक्त चित्रित किया गया है—

> फैंसे फैंसे सकल जग के घोर सताप नाना,
> सारे प्राणी सुलभ करते क्लेश की पात्रता हैं
> बाधाओं से व्यथित बनते, वृद्ध होते दुखी हैं,
> *आती मृत्यु स्थगित करती देह की प्रक्रिया भी।*[4]

---

१. माधवाचार्य, सर्वदर्शनसग्रह, बौद्धदर्शन, अनु० ६
२ "दु खसमुदायनिरोधमार्गाश्चत्वार आर्यबुद्धस्याभितानितत्वानि।
तत्र दुख प्रसिद्धम्"—सर्वदर्शनसग्रह, बौद्धदर्शन, अनु० २८
३ मीरां महाकाव्य, सर्ग ८, पृ० १५०
४. सिद्धार्थ, पृ० १५४

और भी

> देखा मैंने सब जगत में व्याधि का राज्य फैला,
> प्रासादों में सुख न मिलता, सार शून्या धरा है
> तो भी कैसी मोहमितिकारी वृत्तियाँ हैं नरों की,
> काँटे भू में, उपल पथ में, हाय ! फैले हुए हैं।[1]

महाकवि प्रसाद भी बौद्ध दर्शन के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। वे भी संसार को दुःखमय मानते हैं।[2] हाँ, यह अवश्य है कि उन्होंने इस दुःख की परिणति शैव-दर्शन के आनंदवाद में करके इसके निवारण का अच्छा उपाय निकाल लिया है। 'कामायनी' में भी यत्र-तत्र उनकी दुःखवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है—

> इस दुखमय जीवन का प्रकाश,
> नभ नील लता की डालों में
> उलझा अपने सुख से हताश,
> कलियाँ जिनको मैं समझ रहा
> वे काँटे बिखरे आसपास।[3]
> विश्व कि जिसमें दुख की आँधी
> पीड़ा की लहरी उठती,
> जिसमें जीवन मरण बनाया
> बुद्बुद् की माया नचती।[4]

क्षणिकवाद बुद्धानुयायी प्रत्येक वस्तु को परिवर्तनशील, क्षणिक और नाशवान् मानते हैं। 'यत्सत्तत्क्षणिक'[5] अर्थात् जिसकी सत्ता है, वह क्षणिक है। यही कारण है कि बौद्ध आत्मा में भी विश्वास नहीं करते क्योंकि आत्मा नाम की

---

१. सिद्धार्थ, पृ० ११४
२. "मैं स्वयं हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूँ, केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक-इतना ही कि संसार दुखमय है।"
—चन्द्रगुप्त, पृ० ७१
३. कामायनी, पृ० ११८
४. वही, पृ० २२३
५. सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन, अनु० ७

किसी स्थायी वस्तु का अस्तित्व नही हो सकता। 'सिद्धार्थ' के बुद्ध इसी का प्रचार करते है—

> चलायमाना गति है त्रिलोक की,
> विलीयमाना सब विश्व संपदा,
> राकेश मानो उस एक सत्य को,
> चले पुन स्थापन को नृलोक में।[१]

कवि प्रसाद पर भी इस क्षणिकवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। 'कामायनी' की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं—

> जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घनमाला मे,
> सौदामिनी सधि-सा सुन्दर क्षण-भर रहा उजाला मे।[२]

शून्यवाद

बौद्ध दर्शन की विचारधारा की एक लहर 'शून्यवाद' है। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन इसके प्रबल समर्थक थे। इन्होने अपनी *'माध्यमिककारिका' मे शून्यवाद का विस्तृत विवेचन* किया है। इन्होने मूल सत्ता को 'सत्', 'असत्', 'सदसत्', 'असत्तन्नसत्' से विलक्षण माना है।[३] यही इनका शून्यवाद है क्योंकि चतुष्कोटि से विनिर्मुक्त तत्त्व शून्य ही है।[४] शून्यवाद का प्रभाव किसी अंश तक 'सिद्धार्थ' पर भी है—

> ऐसा है वह शून्य यहा जिससे आकाश भी स्थूल है,
> पारावार अगाध भी न जिसकी पाते कभी थाह हैं।[५]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बौद्ध दर्शन ने कई मार्गों से हिन्दी साहित्य पर अपनी छाया डाली है। हिन्दी साहित्य विशेषतः सत साहित्य, *सिद्धों और नाथो का आभार नही भुला सकता* और उन्ही के माध्यम में सत साहित्य मे दुःखवाद, क्षणिकवाद एव शून्यवाद का प्रवेश हुआ प्रतीत

---

१. सिद्धार्थ, सर्ग १८, पृ० २८६
२. कामायनी, चिंता सर्ग, पृ० १६
३. नागार्जुन, माध्यमिक-कारिका, १, ७
४. सर्वदर्शनसग्रह, बौद्धदर्शन, अनु० १७
५. सिद्धार्थ, सर्ग १८, पृ० २८३

होता है। सत-साहित्य की परम्परा आज भी समाप्त नही हो गयी है। सतों के उपदेश आज भी देश मे बडे मनोयोग से पढे-सुने जाते हैं। आधुनिक साहित्य भी सतों के कितने ही सिद्धान्तों से प्रभावित है। अतएव आधुनिक हिंदी महाकाव्यो पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव आश्चर्य की बात नही है।

साख्य दर्शन

यह दर्शन भारतीय दर्शनो में सबसे अधिक प्राचीन है। इसके प्रणेता महर्षि कपिल माने जाते हैं। भारत का प्राचीनतम साहित्य साख्य की विचारधारा का उल्लेख प्रस्तुत करता है। साख्य दर्शन का प्रमुख उद्देश्य आत्मज्ञान का सम्यक् उपलाभ है। इसीलिए इसे 'साख्य' अभिधा प्रदान की गयी है। साख्य द्वितत्ववादी दर्शन है क्योकि वह पुरुष और प्रकृति, दोनों को मूल तत्त्व स्वीकार करता है और इन्ही से सृष्टि का उद्भव मानता है।[1]

प्राय सभी पुराण साख्य के प्रभाव को व्यक्त करते हैं। सस्कृत साहित्य की परम्परा में हिन्दी साहित्य भी सांख्य का ऋणी रहा। नाथ और सत साहित्य द्वैतवादी न होता हुआ भी साख्य के अनेक सिद्धान्तो का ऋणी है। तत्त्व-सख्या की मीमासा जहाँ-जहाँ हुई है, वहा-वहाँ साख्य की शाखाएँ फैली हुई समझनी चाहिये। सगुण कवियों ने गीता के अनुकरण मे और स्वतन्त्र रूप से भी साख्य के प्रभाव को व्यक्त किया है। 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'परमानन्द-सागर' आदि रचनाएँ ही नही, वरन् एक प्रकार से समग्र सगुण भक्ति काव्य साख्य का आभारी है। इस परम्परा का निर्वाह आधुनिक महाकाव्यों ने भी किया है।

महाकवि पत सांख्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—

सांख्य क्या ? सम्यक् तत्त्वज्ञान,
न्याय वैशेषिक से प्राचीन।
कपिल कर गये प्रथित सिद्धान्त,
प्रथित जो रहे वेद कालीन।
अविद्या आत्मा का दे बोध,
जगाता मन में सांख्य विवेक।

---

१. भारतीय दर्शन (दत्त एव चटर्जी), पृ० १६८–६६

सत्त्व रज तम से त्रिगुणातीन
शुद्ध ग्रात्मा की ले दृढ़ टेक ।[१]

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि-रचना दो तत्त्वो से होती है ग्रौर वे हैं पुरुष ग्रौर प्रकृति । पुरुष निष्क्रिय, निःसंग एव ग्रविकारी है[२] तथा प्रकृति सत्त्व, रजस् ग्रौर तमस् के योग से त्रिगुणात्मिका है ।[३] 'लोकायतन' मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इन शब्दो मे मिलता है—

पुरुष ग्रौर प्रकृति

द्वैतमूलक ग्रधिदर्शन सांख्य
मूलतः पुरुष प्रकृति दो तत्त्व,
प्रकृति जड़-सत रज तम गुण साम्य,
पुरुष चेतन-निर्गुण, निःसत्त्व ।[४]

पुरुष-प्रकृति के सयोग से चराचर जगत् की उत्पत्ति बतलायी गयी है । इस सिद्धान्त का निरूपण 'कृष्णायन' में इन शब्दों मे किया गया है—

उपजत जगत चराचर जेते,
प्रकृति-पुरुष सयोगज तेते ।[५]

सांख्य के अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । प्रकृति के त्रिगुण 'जीव' के बधन का निर्माण करते हैं, इसलिए उन्हे 'गुण' कहा जाता है ।[६] 'कृष्णायन' मे इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है —

त्रिगुण

सत्त्व, रजस्, तमस् जे त्रय गुण ।
प्रकृतिहि ते उपजत ये ग्रर्जुन ।
ग्रात्मा जदपि विकार-विहीना,
बाँधि देह ये करत ग्रधीना ॥[७]

---

१. लोकायतन, पृ० ३२५
२ भारतीय दर्शन (ले० दत्त एव चटर्जी), पृ० १७५
३. वही, पृ० १७२
४ लोकायतन, पृ० ३२५
५. कृष्णायन, पृ० ३३४
६. भारतीय दर्शन (ले० दत्त एव चटर्जी), पृ० १७२
७. कृष्णायन, पृ० ३३५

इन तीनों गुणों मे से सत्त्वगुण सुखात्मक, रजोगुण दुःखात्मक और तमोगुण मोहात्मक है। सत्त्वगुण प्रकाशक है, रजोगुण प्रवर्तक है और तमोगुण नियामक है। सत्त्वगुण लघु और प्रकाशक माना गया है, रजोगुण दूसरे गुणों को सहायता देकर उन्हें अपने-अपने कार्यों मे नियोजित करने वाला और चचल माना गया है तथा तमोगुण भारी और आवरण करने वाला माना गया है। यद्यपि ये गुण परस्पर-विरोधी हैं तो भी परस्पर मिलकर पुरुष के उपभोगार्थ दीपक की भाँति कार्य करने वाले हैं।[1]

प्रकृति और उसके तीनों गुणों का विवेचन गीता मे भी किया गया है। इसमें सृष्टि का विकास सांख्य दर्शन के अनुसार ही निरूपित किया गया है। कृष्ण अर्जुन को प्रकृति के त्रिगुणों की मीमांसा करते हुए कहते हैं–हे अर्जुन ! सत्त्व, रजस् और तमस् प्रकृति से उत्पन्न हुए ये तीनो गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर मे बाँधते हैं।[2] सत्त्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तमोगुण ज्ञान का आच्छादन करके प्रमाद में लगाता है।[3] रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर सत्त्व गुण बढता है, रजोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर तमोगुण बढता है तथा तमोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।[4] आलोच्य काव्यों में सांख्य की त्रिगुणात्मक प्रकृति और उसके गुणों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

निर्मल, अत प्रकाश-पद, दोषहु तेहि महँ नाँहि,
बाँधि लेत अस सत्व गुण जीव ज्ञान-सुख माँहि।

रागात्मक इन माँहि रजोगुण, तृष्णा, रति उपजावत अर्जुन।
कर्मासक्ति ताहि तै होई, बाँधत जीवन कर्मोंहि सोई।
तामस गुण अज्ञान प्रजाता, डारत सबहिं मोह महँ ताता !
निद्रालस, प्रमाद उपजायो, करत निबद्ध जीव-समुदायो।
होत सत्व ते सुख महँ रागा, रज ते धर्म माँहि अनुरागा।
करत तमोगुण ज्ञानाच्छादन, होत पार्थ ! कर्तव्य विस्मरण।

१. देखिये, सांख्यकारिका, १२–१३
२ गीता, १४, ५
३. गीता, १४, ९
४. गीता, १४, १०

पराभूत करि रज तम दोउ गुण, पावत वृद्धि सत्व गुण अर्जुन।
विजित सत्व-तम रज अधिकायी, जीति सत्व रज तम बढ़ि जायी।[1]

सृष्टिक्रम

साख्यदर्शन के अनुसार सृष्टि का प्रारभ पुरुष और प्रकृति के मिलन से होता है। सृष्टि मे सर्वप्रथम 'महत्' तत्त्व का जन्म होता है, महत् या बुद्धि से अहकार की उत्पत्ति होती है। सात्त्विक और तामसिक इन दो अहकारों मे से सात्त्विक अहकार से एकादश इन्द्रियों (५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मेन्द्रिय + मन) तथा तामसिक से पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है जिनसे पच महाभूतो की उत्पत्ति होती है। सृष्टि की यह प्रक्रिया 'साख्यकारिका'[2] मे विशद् रूप से वर्णित की गई है। इस प्रक्रिया की छाया पत जी के 'लोकायतन' में भी दिखायी देती है—

मिलन से महत् तत्त्व का जन्म,
महत् से अह-सत्त्व तम रूप,
सत्त्व से कारण आविर्भाव,
तमस से पच भूत भव कूप।[3]

सत्कार्यवाद

साख्य सत्कार्यवाद मे विश्वास करता है। कार्य अपनी अभिव्यक्ति के पूर्व कारण मे विद्यमान रहता है, यही सत्कार्यवाद है। सत्कार्यवाद के दो रूप हैं– (१) परिणामवाद और (२) विवर्तवाद। सांख्य परिणामवादी है। वह यह मानता कि है 'कार्य' वास्तव मे कारण का रूपान्तरण है, भ्रम या विवर्त मात्र नहीं है।[4] इस विचारधारा की परपरा आधुनिक महाकाव्यों मे भी देखी जा सकती है। 'लोकायतन' मे इसकी एक झाँकी देखिये—

बदलती वस्तु न, वस्तु स्वरूप,
रूप परिवर्तन ही परिणाम,

१ कृष्णायन, पृ० ३३५
२. "प्रकृतेर्महांस्ततोऽहकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः
तस्मादपि षोडशकात्पचभ्य पच भूतानि ॥"
—सांख्यकारिका, २२
३. लोकायतन, पृ० ३२५
४ भारतीय दर्शन (दत्त एव चटर्जी), पृ० १७०

कार्य रहता कारण में लीन-
यही सत्कार्यवाद अभिराम ।[1]

सत्कार्यवाद का समर्थन थोड़े-से भिन्न शब्दों में 'कृष्णायन' में भी किया गया है—

विद्यमान कर नाहि अभावा,
नहि अभाव कर संभव भावा ।।[2]

इन पंक्तियों में गीता की इस उक्ति का अनुवाद है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।[3]

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों पर सांख्य दर्शन का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। द्वितत्त्व सिद्धान्त की परम्परा का निर्वाह इसी दर्शन के अनुकरण में आधुनिक महाकाव्यों में हुआ है। पुरुष के संयोग से प्रकृति पंचभौतिक सृष्टि को जन्म देती है। इस प्रक्रिया का विवेचन सत्कार्यवाद की स्वीकृति के साथ हिन्दी महाकाव्यों में भी हुआ है।

योग

योग दर्शन भी भारत के प्राचीनतम दर्शनों में से है। यह एक प्रकार से सांख्य का ही व्यावहारिक रूप है। गीता में तो यह भी कहा है कि सांख्य और योग में कोई भेद नहीं है। इनमें प्रमुख भेद यह है कि सांख्य ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता, पर योग ईश्वर को महत्त्व देता हुआ ईश्वर-प्रणिधान को साधना का आवश्यक अंग मानता है। सांख्य तत्त्व-ज्ञान को ही महत्त्व देता है, पर योग विवेक प्राप्ति को महत्त्व देता हुआ भी योगाभ्यास को उसका आवश्यक साधन मानता है। प्राचीन भारत में आत्मशुद्धि के लिए योग-साधना को इतना महत्त्व दिया जाता रहा है कि उपनिषदों, तंत्रों, पुराणों आदि में भी यौगिक प्रक्रियाओं का उल्लेख मिलता है। हिन्दी साहित्य ने भी योग की उपेक्षा नहीं की। इसे विशेष रूप से पुरस्कृत करने का श्रेय संत कवियों को प्राप्त है। किन्तु सूफियों और सगुण कवियों की रचनाएँ भी योग के प्रभाव से मुक्त नहीं

---

१. सीतायतन, पृ० ३२६
२. कृष्णायन, पृ० ३०४, प० १७
३. गीता, २, १६

हैं। आधुनिक हिन्दी कविता भी किसी हद तक परपरा का अनुपालन कर रही है।

योग दर्शन के अनुसार जीव स्वतंत्र पुरुष होता है जो सभी बधनों और विकारों से मुक्त होता है, पर अज्ञान के कारण चित्त से अपना तादात्म्य कल्पित कर लेता है। चित्त प्रकृति का प्रथम विकार है और यह स्वभावत जड़ होता है, आत्मा के सपर्क में आने से वह उसके प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। आत्मा का प्रतिबिंब पड़ने से चित्त मे भी चैतन्य आ जाता है और जिस विषय के सपर्क मे वह आता है उसी का रूप धारण कर लेता है। योग दर्शन की यह मान्यता 'लोकायतन' में भी देखी जा सकती है—

मुक्त आत्मा ही ज्ञाता नित्य
चित्त जड, ज्ञेय, विवर्तन-पात्र।[1]

समाधि

चित्तवृत्तियो का निरोध करके आत्मस्वरूप का ज्ञान होना ही 'योग' है। क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध इन सभी अवस्थाओं मे चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, पर अतिम दो अवस्थाएँ ही योग के अनुकूल हैं। एकाग्रावस्था मे योगी का चित्त देर तक एक विषय पर लगा रहता है, पर इसमे चित्त की सपूर्ण वृत्तियों का निरोध नही होता है। निरुद्धावस्था मे चित्त की सपूर्ण वृत्तियों का लोप हो जाता है और वह अपनी स्थिर, शात दशा मे आ जाता है। *एकाग्रावस्था को 'सप्रज्ञात समाधि' और निरुद्धावस्था को 'असप्रज्ञात समाधि'* कहते हैं। असप्रज्ञात समाधि की स्थिति मे सभी मनोवृत्तियो और विषयों का तिरोभाव हो जाता है और योगी शुद्ध कैवल्यावस्था का आनद प्राप्त करता है। आत्मा के सब बधन नष्ट हो जाते हैं और वह अपने शुद्ध चैतन्य रूप मे स्थित हो जाती है।[2]

पतजलि तथा अन्य परवर्ती दार्शनिकों ने योग-समाधि के लिए ईश्वर-प्रणिधान को भी महत्त्वपूर्ण माना है। योगी के पथ में आने वाली सारी बाधाओं को हटाकर ईश्वर योगसिद्धि मे उसकी सहायता करता है।[3] 'लोका-

१. लोकायतन, पृ० ३२७
२. भारतीय दर्शन, पृ० १९६–९७
३ देखिये, भारतीय दर्शन, पृ० २०२

पतन' की निम्नलिखित पंक्तियों में यौगिक प्रतिपादनाएँ देखकर आधुनिक हिन्दी महाकाव्य पर योग-प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है—

वृत्तियों का कर पूर्ण निरोध
पंचविधि क्लेशों से हो मुक्त,
सिद्ध कर सम्प्रज्ञात समाधि
चित्त होता ईश्वर से युक्त।
दुःखमय जड़ असार, संसार
जीव हित मोक्ष द्वार ध्रुव योग,
प्राप्त हो जो ईश्वर प्रणिधान
सहज ही छूटे भव के रोग।[1]

दार्शनिकों ने योग को षडंग और अष्टांग दो प्रकार का माना है। हठयोग षडंग है। आधुनिक कविता में अष्टांग योग को ही महत्त्व दिया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं। पहले सात चित्त को निर्मल एवं स्वस्थ करके उसे समाधि के योग्य बनाते हैं। साधक को यह विवेक ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि आत्मा शरीर, मन आदि से भिन्न, नित्य, शुद्ध एवं चैतन्यरूप है। पंत भी इसी दार्शनिक मान्यता की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं—

शनैः अष्टांगों से सम्बद्ध
प्राप्त करना परमोत्तम श्रेय
विकल्पों संकल्पों से शून्य
चित से लगा अभेद समाधि
सुलभ कर परम सत्य सान्निध्य
न रहती क्षुद्र अहं की व्याधि।[2]

योगी का आचरण

योगी के लक्षणों और आचारों का उल्लेख 'कृष्णायन' में भी हुआ है, किन्तु वह सर्वथा मौलिक न होकर 'गीता'[3] पर आधारित है। उसे गीता का अनुवाद कहना अनुचित न होगा। "योगाभ्यासी पवित्र स्थान पाकर दर्भ [illegible]

---

१. लोकायतन, पृ० ३२६
२. वही, पृ० ३२६
३. गीता, ६, ११–२०

स्थिर आसन बना लेता है जो न तो अधिक ऊँचा होता है और न अधिक निम्न। उस पर कुश, मृगछाला, वस्त्र इत्यादि बिछाकर, चित्त तथा इन्द्रियों की क्रिया का सयमन करके; मन को एकाग्र करके, उस पर बैठता है और अत करण की विशुद्धि के हेतु योगाभ्यास करता है। तन, सिर एव ग्रीवा को सम रेखा मे करके तथा अचल, स्थिर होकर नासाग्र को देखता है। फिर उसकी दृष्टि इधर-उधर नहीं जाती। वह शान्तात्मा होकर भयभीति छोड देता है और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ सब प्रकार से अपने मन को सयमित कर लेता है तथा ईश्वर मे चित्त लगाकर स्थिर रहता है। इस प्रकार सतत् अभ्यास करते हुए उसका मन वश मे आ जाता है और उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है।"[1]

आगे भी योग-साधक के लक्षणों का उल्लेख करते हुए मिश्र जी लिखते हैं कि "वह न तो अतिभोजी होता है, न अनाहारी, न अति सोने वाला होता है और न ही अधिक जागने वाला। जब मन सयमित होकर निजात्मा में स्थापित हो जाता है एव भोगेच्छा निवृत्त हो जाती है, तब मन योग युक्त हो जाता है। जो चित्त के सयम का अभ्यास करता है, उसका मन वायुहीन स्थल में दीपक की ज्योति के समान स्थिर हो जाता है और वह ब्रह्म का स्पर्श पाकर परम् आनद मे लीन हो जाता है।"[2]

न्याय एव वैशेषिक

इन दोनो दार्शनिक धाराओ का प्रभाव भी आधुनिक महाकाव्यों पर परिलक्षित होता है, किन्तु बहुत कम। न्याय और वैशेषिक दोनो समानतत्र हैं अर्थात दोनो परस्पर बहुत समता रखने वाले दर्शन हैं। कुछ मतभेद होते हुए भी दोनो का लक्ष्य यही है कि जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो जाये।

लक्ष्य

दोनों की मान्यता है कि इस जगत् मे जीव अनेक दुःख भोगता है, जिनका मूल कारण जीव का अज्ञान है। तत्त्वज्ञान होने पर जीव इनसे निवृत्त हो सकता है। इस निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है।[3]

---

१. कृष्णायन, पृ० ३१६

२ वही, पृ० ३१७

३. भारतीय दर्शन, (दत्त एव चट्टोपाध्याय), पृ० १५०

न्याय-वैशेषिक का यह अभिमत 'लोकायतन' में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

दु खमय नाम रूप का विश्वास
न सभव यहाँ नित्य सुख-भोग ।
मूल में सस्कृति के अज्ञान
मोक्षकारक प्रथ तात्त्विक ज्ञान ।[1]

पदार्थ न्याय दर्शन मे प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क आदि सोलह पदार्थों[2] और प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, यथार्थज्ञान प्राप्ति के इन चार साधनो या प्रमाणो का अस्तित्व स्वीकार किया गया है ।[3]

आधुनिक महाकाव्यों में न्याय-सिद्धान्तों का इतना विशद् निरूपण तो नहीं है, जितना साख्य, योग आदि के सिद्धान्तो का है, किन्तु पदार्थ, प्रमाण आदि की सख्याओ के सबध से न्याय-सिद्धान्तो के स्पष्ट सकेत अवश्य मिलते हैं । 'लोकायतन' मे ये सकेत देखिये—

सीखते न्याय सूत्र अनुरूप
शिष्य षोडश पदार्थ का ज्ञान
तर्क को दे सर्वोपरि स्थान
रटाते गुरु क्या चार प्रमाण ॥[4]

भाव एव अभाव पदार्थ वैशेषिक दर्शन के अनुसार भाव एव अभाव—ये दो पदार्थ हैं । भाव पदार्थ वे हैं जिनका अस्तित्व विद्यमान है । ये छह प्रकार के हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय । महर्षि कणाद के 'वैशेषिक सूत्र' मे केवल इन्हीं छह पदार्थों का उल्लेख है, किन्तु इनके

---

१. लोकायतन, पृ० ३२५
२ न्यायदर्शन (भाष्यकार, दयानन्द सरस्वती), १, १, १
३. 'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि', वही, १, १, ३
४. लोकायतन, पृ० ३२४

परवर्ती ग्रंथकारों ने 'अभाव' नामक सातवां पदार्थ भी माना है।[१] 'लोकायतन' पर परवर्ती सिद्धान्तों का प्रभाव दीख पड़ता है—

> मुख्यतः षट् पदार्थ जो भाव,
> असत् सातवां पदार्थ अभाव।[२]

परमाणुवाद

वैशेषिक दर्शन मे ससार के समस्त कार्यद्रव्यों की रचना परमाणुओं से मानी गयी है। परमाणु चार प्रकार के हैं—पृथ्वी, जल, तेज, और वायु के। इनके सयोग से कार्यद्रव्य उत्पन्न होते हैं और वियोग से वे विनष्ट हो जाते हैं। यह सयोग-वियोग आकस्मिक नहीं होता। यह सुनियोजित होता है। इसके सचालक एव व्यवस्थापक ईश्वर हैं। वे जीवों के अदृष्टानुसार कर्म-योग कराने के लिए परमाणुओं को क्रियाशील करते हैं।[३]

यही सिद्धान्त 'कामायनी' मे इन शब्दों मे प्रतिपादित किया गया है—

> यह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई
> अपने आलस का त्याग किये,
> परमाणु बाल सब दौड़ पड़े
> जिसका सुन्दर अनुराग लिये।
>
> \+ \+ \+
>
> वह आकर्षण वह मिलन हुआ
> प्रारंभ माधुरी छाया मे।
> जिसको कहते सब सृष्टि बनी
> मतवाली अपनी माया मे॥[४]

सावयव पदार्थ एव अनादि सृष्टि

वैशेषिक दर्शन के अनुसार पृथ्वी, जल, वायु एव तेज के परमाणु निरवयव, अविनश्वर और अनादि हैं, परन्तु इनसे उत्पन्न कार्यद्रव्य सावयव और नश्वर हैं।[५]

---

१ देखिये, भारतीय दर्शन, पृ० १५१
२. लोकायतन, पृ० ३२४
३ भारतीय दर्शन, पृ० १६३–६४
४. कामायनी, पृ० ७१–७३
५ भारतीय दर्शन पृ० १५२

सृष्टि और लय का प्रवाह अनादिकाल से चला आ रहा है; इसलिये किसी भी सृष्टि को आदि सृष्टि नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक सृष्टि के पूर्व लय की स्थिति रहती है और प्रत्येक लय के पूर्व सृष्टि की।[1]

सृष्टि और उसके पदार्थों की यही व्याख्या 'लोकायतन' में द्रष्टव्य है—

सावयव जग के निखिल पदार्थ,
निरवयव अविनश्वर परमाणु।
सृष्टि या लय का आदि न अंत,
न कुछ भी देश-काल में स्थाणु॥[2]

मीमांसा

मीमांसा या जैमिनीय दर्शन वस्तुवादी है। इसमें वैदिक कर्मकाण्डों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। मीमांसक वेद-वाक्यों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिये 'शब्द-प्रमाण' को महत्त्व देते हैं। ये दार्शनिक वेदों को अपौरुषेय, नित्य और स्वतः प्रमाण मानते हैं। जगत् नित्य है। वेद न तो मनुष्यकृत हैं और न ही ईश्वरकृत। वैदिक मंत्रों में जिन ऋषियों के नाम आये हैं वे ऋषि उनके कर्ता नहीं हैं, वे उनके प्रवक्ता मात्र हैं।[3]

मीमांसकों की इस विचारधारा का प्रभाव पंत की इन पंक्तियों में देख सकते हैं—

धन्य, जैमिनि मीमांसाकार
वस्तुवादी थी जिनकी दृष्टि,
धर्म विधि का दे गये स्वरूप
नित्य शब्दार्थ, नित्य यह सृष्टि!
धर्म जिज्ञासा मोक्ष विधान,
वेद का अपौरुषेय प्रमाण!

\+ \+ \+

वेद भगवत मुख के निःश्वास
नित्य वे, स्वतः-प्रमाण, अनादि,

---

१. देखिये, भारतीय दर्शन, पृ० १६४
२. लोकायतन, पृ० ३२४
३. भारतीय दर्शन (दत्त+चट्टोपाध्याय), मीमांसा दर्शन, 'शब्द' खंड

न ऋषि रचयिता, प्रवक्ता मात्र,
महा भूतज वे सत्य, न सादि ।[1]

अदृष्ट शक्ति और अपूर्व

मीमासावादी कारण मे एक ऐसी अदृष्ट शक्ति का अस्तित्व मानते हैं जिसके होने से कार्य की उत्पत्ति होती है । "इस लोक मे किया हुआ कर्म भी एक अदृष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव करता है, जिसे 'अपूर्व' कहते हैं । यह कर्म का फल-भोग करने की शक्ति है, जो समय पाकर फलित होती है । कर्म-फल का व्यापक नियम यह है कि लौकिक या वैदिक सभी कर्मों के फल सचित होते हैं ।"[2]

मीमासा के इस शक्तिवाद और उस पर आधारित कर्म-सिद्धान्त का उल्लेख भी आलोच्य काव्यों में देखा जा सकता है—

मूल कारण अदृष्ट की शक्ति
सभी जिससे पदार्थ सभूत,
कर्म सचय का सूत्र अपूर्व
अशुभ शुभ का फल जिसमे स्यूत ।[3]

मीमासावादी निरय अतिशय आनद की प्राप्ति को ही स्वर्ग कहते हैं । स्वर्ग-प्राप्ति ही जीवन का प्रमुख लक्ष्य है । स्वर्ग की उपलब्धि यज्ञ से ही हो सकती है, अतः स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को यज्ञ करना चाहिये ।[4]

मोक्ष

मीमासकों की परिवर्तित विचार धारा धीरे-धीरे अन्य भारतीय दर्शनों के समान ही मोक्ष को नि श्रेयस् (परम कल्याण) मानती हुई निष्काम धर्माचरण को महत्त्व देने लगी । निष्कामकर्म के सपादन से ही आत्मा सासारिक सबधों से विरत हो जाती है, देह, इन्द्रिय आदि के बधनो से मुक्ति पा जाती है और इसी से ही पूर्वकृत कर्मों के सचित सस्कार भी क्षीण हो जाते है । इस स्थिति मे आत्मा सुख-दु ख के परे अपने यथार्थ रूप में रहती है और यही मोक्ष

१. लोकायतन, पृ० ३२७
२. भारतीय दर्शन, (दत्त+चट्टोपाध्याय), पृ० २१६
३. लोकायतन, पृ० ३२७
४. 'स्वर्गकामो यजेत्'

की अवस्था है।[1] मीमांसकों की इस परम् निःश्रेयस् सबंधी विचारधारा को पंत जी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

> निरतिशय सुख को कहते स्वर्ग
> यज्ञ ही स्वर्ग प्राप्ति का द्वार,
> स्वर्ग से भी निःश्रेयस् श्रेष्ठ
> धर्म निष्काम कर्म, आचार।
> जगत् सबंध विलय हो मोक्ष,
> देह इन्द्रिय विषयों के पार
> कर्म बंधन सचय कर क्षीण
> मुक्त होती आत्मा अविकार।[2]

वेदान्त दर्शन

वेद के अन्त को वेदान्त कहते हैं। वह दर्शन जो उपनिषदों में विकसित हुआ है, वेदान्त दर्शन है। इसकी अनेक शाखाएँ हैं। अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद इसकी प्रमुख शाखाएँ हैं। द्वैताद्वैतवाद एवं शुद्धाद्वैतवाद इसी से विकसित विचारधाराएँ हैं। शंकर ने अपने मायावाद की भूमिका पर जिस सिद्धान्त को निरूपित किया वह अद्वैतवाद के नाम से अभिहित हुआ है। अद्वैतवाद का एक स्वरूप 'प्रत्यभिज्ञा-दर्शन' भी है। शंकर के अद्वैतवाद और प्रत्यभिज्ञादर्शन (काश्मीरी शैवाद्वैतवाद) में कुछ सैद्धान्तिक भेद है, फिर भी बहुत कुछ साम्य है।

शंकर के अद्वैतवाद में माया के सबंध से जीव और जगत् की जो क्षति हुई उसे रामानुज का भक्त-हृदय न सह सका, अतएव रामानुज ने अद्वैतवाद को विशिष्ट कर दिया अर्थात् उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि ब्रह्म के अतिरिक्त यहाँ कुछ भी नहीं है। जीव और जगत् ब्रह्म के अंश हैं। इस अंशांशी संबंध के कारण ही रामानुज का मतवाद विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रख्यात हुआ। वेदान्त के इन अनेक रूपों ने हिन्दी कवियों को भी प्रभावित किया है। इनकी विस्तृत विवेचना आगे की गयी है।

१, भारतीय दर्शन (द० ख०), मीमांसा-दर्शन (निःश्रेयस् खंड), पृ० २१९-२० के आधार पर

२ लोकायतन, पृ० ३२७

शंकर ने जिस अद्वैतवाद की प्रस्थापना की है वह उपनिषदों की 'सर्वं खल्विद ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत'[1] की विचारधारा का समर्थक है। उसके अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब पदार्थ असत हैं। यह

अद्वैतवाद

समग्र जगत् ब्रह्म से पृथक् अपनी सत्ता नही रखता। यह ब्रह्म-भूत है, ब्रह्म में ही लीन होने वाला है और उसी मे चेष्टा करता है। जीव भी ब्रह्म से अपृथक् है।[2]

यह कहा जा चुका है कि वेदान्त की अनेक शाखाएँ हो गयी। उनमे से अद्वैतवाद ने प्रमुखतः निर्गुण काव्य को प्रभावित किया और विशिष्टाद्वैतादिक शाखाओं ने भक्ति-सम्प्रदायों को। सगुण और निर्गुण के भेद से यह प्रभाव आधुनिक हिन्दी कविताओं मे भी चला आ रहा है। 'दमयन्ती' महाकाव्य में अद्वैत भावना की झाँकी देखिये—

स्वयं है वह अजर अमरजात।
किन्तु यह भव है उसी का रूप,
व्याप्त कण-कण मे अदृश्य अनूप।
वह स्वयं कर्ता बना निष्काम,
जब उसी का रूप जीव अशेष।
कहाँ उसकी प्राप्ति मे क्लेश।[3]

ब्रह्म या आत्मा सत्य है, वह अदृश्य है और दृश्य जगत् मिथ्या है, नश्वर है।[4] महाकवि अरुण ने 'बाणाम्बरी' मे दृश्य और अदृश्य के भेद को इन शब्दो मे प्रस्तुत किया है—

आत्मा और जगत्

परमात्म आत्म-अस्तित्व अमर।
दृश्यांगिता सत्ता नश्वर॥[5]

---

१ छान्दोग्य उप० ३, १४, १
२ 'जीवो ब्रह्मैव नापर'
३ दमयन्ती, पृ० १५६–६०
४. 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या'
५. बाणाम्बरी, पृ० ३७६

जगत् की प्रतीति और माया

अद्वैतवादियों ने ब्रह्म की एक शक्ति स्वीकार की है, जिसको माया कहा गया है। वह त्रिगुणात्मिका है। 'विद्या' और 'अविद्या' नाम से अभिहित उसके दो स्वरूप हैं। अविद्या रूप में वह सत्स्वरूप को आवृत्त करती है तथा उस पर दूसरी वस्तु का आरोप भी कर देती है। आवरण शक्ति ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को छिपा लेती है और विक्षेप शक्ति (जो अविद्या स्वरूपा माया का इतर रूप है) उसे संसार के रूप मे आभासित करती है। इस विक्षेप शक्ति के कारण माया को भावरूप अज्ञान भी कहते हैं। अद्वैतवादी माया को भी अनादि मानते हैं।[1]

जिस प्रकार भ्रम के कारण रस्सी में सर्प का आभास होता है उसी प्रकार माया के कारण ही ब्रह्म भी जगत् के रूप मे आभासित होता है। अद्वैतवादियो के अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्तमात्र है, उसका परिणाम नही। उनके अनुसार तत्त्व मे अतत्त्व का आभास हो तो विवर्त है। जगत् अतत्त्व है और ब्रह्म तत्त्व है।

कवि पंत ने अद्वैतवाद की इस मान्यता को 'लोकायतन' मे व्यक्त किया है। अद्वैतवादी प्रसग में उन्होंने ब्रह्म को जगत् का निमित्त और उपादान कारण माना है। अपने शुद्ध चैतन्य रूप मे ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है और माया की उपाधि से युक्त चैतन्य रूप मे वह उपादान कारण है। इस आशय को व्यक्त करते हुए कवि पंत लिखते हैं—

> ब्रह्म ही जगत् प्रपंच निमित्त
> ब्रह्म ही उपादान आधार।
> जागतिक जीवन ब्रह्म विवर्त
> ब्रह्म ही स्थूल सूक्ष्म का सार ॥[2]

जगत् की सत्यासत्यता

शंकर जगत् को मिथ्या मानते हुए भी उसे व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मानते हैं। नानारूपात्मक जगत् सत्तारूपेण सत्य है, पर अपने विशेष रूप में असत् है। कवि पंत ने भी जगत् को दोनों पहलुओ से देखा है—

---

१. भारतीय दर्शन, पृ० २३७–३८

२. लोकायतन, पृ० ३२८

वह जगत् सत्य रे नित्य ब्रह्म अवलंबित,
अपने मे मिथ्या बाह्य द्वन्द्व से मथित ।[१]

सगुण-निर्गुण ब्रह्म

उपनिषदो के स्वर मे स्वर मिलाकर शकर भी ब्रह्म-विचार दो दृष्टियो से करते हैं : एक तो व्यावहारिक दृष्टि से और दूसरे तात्त्विक दृष्टि से। व्यावहारिक दृष्टि से जगत् सत्य है और ब्रह्म सृष्टि-कर्ता, पालक एव सहारक है। वह सर्वशक्तिमान् है। जगत् कर्तृत्व ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण न होकर उसका तटस्थ या औद्योगिक लक्षण है और इस दृष्टि से ब्रह्म सगुण एव सोपाधि है, परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म ही एकमात्र निर्गुण, निर्विकार और निर्लिप्त सत्ता है।

अद्वैतवादियों का यह दार्शनिक बोध विवेच्य महाकाव्यो मे भी अवतीर्ण हुआ है—

वस्तुमय रूप सगुण, सोपाधि,
ब्रह्म, आत्मा पर नित्य स्वरूप।
ज्ञेय ज्ञाता या ज्ञान अनन्य,
सगुण निर्गुण बहुरूप अरूप ॥[२]

आत्मा

अद्वैतवादी 'जीवोब्रह्मैव नापरः' कहकर जीव और ब्रह्म के एकत्व की प्रतिष्ठा करते हैं। उपनिषदो का 'तत्त्वमसि' महावाक्य भी इसी का उद्घोष कर रहा है। अज्ञानी व्यक्ति आत्मा का नश्वर देह के साथ तादात्म्य कर इसे भी नश्वर और अस्थायी समझते हैं पर तत्त्वतः आत्मा इस जड देह से पृथक, अजर, अमर और अविनाशी है। 'गीता' में भी स्थान-स्थान पर आत्मा के अमरत्व की बात कही गयी है। वहाँ कृष्ण आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अर्जुन से कहते हैं "यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नष्ट होने पर भी इसका नाश नहीं होता है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर का त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होती है। इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला

---

१. लोकायतन, पृ० २३४
२. वही, पृ० ३२८

सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु ही सुखा सकती है।[१] 'गीता' में वर्णित आत्मा संबंधी इस विचारधारा से आलोच्य काव्यों के रचयिता बहुत प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। 'नूरजहाँ' में विमलराय के मुख से निस्सृत इन वाक्यों पर 'गीता' की उक्त विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है—

> तू मारेगा क्या मुझको मैं अमर अनंत अजय हूँ।
> तू काटेगा क्या मुझको मैं जल हूँ, अनल मलय हूँ।
> मैं छिन्न न सकूँ आँधी में पावक में नहीं जलूँगा।
> शस्त्रों से नहीं कटूँगा मैं जल में नहीं गलूँगा।
> यह तन विनाश तू कर दे मैं वस्त्र बदल फिर लूँगा।
> इस बंदीगृह को तजकर होकर स्वतंत्र विचरूँगा।[२]

गुप्त जी भी देह को नश्वर मानते हुए आत्मा को देह से भिन्न और अमर मानते हैं।[३] महाकवि आनंदकुमार भी यही कहते हैं कि नाश तो जीव के कृत्रिम तन का होता है, उसके जीवन का सत्य रूप अर्थात् आत्मारूप तो अक्षर रहता है।[४]

'कृष्णायन' में श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र जी ने भी आत्मा को नित्य, अजन्मा, चिरप्राचीना मानते हुए उसका नश्वर शरीर से पार्थक्य स्वीकार किया है।[५] 'गीता' के ही शब्दों में उन्होंने भी आत्मा द्वारा देह परिवर्तन को मनुष्य

---

१. गीता, २. २०–२३

२. नूरजहाँ, पृ० ६६

३. मारने वाला जो जाने
   और जो इसे मरा माने,
   उभय वे हैं अनजान अतीव,
   न मरता है, न मारता जीव,
   सर्वथा मरने को है देह,
   अमर है आत्मा निस्संदेह।

—जयभारत, पृ ३६४

४. होता है बस नाश जीव के कृत्रिम तन का।
   अक्षर रहता सत्य रूप उसके जीवन का।

—अंगराज, पृ० ८

५. नित्य, अजन्मा, चिर प्राचीना, येयेहु देह यह नाश-विहीना।

—कृष्णायन, पृ० ३०४, प० २५

द्वारा जीर्ण वस्त्रों के परित्याग और नव्य वस्त्रों के ग्रहण से उपमित किया है।[1]

काश्मीरी शैवाद्वैत या प्रत्यभिज्ञा दर्शन

शैव दर्शन की एक विशिष्ट विचारधार जिसका विकास काश्मीर में हुआ प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। इस दर्शन का साहित्य विपुल मात्रा मे मिलता है। इसके स्पन्दकारिका, शिवदृष्टि, ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी, तन्त्रालोक, तन्त्रसार, प्रत्यभिज्ञाहृदय आदि ग्रंथ महत्त्वपूर्ण हैं। आधुनिक महाकाव्यो मे से 'कामायनी' तथा 'पार्वती' पर इस दर्शन का प्रभाव विशेष रूप से देखा जा सकता है।

परमशिव और सृष्टि

प्रत्यभिज्ञा दर्शन द्वारा मान्य छत्तीस तत्त्वों मे से शिव तत्त्व प्रमुख है। यही आत्मतत्त्व है और चैतन्यस्वरूप है—चैतन्यात्मा।[2] शैवग्रंथो मे इसे पराशक्ति, चिति, परमेश्वर, परमशिव आदि भी कहा गया है।[3] यह आत्मातत्त्व या शिवतत्त्व ही जगत् के सब तत्त्वों मे समान रूप से व्याप्त है, विश्व इसका अभिन्न रूप है।[4] यह स्वतन्त्र है और अपनी इच्छा से अपनी ही भित्ति पर विश्व का उन्मीलन करती है।[5] अभिनवगुप्त ने चिति द्वारा सृष्टि के अवतरण के विषय मे यह मत प्रकट किया है कि जिस तरह दर्पण मे नगर, वृक्ष आदि का प्रतिबिंब दिखाई देता है, उसी भाँति इस चिदात्मा मे ससार का प्रकटीकरण होता है और जैसे दर्पण मे प्रतिबिंबित नगर, वृक्ष आदि दर्पण से पूर्णतया अभिन्न रहते हैं उसी प्रकार यह ससार भी उस चिति से पूर्णतया अभिन्न

---

१. परत वसन नवान्य जिमि, जर्जर मनुज उतारि,
तजि तिमि आत्महु जीर्ण तनु, लेत अन्य नव धारि।
—कृष्णायन, पृ० ३०४

२. शिवसूत्रविमर्शिनी, पृ० ४

३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, पृ० २, ८

४ 'अखिलम् अभेदेनैव स्फुरति'
—प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, पृ० ८

५. चिति: स्वतंत्रा विश्वसिद्धि हेतु" —प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, १, १
तथा
'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।'
—प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, पृ० २, ५

रूप में विद्यमान रहता है।[1] कवि प्रसाद भी इस नित्य जगत् को चिति का स्वरूप तथा उसकी इच्छा का परिणाम मानते हैं—

'चिति का स्वरूप यह नित्य जगत।'[2]
'सर्ग, इच्छा का है परिणाम।'[3]

प्रसाद ने भी महाचिति की लीला से उसी में विश्व का उन्मीलित होना बतलाया है—

कर रही लीलामय आनंद महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम इसी में सब होते अनुरक्त।[4]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में चिति या परमशिव की माया नामक शक्ति का उल्लेख भी हुआ है। पर यहाँ माया का स्वरूप वेदान्तियों की माया से भिन्न है। यहाँ माया परमशिव की शक्ति मानी गयी है जिससे विश्व का उद्‌भव होता है।[5] जिस प्रकार सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है उसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आनंदरूपा शक्ति और चित्-रूप शिव के पारस्परिक संघट्टनात्मक सामरस्य से विश्व का विकास होता है।[6] शैवग्रन्थों में इसी शक्ति को कामकला, महात्रिपुरसुंदरी कहा है तथा त्रिकोण-रूपा (इच्छा, ज्ञान और क्रिया के संयोग से) बतलाया है।[7] इसे सदैव बिंदुमय चक्र में आसीन रहने वाली देवी कहा है।[8] आलोच्य काव्यों में शक्ति के त्रिकोणात्मक स्वरूप का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

---

१. कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४२८
२ कामायनी, दर्शनसर्ग, पृ० २४२
३. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३
४. वही, वही, पृ० ५३
५. 'तदयभासकारिणी च परमेश्वरस्य माया नाम शक्तिः'
तथा
'माया तत्त्वात् विश्वप्रसव' —तंत्रसार, पृ० ७७,७९
६. देखिये, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४३३
७. कामकला-विलास, श्लोक ३७
८. 'आसीना बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी'
—कामकला-विलास, श्लोक ३७

इस त्रिकोण के मध्य बिंदु तुम
शक्ति विपुल क्षमता वाले ये,
एक एक को स्थिर हो देखो
इच्छा, ज्ञान, क्रिया वाले ये ।[1]

प्रसाद ने इस कामकला को 'प्रेमकला' भी कहा है।[2] इसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया के त्रिकोण के बीच स्थित हो विश्व का संचालन करने वाली माया बताया है—

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक चल चित्रों सी संसृति छाया ;
जिस आलोकबिंदु को घेरे यह बैठी मुसक्याती माया ।
भाव चक्र यह चला रही है इच्छा की रथ-नाभि घूमती ;
नव रस भरी अराएँ अविरल चक्रवाल को चकित चूमतीं ।
यहाँ मनोमय विश्व कर रहा रागारुण चेतन उपासना ;
माया राज्य ! यही परिपाटी पाश बिछाकर जीव फाँसना । [3]

नियति

शैवागमों में नियति को एक ऐसी सत्ता के रूप में मान्यता प्राप्त है जो कि जीवों को अपने-अपने कर्मों में नियोजित करती है ।[4] नियति ही विशिष्ट कार्यों की योजना करने वाली है ।[5] प्रसाद ने भी अपने 'कमायनी' महाकाव्य में नियति को विश्व की नियामिका शक्ति के रूप मे चित्रित किया है, वह कर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाली है—

नियति चलाती कर्म-चक्र यह [6]

प्रसाद कहते हैं कि नियति का शासन व्यापक है, जीव नियति के निर्देशानुसार ही कर्म करता है —

---

१. कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २२२
२. वही, काम सर्ग, पृ० ७६
३. वही, रहस्य सर्ग, पृ० २६४
४. 'नियतिर्योजयत्येन स्वके कर्माणि पुद्गलम्'
—मालिनीविजयोत्तर तंत्र, पृ० ४
५. 'नियतिर्योजनां धत्ते विशिष्टे कार्यमंडले'
—तंत्रालोक (भाग ६), पृ० १६०
६. कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २६७

उस एकान्त नियति शासन में,
चले विवश धीरे-धीरे ।[1]

तथा

इस नियति-नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलांच रही ।[2]

समरसता और आनंद

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जिस समरसतावाद का उल्लेख हुआ है वह अपने में विशेष महत्त्वपूर्ण है। "जब आत्मा परमात्मभाव को प्राप्त होकर पूर्णतया शिवरूप हो जाती है तब समरसता की स्थिति होती है।[3] "इस स्थित में पहुँचकर आत्मा अखंड आनंदानुभव करती है। इस स्थिति में न तो दुःख, न सुख, न ग्राह्य, न ग्राहक और न ही मूढ़भाव रहता है। यहाँ केवल परमार्थ भाव ही शेष रहता है—

न दुःखं न सुखं यत्र न ग्राह्यं ग्राहको न च ।
न चास्ति मूढ़भावोऽपि तदस्ति परमार्थतः ।[4]

समरसता को प्राप्त योगी अखंड आनंद का अनुभव करता है। "यही अनुत्तरावस्था योगी की शिवोऽहम् की स्थिति है, क्योंकि इस अवस्था में योगी अखण्ड आनंदस्वरूप शिव से एकरूप होकर निरन्तर अखंड आनंद अनुभव करता है।"[5]

'कामायनी' में भी कवि प्रसाद ने असामरस्य को जीवन की विडंबना कहा है[6] तथा जीवात्मा को असामरस्य की स्थिति को पार कर अंत में अखंड आनंद प्राप्त करते हुए चित्रित किया है। उक्त काव्य के अन्तिम सर्ग (आनंद सर्ग) में मनु शिवोऽहम् की इसी स्थिति पर पहुँचे दिखायी देते हैं।

१. कामायनी, आशा सर्ग, पृ० ३४
२. वही, इड़ा सर्ग, पृ० १५८
३. स्वच्छन्दतन्त्र (भाग २), २७७
४. स्पन्दकारिका, १, ५
५. मृगेन्द्रतंत्र (योगपाद), पृ० ४२
६. ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडम्बना है जीवन की।
—कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २७२

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति तरंगायित था आनद अम्बुनिधि शोभन । [1]

इस स्थिति पर पहुँचकर सारे भेद अभेदत्व मे समाहित हो जाते हैं। जीवात्मा अपने सकुचित रूप का त्याग कर अपने चितिमय रूप को प्राप्त कर लेती है—

समरस थे जड या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनद अखण्ड घना था । [2]

विशिष्टाद्वैतवाद

अद्वैत और विशिष्टाद्वैत की झलकियाँ भी आलोच्य काव्यों में देखी जा सकती हैं। जहाँ अद्वैतवादी दार्शनिक केवल एक ही तत्त्व 'ब्रह्म' की सत्ता स्वीकार करते हैं वहाँ विशिष्टाद्वैतवादी तीन मूल तत्त्व मानते हैं—चित्, अचित् और ईश्वर । [3] इनमे से ईश्वर अगी है तथा वह चित् और अचित् इन दो गुणो से विशिष्ट है अर्थात् ये इसके अ ग हैं। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में अशाशी का यह भेद वह्निस्फुलिंगवत् बतलाया गया है । [4] तुलसी भी जीव को ईश्वर का ही अ श स्वीकार करते हैं । [5] आलोच्य काव्यो मे 'जयभारत' मे भी ब्रह्म-जीव के इस अ शी-अ श सबध की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

सुनो तात, हम सभी एक हैं भव-सागर के तीर
हो शरीर-यात्रा मे आगे पीछे का व्यवधान,
परमात्मा के अश रूप हैं आत्मा सभी समान । [6]

ईश्वर और भक्ति

रामानुज के अनुसार आत्मा ईश्वर का अ श है, नित्य है, पर कर्मज बधन मे पड़ने पर शरीर में आबद्ध आत्मा इसे ही (अनात्म देह को ही) अपना स्वरूप समझने लगती है । यही अहकार है, यही अविद्या है । [7] भक्ति को

---

१. कामायनी, आनन्द सर्ग, पृ० २८६
२. वही, वही, पृ० २९४
३. 'तत्त्वत्रय चिदचिदीश्वरश्च' —लोकाचार्य, तत्त्वत्रय, पृ० १
४. 'ईश्वर अश जीव अविनाशी'—तुलसी
५. 'अशाशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिंगवत्'—ब्र० वै० पु०, १,१७,३७
६. जयभारत, पृ० ५७
७ 'शरीरागोचरा च अहबुद्धिरविद्यैव ।
अनात्मनि देहे अहभावकरणहेतुत्वात् अहकार ।'
—श्रीभाष्य, १,१,१

विशिष्टाद्वैतवादियों ने बहुत महत्त्व दिया है। "ईश्वर की भक्ति और प्रपत्ति (पूर्ण आत्मसमर्पण) ही मोक्ष का साधन है।"[1] इसी से जीव के सारे अज्ञान और कर्मबंधन नष्ट हो जाते हैं। "भक्त की भक्ति और प्रपत्ति से प्रसन्न होकर ईश्वर उसे मोक्ष प्रदान करते हैं।"[2] "वासुदेव अपने भक्त को पाकर अक्षय आनंद के रूप में अपना स्थान प्रदान करते हैं, जहाँ से फिर लौटना संभव नहीं है।"[3] माया, भक्ति और मुक्ति से संबंधित यह विचारधारा साकेत' की इन पंक्तियों में बड़े सहज स्वाभाविक ढंग से लक्ष्मण के मुख से व्यक्त हुई है—

> जीव और प्रभु-मध्य बड़ी माया खड़ी,
> वह दुरत्यया और शक्तिशीला बड़ी।
> साधो उसको और मनाओ युक्ति से,
> सखे, समन्वय करो भुक्ति का मुक्ति से।[4]

लक्ष्मण ने भक्ति और आत्मसमर्पण के महत्त्व को जानकर वासुदेवावतार राम के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है—

> मैं तो भवसिंधु कभी का तर चुका
> राम-चरण में आत्मसमर्पण कर चुका।[5]

अवतार विशिष्टाद्वैतवादियों के अनुसार "वासुदेव सबसे अधिक दयालु, भक्तों से वात्सल्य प्रेम रखने वाले तथा परमपुरुष हैं, वे अपने उपासकों के गुणों के अनुसार फल प्रदान करने के लिये, अपनी लीला से अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म तथा अंतर्यामी इन भेदों के कारण पाँच रूपों में अवस्थित रहते हैं।"[6] इनमें

---

१. 'भक्तिप्रपत्योरेव मोक्षसाधनत्व स्वीकारात्"

—यतीन्द्र मतदीपिका, पृ० ४०

२. "भक्तिप्रपत्तिभ्यां प्रसन्न ईश्वर एव मोक्ष ददाति"

—वही, पृ० ३८

३ सर्वदर्शन संग्रह, रामानुजदर्शन, छ० २०

४ साकेत, सर्ग ५, पृ० १२५

५. साकेत, सर्ग ५, पृ० १२५

६ "वासुदेव परमकारुणिको भक्तवत्सल परमपुरुषस्तदुपासकानुगुण-तत्तत्फलप्रदानाय स्वलीलावशादर्चा-विभव-व्यूह-सूक्ष्मान्तर्यामिभेदेन पंचधावतिष्ठत।"

—सर्वदर्शनसंग्रह, रामानुज दर्शन, अनु० १७

से रामादि के रूप में ग्रहण किये गये अवतार को ही 'विभव' कहते हैं।[१] ईश्वर स्वेच्छा से अपने भक्तों के आर्तिहरण के लिये, उन पर विशेष अनुग्रह करके भूतल पर अवतीर्ण होता है और जीवधारियों के समान लीलाएँ करता है। राम का जन्म वस्तुतः निर्गुण ब्रह्म का भक्त आर्तिनिवारणार्थ सगुण-साकार रूप में अवतरण है। 'गीता' में कृष्ण भी अपने अवतार-ग्रहण के रहस्य को अर्जुन के समक्ष प्रकट करते हुए कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब ही तब मैं अपनी रचना करता हूँ। साधुओं के उद्धार के लिये, दुष्टों के विनाश के लिये तथा धर्म की स्थापना के हेतु युग-युग में जन्म लेता हूँ।[२]

तुलसी के राम भी 'निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी'[३] हैं और महाकवि गुप्त के 'साकेत' काव्य में भी राम-जन्म निर्गुण का सगुण साकार रूप ही है—

हो गया निर्गुण सगुण-साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[४]

गुप्त जी ने भी राम के अवतारग्रहण का कारण विशिष्टाद्वैत के अनुसार यही बतलाया है कि भक्त के प्रति वत्सलता रखने के कारण और इस संसार को सन्मार्ग पर प्रेरित करने के लिए ही प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं और मानवी लीलायें करते हैं—

किसलिये यह खेल प्रभु ने है किया?
मनुज बन कर मानवी का पय पिया?
भक्तवत्सलता इसी का नाम है,
और वह लोकेश लीला-धाम है।
पथ दिखाने के लिए संसार को,
दूर करने के लिए भू भार को

---

१. 'रामाद्यवतारो विभवः'—सर्वदर्शनसंग्रह, रामानुज दर्शन, अनु० १७

२. "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
—गीता, ४, ७–८

३. रामचरित मानस, १, ११०, २

४. साकेत, सर्ग १, पृ० २

सफल करने के लिए जन-वृष्टियाँ।
क्यों न करता वह स्वयं निज सृष्टियाँ ? [1]

'साकेत' मे स्वयं राम भी यही कहते हैं कि वे मनुष्यत्व का नाट्य खेलने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। इस पुण्यभूमि के आकर्षण में बँधकर भक्तों को मुक्ति प्रदान करने की इच्छा से ही उन्होंने अवतार लिया है—

सुख देने आया, दु:ख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया।
+ + +
हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।
अथवा आकर्षण पुण्य भूमि का ऐसा,
अवतरित हुआ मैं, आप उच्च फल जैसा। [2]

इस प्रकार आलोच्य काव्य विविध हिन्दू और अहिन्दू दर्शनों के प्रभाव को समाहित किये संस्कृत साहित्य के अत्यन्त ऋणी हैं। पूर्व वर्णित विविध दार्शनिक विचारधाराओं के अतिरिक्त जिस दार्शनिक विचारधारा से आधुनिक कवि विशेष रूप से प्रभावित दीखते हैं वह है गीता का निष्काम कर्म। यद्यपि कर्म सिद्धान्त को अधिकांश भारतीय दर्शनों ने स्वीकार किया है तथापि 'गीता' मे जिस निष्काम कर्म की विवेचना हुई है वह उपनिषदों और पुराणों से प्रभावित होते हुए भी प्रतिपादन की मौलिकता के कारण अपना स्वतंत्र महत्त्व रखता है। 'गीता' के निष्काम कर्म के परिस्थित्यनुकूल महत्त्व को जानकर आलोच्य महाकाव्यकारों ने अपने काव्यों मे स्थान-स्थान पर कर्म के इस आदर्श को प्रस्तुत किया है। 'गीता' में कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं कि कोई भी पुरुष किसी काल मे क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है, निःसन्देह सभी पुरुष

गीता का कर्म सिद्धान्त

१. वही, पृ० २
२. साकेत, सर्ग ८, पृ० २१५

भाषा-शैली

८ | भाषा-शैली

भाषा और शैली का सम्बन्ध बहुत अटूट और गहन होता है। इन दोनों को विरहित करना प्रायः असम्भव है। जिस प्रकार व्यक्ति और उसके गुण एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते उसी प्रकार भाषा को शैली से और शैली को भाषा से अलग नहीं किया जा सकता। भाषा जब हमारे सामने शैलीकार को प्रस्तुत करती है उसी समय शैली का निखरा हुआ रूप हमारे सामने आता है। इसी स्थिति में यह उक्ति सार्थक हो जाती है—"शैली ही शैलीकार है"।

जिस प्रकार भाषा अर्जित संपत्ति होती है उसी प्रकार शैली भी अर्जित संपत्ति होती है, किन्तु विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध से शैली भाषा की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। दो मनुष्यों की भाषा में अतिसमता हो सकती है, किन्तु शैली अपनी विशेषताओं से एक शैलीकार को दूसरे से अलग खड़ा कर देती है। जिस प्रकार मार्ग पर खड़े हुए वृक्ष के कोई से दो पत्ते बिल्कुल एकरूप नहीं होते, ठीक उसी प्रकार दो मनुष्यों की शैली एक नहीं होती। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि शैली अनुकरणीय है। फिर भी दो निकटवर्ती शैलियों से अनुकरण की प्रवृत्ति और प्रयत्न का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी के कई लेखकों में बाणभट्ट की शैली के अनुकरण की प्रवृत्ति लक्षित होती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। यही प्रवृत्ति अनेक महाकाव्यों में भी लक्षित होती है।

यदि भाषा की पहचान उसके 'सुप्' और 'तिङ्' प्रत्ययों से होती है तो शैली की पहचान उसकी रचना-प्रक्रिया और तात्त्विक विलक्षणताओं से होती है, जिनमें छन्द, अलंकार, लोकोक्ति, कहावतें आदि प्रमुख हैं।

भाषा

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संस्कृत और हिन्दी दो पृथक् भाषाएँ हैं और दोनों के 'सुप्' और 'तिङ्' प्रत्ययों में बहुत अन्तर है। फिर भी एक ही परिवार की दो भाषाओं में जो सम्बन्ध हो सकता है, वह इन दोनों मे भी है। हिन्दी के किसी महाकाव्य की भाषा पर संस्कृत साहित्य की भाषा का प्रभाव हम उस रूप में तो नहीं खोज सकते जिस रूप मे अनेक कथानकों, प्रसगों और चारित्रिक विशेषताओं पर खोज सकते हैं, फिर भी हिन्दी भाषा पर संस्कृत भाषा के प्रभाव को नकारा नही जा सकता। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हिन्दी महाकाव्यो मे संस्कृत के सुप्-तिङ् प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है? इसका उत्तर 'हाँ' मे देते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि दोनों भाषाओं मे एकरूपता है क्योकि 'सुप्' और 'तिङ्' की दृष्टि से हिन्दी का अपने ढग से विकास हुआ है और उसने तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के योग से अपने कलेवर का विकास किया है।

इतना होने पर भी हिन्दी महाकाव्यो मे ऐसे अनेक वाक्य मिल जाते हैं जो हमारे सामने संस्कृत भाषा का कहीं अखड और कहीं खंडित रूप प्रस्तुत कर देते हैं, जैसे–'हा हतोऽस्मि', [1] 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा',[2] 'अतिथिदेवो भव',[3] 'शान्त पाप',[4] 'दासोऽहं',[5] 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्',[6] 'मृतो-भविष्यति न वा इति मे विचारम्',[7] 'निशितसायकविद्धजनो यथा',[8] 'विषस्य विषमौषधम्' [9]।

उक्त उद्धरणों मे हम भाषागत प्रभाव के दो रूप देखते हैं, एक तो वह जहाँ किसी विशेष ग्रन्थ के वाक्य का प्रत्यक्ष रूप हिन्दी-महाकाव्य मे अवतीर्ण

---

१. साकेत, पृ० १७८
२. अगराज, १६, ५३
३. साकेत, पृ० ४३२
४ जयभारत, पृ ४१४
५ साकेत-सत, १२, १३
६. दमयन्ती, पृ० १
७, सिद्धार्थ, पृ० ३०
८ प्रियप्रवास, ३, २६
९ वर्द्धमान, २, ३७

हुआ है, जैसे 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा',[1] दूसरा वह जहाँ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी महाकाव्य में अमुक वाक्य अमुक संस्कृत ग्रंथ के अनुकरण के कारण आया है, किन्तु ऐसे वाक्यों की परंपरा संस्कृत के अनेक ग्रंथों में होती हुई हिन्दी तक चली आयी है और आधुनिक हिन्दी महाकवियों ने उनको अपनी वाणी की शोभा के रूप में स्वीकार कर लिया, जैसे-'विपस्य विषमौषधम्,' 'भूतो भविष्यति न वा' आदि। इनमें से कुछ वाक्य हमारी सांस्कृतिक परंपरा की देन हैं। हिन्दी महाकाव्य को 'अतिथिदेवो भव'[2] की उपलब्धि इसी प्रकार की है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की यह आदान-प्रवृत्ति उनकी कोई विलक्षणता नहीं है। पूर्वाधुनिककालीन महाकवियों ने भी इस प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में भाषा के क्षेत्र में एक और प्रवृत्ति दृष्टि-गोचर होती है, वह यह कि कहीं-कहीं पूरे छन्द संस्कृत भाषा में रचे हुए मिलते हैं। ऐसी प्रवृत्ति प्रायः कथा के भक्तिपरक वातावरण में उद्वेलित दिखाई पड़ती है। ऐसे स्थलों पर हिन्दी-महाकाव्यों में स्तोत्रों को जन्म मिला है। 'वर्द्धमान' का निम्नलिखित उदाहरण इसी प्रकार का है—

> नमोस्तु ते, देह-सुखाति निस्पृही
> नमोस्तु ते मोक्ष-रमार्थ विग्रही
> नमोस्तु ते हे अपरिग्रही प्रभो!
> नमोस्तु ते भक्त-अनुग्रही, विभो! [3]

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण 'साकेत' में द्रष्टव्य है—

> जय गंगे, आनन्द तरंगे कलरवे,
> अमल अचले, पुण्यजले, दिवसम्भवे॥[4]

---

१. 'अश्वत्थामा हतः, राजन् हतः कुंजरः'।

—म०, द्रो० प०, १९१, ५५

२ साकेत, पृ० ४३२

३ वर्द्धमान, १४, ११८

४. साकेत, पृ १२८

कुछ अव्यय शब्दो का प्रयोग भी सस्कृत की छाया मे ही हुआ है, जैसे- 'यदा', [१] 'सद्य' [२] 'इतस्तत' [३] । इन प्रयोगो के अतिरिक्त आलोच्य महाकाव्यों मे सस्कृत के कुछ तिङन्त प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे - 'जयति', [४] 'नमामि' । [५]

आधुनिक महाकाव्यों की शब्दावली मे पचास प्रतिशत से भी अधिक शब्द सस्कृत के मिलते हैं। इनमे बहुत से 'तत्सम' शब्द तो ऐसे हैं जिनका प्रयोग दैनिक भाषा मे भी मिलता है, जैसे - 'आवरण', 'शका' शुभ्र', 'हरण' 'मुदित', 'कीर्ति', 'साधु', 'भ्रष्ट', 'अक्षय' आदि। इन शब्दो मे प्रमुखतः सज्ञा और विशेषण ही अधिक हैं। विशेषणो मे 'कृदन्त' भी सम्मिलित हैं।

आधुनिक महाकाव्यो को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि 'तत्सम' शब्दावली के प्रयोग की दिशा मे कवि लोग सचेष्ट रहे हैं। सस्कृत शब्दो ने उनको आकृष्ट किया है। इसकी पुष्टि कवि हरिऔध के इन वाक्यो से की जा सकती है :—

"सस्कृत भाषा मे, उसके शब्दो में, उसके समासों मे कैसा बल है, वह कितनी मीठी है, उसम कितनी लोच है, कितना रस है, कितनी लचक है, कितनी गु जायश है, कितना लुभावनापन है, उसमे कितना भाव है, कितना आनद है और कितना रग-रहस्य है, मैं उसे कैसे बतलाऊँ ? उसमे क्या नही, सब कुछ है। उसमे ऐसे ऐसे पदार्थ हैं कि उनके बिना हम जी नही सकते, पनप नहीं सकते और न फूल-फल सकते हैं। उससे मुँह मोडकर हिन्दी भाषा के पास क्या रह जायेगा ? वह कगाल बन जायेगी।" [६]

यहाँ पर महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की विचारधारा भी उल्लेख्य है। उनकी भाषा बडी सरल है, किन्तु सस्कृत शब्दावली के लोभ का सवरण वे भी नही कर सके है। वे स्वय कहते हैं "भाषा का सबसे बडा गुण सरलता है, पर कही-कही सस्कृत शब्द लेने ही पडते हैं। बिना ऐसा किये मुझ-जैसे अल्पज्ञ

---

१ अगराज, १, ११२
२ वही, २४, २३
३ वही, ४, ५५
४. साकेत, पृ० १
५. वर्द्धमान, १४, ६५
६ हरिऔध, फूल पत्ते, दो चार बातें, पृ० २३—२४

जनों का काम नहीं चलता। मेरी तो यह राय है कि अभी हिन्दी में संस्कृत के शब्द और भी सम्मिलित होंगे। बिना ऐसा किये शब्द-संचय विपुल न होगा।"[1]

सामान्यतः इसी विचारधारा ने अधिकांश महाकवियों को प्रेरित किया है, किन्तु यह भी सम्भव है कि इनमें से कुछ महाकवियों को पांडित्य-प्रदर्शन की भावना ने भी विरलप्रयोगगत संस्कृत शब्दों की ओर उन्मुख किया हो। इन महाकाव्यों में बहुत से संस्कृत शब्द तो ऐसे हैं जिनको कोष के साथ ही समझा जा सकता है। 'अंगराज' महाकाव्य की पंक्ति-पंक्ति में ऐसे शब्दों की भरमार है, जिनका बोध पाठक के लिए समस्या बन गया होता, यदि पाद-टिप्पणियों में उनके अर्थ न दिये गये होते। आलोच्य महाकाव्यों में प्रयुक्त कुछ अप्रचलित तत्सम शब्दों के उदाहरण देखिये—

प्रियप्रवास — कदन, क्षणदाकर, सुवरिसर, शैल, कलभ, द्विदश-वत्सर।
साकेत — लेप, तापिच्छ, सादि, कौणप, अरुन्तुद, जिष्णु।
साकेत-संत — निष्क, पुरहूत, ग्रावा, आहव।
सिद्धार्थ — एण, मगण, भेकारि, शैलूषक, पश्यतोहर, शबरारि, त्विषा, कशेशय।
वर्द्धमान — वेमस्, विष्टर, दिवौकसी, चतुष्क, पारधी, शशाद, पिशंग, कलत्र, अशुमत्फला, सासिक, कीलाल, कमन्ध, शैलाट, चिभिक, प्लव, गशोक, मधुरा, अर्यमा, वरण्ड वरेणुका, हरिमंथ, परिणाम, कूपीटयोनि।
अंगराज — वाक्कीर, रुक्मजाल, दारुसार, द्रवन्ती, इन्द्रद्युति, कुण्डकीट, भट्टायमान, आराह, उपाधी, बलजा, अर्जुनी, कलिंगा, जधित, प्रथमधाम, पोगंड, देवसम्प, बीतक, अरिमद्र, कधर, पृतना, शुडक, उग्रशेखरा, उलूक (इन्द्र), चक्ररेणु, कुसुमाल, यशोद, वृषस्यन्ती, वनीका, शर्शरीक, उरुशर्म आदि।

कुछ उदाहरणों से आलोच्य महाकाव्यकारों की भाषा-रुचि एवं प्रदर्शन-भावना प्रकाशित हो जाती है। संक्षेप में यह कहना उचित ही होगा कि संस्कृत भाषा ने आधुनिक हिन्दी महाकवियों को इस प्रकार से प्रभावित किया है कि वे कहीं तत्सम शब्दों, कहीं पदों, कहीं कारकों, कहीं क्रियाओं, कहीं

१. सरस्वती, (जुलाई १९१२), पृ० ३६२

समासो, कही प्रत्ययों और कही अव्ययों का तद्रूप मे प्रयोग किये बिना नहीं रह सके हैं। समास और संधियो का आकर्षण संस्कृत के प्रभाव की छाया में आधुनिक महाकवियों के इन प्रयोगो मे स्पष्टता से देखा जा सकता है—

तनुरुहांचित,[1] दर्शकानन्ददात्री,[2] तोय-तलोपरिस्थिता[3]
शकेशानुविधेयशील,[4] उपमोचितस्तनी,[5] मृगयाऽभिनय,[6]
प्रवृत्ति-निवृत्ति-मार्ग-मर्यादा-मार्मिक,[7] महारणाक्रोशन,[8]
तरंगमालाकुल,[9] भुक्तोज्झित,[10] पुष्पाभारावनम्रा,[11]
सरितातिभव्या,[12] यौवनाम्भोधि[13]

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक महाकाव्यो की भाषा पर संस्कृत भाषा का पर्याप्त प्रभाव है। एक ओर नये शब्दो की भरती की प्रवृत्ति आगे आ रही है तो दूसरी ओर तत्सम शब्दावली का आकर्षण भी दृष्टिगोचर हो रहा है। अभी तक संस्कृत के समासो और संधि-शब्दो का प्रयोग धड़ाधड़ हो रहा है। बहुत से विख्यात् वाक्य संस्कृत से हिन्दी मे उतर आये हैं। शिष्टाचार और दर्शन के क्षेत्र से आये हुए अनेक शब्द और वाक्य हिन्दी साहित्य की गौरव-वृद्धि कर रहे हैं।

---

१. सिद्धार्थ, पृ० ६१, पं० १४
२. वही, पृ० २३९, पं० १५
३. वही, पृ० २४३, पं० १७
४. वही, पृ० २६८, पं० ४
५. साकेत, पृ० २६१, पं० ८
६. वही, पृ० ६६
७. वही, पृ० ४३८, पं० ६
८. अगराज, २१, १६
९. वही, ११, २३
१०. जयभारत, पृ० ४०३, पं० २१
११. प्रियप्रवास, १४, १
१२. वही १४, ७९
१३. प्रियप्रवास, १४, ५७

से ही इसका समुचित बोध हो सकता है। फिर भी वर्णनगत प्रभाव के अंतर्गत इसको बतलाने का प्रयास किया गया है।

समास-शैली

समासों की दृष्टि से शैली के दो और वर्ग हमारे सामने आते हैं। आलोच्य महाकाव्यों में हमे एक प्रकार की रचनाएँ तो वे मिलती हैं जो समासबहुल हैं अर्थात् जिनमे कवि समास-प्रयोग की ओर अधिक सचेष्ट रहा है और दूसरी रचनाएँ वे हैं जिनमें समास-प्रयोग कहीं-कहीं मिलता तो है, किन्तु वह कवि की सचेष्टता का परिणाम नही है। सहजाभिव्यंजना में जो समास आ गये हैं वे कवि की सहज वृत्ति के अंग बनकर ही आये हैं। उनमें कोई प्रदर्शन की भावना नही है। इनमें से पहली शैली को 'साडंबर शैली' अथवा 'प्रदर्शन शैली' कह सकते हैं और दूसरी को 'सहज शैली' कह सकते हैं।

किसी भी आधुनिक हिन्दी महाकाव्य मे न तो एकान्ततः 'साडम्बर शैली' का प्रयोग हुआ है और न 'सहज शैली' का। किसी मे एक शैली प्रधान है तो किसी में दूसरी। सहजशैली-प्रधान महाकाव्यों में 'साकेत', 'प्रेमचन्द', 'नलनरेश', 'प्रियप्रवास', 'मीरां', 'कामायनी', 'एकलव्य', 'हल्दी-घाटी', 'रामचरित-चिंतामणि', 'लोकायतन' और 'कृष्णायन' हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इनमें कहीं भी 'साडम्बर शैली' का प्रयोग नहीं हुआ। उदाहरण के लिए 'प्रियप्रवास' के चतुर्थ सर्ग को ले सकते हैं, जिसके कुछ छन्दों में 'साडम्बर शैली' का मुक्त विलास दृष्टिगोचर होता है। इस आधार पर 'प्रियप्रवास' 'साडंबर शैली'–प्रधान काव्य नहीं कहा जा सकता। इस शैली के प्रधान उदाहरण 'अंगराज', 'बाणाम्बरी', 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान' आदि काव्यों में विशेष रूप से मिलते हैं, पर इनमे अनेक स्थलों पर सहज-शैली की प्रवाहमयी तरलता दिखाई पड़ती है।

ये दोनों प्रकार की शैलियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में परंपरागत प्रभाव से मुक्त नहीं हैं और प्रभाव-परंपरा में संस्कृत का प्रभाव मूर्धन्य है। संस्कृत साहित्य में भी किसी एक रचना में दोनों ही शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। चाहे 'कादम्बरी' को लीजिये, चाहे 'नैषधीयचरितम्' को, चाहे 'शिशुपालवध' को और चाहे 'कुमारसंभव' को, इनमें कही हमें एक शैली के दर्शन होते हैं और कहीं दूसरी के। और तो और, 'वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' तक में इन दोनों शैलियों का रूप दिखायी दे जाता है। शैली की यही स्थिति आलोच्य महाकाव्यों में भी है। 'साडंबर-शैली' का एक उदाहरण 'अंगराज' में देखिये—

तरुणांकुर-सपन्न लता-द्रुम-कुंज-सुपुंजित
इन्दाम्बर-सौन्दर्य-धनी इन्दिन्दर-गुंजित
खगकुल-कूजित मृग क्रीड़ित कुसुमाकर-वन-सा,
नन्दन-सा यह सुन्दर है नलिनीनन्दन-सा ।[१]

इस शैली का एक दूसरा उदाहरण 'सिद्धार्थ' मे द्रष्टव्य है—

आजन्म-कोकनद-कानन-कामचारी
मातङ्ग-गड-मद-वारण चक्रवर्ती,
मन्दार-मेदुर-मरन्द-रसाल-लोभी
हैं पश्यतोहर सुखी सर-मध्य-वर्ती ।[२]

उक्त दोनो ग्रथो मे 'सहज-शैली' का रूप भी द्रष्टव्य है। उसे 'अंग-राज' मे देखिये .—

बढा भीम की ओर चापधारी अंगेश्वर
किन्तु शान्त हो गया भीष्म आदेश मानकर ।।
उठे वहाँ से सब सन्ध्यागम देख गगन में ।
कर्ण-सहित दुर्योधन आया राजसदन मे ।।[३]

'सिद्धार्थ' मे भी सहज-शैली को अवतारणा देखी जा सकती है—

पकड़ के जननी कर-तर्जनी, उछलते हिलते डुलते हुए ।
जब लगे चलने कुछ दूर वे, लख निमग्न हुए सुख में सभी ।[४]

अन्यत्र यह कहा जा चुका है कि शैली का सबध कवि-समय, छन्द, अलकार आदि से भी है। इनके परिपार्श्व मे हिन्दी महाकाव्यों पर सस्कृत साहित्य के प्रभाव की गवेषणा नीचे प्रस्तुत की जाती है।

कवि-समय

'कवि-समय' शब्द का अर्थ है कवियो का आचार या सम्प्रदाय।[५] सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग राजशेखर ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' मे किया था। 'कवि-समय' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए राजशेखर का मत प्रस्तुत करते हुए आचार्य द्विवेदी

१. अंगराज, १, ३१
२. सिद्धार्थ, पृ० ६५
३. अंगराज, २, ५०
४. सिद्धार्थ, पृ० ४१
५. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २३४–३५

लिखते हैं कि प्राचीन काल के कवि परंपरा से जिन बातों का वर्णन करते आ रहे हैं, आज इस काल में और इस देश में वे बातें नहीं मिलती, तो भी उन्हें हम दोष नहीं कह सकते, क्योंकि शास्त्र अनन्त हैं, काल अनन्त है और देश भी अनन्त हैं। इसलिए लोक और शास्त्र विरोधी वे ही बातें कवि-समय के अन्तर्गत आती हैं, जिन्हें प्राचीन काल के पंडित सहस्रशाख वेदों का अवगाहन करके, शास्त्रों का अन्वेषण करके, देशान्तर और द्वीपान्तर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गये हैं। देश-कालवश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिये।[1] राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमांसा में इन कवि-समयों या कवि-प्रसिद्धियों का विशद वर्णन किया है। राजशेखर के उपरान्त वामन के 'काव्यालंकार-सूत्र', अजितसेन के 'अलंकारचिंतामणि', अमर के 'काव्यकल्पलता वृत्ति', केशवमिश्र के 'अलंकारशेखर' तथा विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' आदि काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में भी कवि-प्रसिद्धियों का अच्छा विवेचन हुआ है।

संस्कृत काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित और संस्कृत काव्यों में उल्लिखित कई कविप्रसिद्धियों का वर्णन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में किया है। संस्कृत साहित्य में बहुलता से मिलने वाली ये कतिपय कविप्रसिद्धियाँ इस प्रकार हैं—अशोक के वृक्ष का स्त्रियों के पदाघात से पुष्पित होना, कर्णिकार का स्त्रियों के नृत्य से पुष्पित होना, स्त्रियों के वीक्षणमात्र से तिलकपुष्प का पुष्पित होना, बकुल का स्त्रियों की मुख-मदिरा से सिंचित होना, कुरवक का स्त्रियों के आलिंगन से खिलना, नमेरु का सुन्दरियों के गान से प्रफुल्लित होना, चकोर का रात्रि में चंद्रिका-पान करना, चक्रवाक-युगल का रात्रि में वियुक्त होना और प्रातःकाल पुनः संयुक्त हो जाना, जलाशय में पद्मों, कुमुदों एवं हंसों का निवास करना, वर्षाकाल में हंसों का मानसरोवर को चला जाना इत्यादि। वर्षा काल में मयूरों के नृत्य करने का वर्णन करना, वसन्त के वर्णन में कोकिला की मनमोहक कूक का वर्णन करना, कामदेव को पुष्पमय धनुष-बाण वाला बताना तथा उसके बाणों से युवकों के हृदय के विदीर्ण होने का वर्णन करना, हास और यश को श्वेत वर्ण, अनुराग को रक्त वर्ण तथा पाप और अयश को कृष्णवर्ण चित्रित करना, स्त्रियों

---

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २३४–३५

को सामान्य रूप से श्यामा चित्रित न करना, सामान्य नरों का रूप-वर्णन सिर से प्रारम्भ करना तथा देवताओं का पैर से प्रारम्भ करना आदि कवि-सम्प्रदायों को भी संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मान्यता मिली है। आधुनिक काल में चाहे मुक्तकों के क्षेत्र में यह परंपरा विलुप्तप्राय क्यों न हो गई हो, परन्तु प्रबंधकाव्यों में यह अभी भी जीवित दिखलायी पड़ती है। आलोच्य काव्यों में इन कवि-प्रसिद्धियों के दर्शन हम नाना रूपों में कर सकते हैं।

स्त्रियों के पदाघात से अशोक वृक्ष के पुष्पित होने की मान्यता के साथ ही काव्यशास्त्रियों की यह भी मान्यता रही है कि अशोक पर पदाघात करते समय स्त्रियों के पैरों में नूपुर अवश्य होने चाहियें।[1] कालिदास के 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत' काव्यों में यह प्रसिद्धि स्पष्ट रूप से उल्लिखित हुई देखी जा सकती है। 'कुमारसम्भव' से उक्त अंश यहाँ उद्धृत है —

> असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि
> पादेन नापेक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण।[2]

'पार्वती', 'साकेत' आदि महाकाव्यों में इस कविसमय का उल्लेख कहीं-कहीं मिलता है। 'पार्वती' में इसका उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

> किन्नरियों के नूपुर-शिञ्जित गुंजित मृदु चरणों के।
> दूर स्पर्श संकेत मात्र से, गिरि के नग्न वर्गों के।
> अखिल अशोक पल्लवित होकर पुष्पराशि से फूले।
> पाकर नयन-प्रसाद शोक सब जग के प्राणी भूले।।[3]

'साकेत' में यह कविसमय इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

> आई हूँ सशोक मैं अशोक, आज तेरे तले,
> आती है तुझे क्या हाय ? सुध उस बात की।।
> प्रिय ने कहा था—'प्रिये', पहले ही फूला यह
> भीति जो थी इसको तुम्हारे पदाघात की।।[4]

---

१. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २४४
२. कुमारसम्भव, ३, २६
३. पार्वती, सर्ग ५, पृ० ११७
४. साकेत, सर्ग ६, पृ० २६२

शैली

शैली में कवि या लेखक की अभिव्यक्तिमूलक विशेषताएँ रूपायित होती हैं। यदि दो कवियों या लेखकों की शैलियाँ एक नहीं होती हैं तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अभिव्यक्तिमूलक विशेषताएँ एक नहीं हैं। शैली का हूबहू अनुकरण नहीं किया जा सकता। हाँ, उसमें अंशतः अनुकरणीयता रह सकती है। यही कारण है कि बहुत से हिन्दी कवियों ने संस्कृत के कवियों का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है, किन्तु जिस सीमा तक शैली का अनुकरण संभव हो सकता है वे उसी सीमा तक कर पाये हैं। अनुकरणीयता की प्रथित भूमि छंद और अलंकार हैं, काव्यरूढ़ियों और कवि-समय में भी अनुकरण की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिल सकता है, फिर भी 'अदायगी' या कहने के ढंग में जो विशेषता होती है वह अनुकरणीय होती है। यही कारण है कि श्री भारती-मदन कालिदास का, प्रसाद और पंत भारवि का, निराला और डा० द्विवेदी बाणभट्ट का, आनंदकुमार श्री हर्ष का पूर्ण रूप से अनुकरण नहीं कर पाये हैं। अतएव यह घोषणा अतिरंजित नहीं है कि शैलीगत विशेषताएँ वस्तुतः व्यक्तिगत विशेषताएँ होती हैं। शैलीगत अनुकरणीयता को ध्यान में रखते हुए आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों पर संस्कृत साहित्य के प्रभाव की गवेषणा करने के लिए हमें काव्य-रूपों, छन्दों, अलंकारों, काव्यरूढ़ियों और कविसमय को समक्ष रखना होगा, क्योंकि अनुकरण की प्रवृत्ति इन्हीं में प्रतिफलित हो सकती है।

प्रस्तुतीकरण शैली

आलोच्य महाकाव्यों में प्रस्तुतीकरण की अनेक शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें से इतिवृत्तात्मक, संवादात्मक, प्रश्नोत्तर, वर्णनप्रधान एवं सिद्धान्त प्रतिपादन की शैलियाँ प्रमुख हैं।

इतिवृत्त-शैली

इतिवृत्तात्मक शैली साहित्य में उस स्थान पर मिलती है जहाँ साहित्यकार इतिवृत्त को प्रमुखता देकर साहित्य के अन्य अंगों की प्रायः उपेक्षा कर देता है। यद्यपि इस प्रकार की रचना को उत्तम प्रबंध की कोटि में रखना समीचीन नहीं है, फिर भी विवेचना के क्षेत्र में उनको एकदम भुलाया नहीं जा सकता है। ऐसे महाकाव्यों का बाहुल्य जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में है उसी प्रकार हिन्दी में भी है, किन्तु इनका एकान्ताभाव न संस्कृत में है और न

हिन्दी मे। संस्कृत में भी 'विक्रमाकदेवचरित', 'राजनरगिणी' जैसे कुछ इतिवृत्तात्मक प्रबंध मिल जाते हैं। इसी प्रकार हिन्दी मे इतिवृत्तात्मक शैली की परपरा को हम 'कृष्णायन' और 'जयभारत' जैसे काव्यो मे देख सकते हैं। वस्तुत हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नही पडता। इसकी गणना केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव के अन्तर्गत ही की जा सकती है। जो हो, पारिपार्श्विक विवेचन के लिए हिन्दी महाकाव्यो की इतिवृत्तात्मक शैली मे सस्कृत प्रबंध काव्यों की छाया अनुपेक्षणीय है।

सवाद-शैली

जहाँ प्रबध काव्य के निर्माण में सवादो का प्रमुख योग होता है वहाँ यह शैली होती है। इसे नामान्तर से कथोपकथन शैली भी कहते हैं। यह शैली प्रबध मे नाटकीयता ला देती है। हिन्दी के कुछ आधुनिक कवियों (मैथिलीशरण गुप्त, बलदेवप्रसाद मिश्र, रामकुमार वर्मा आदि) ने इस शैली को विशेष सम्मान दिया है। इनके 'जयभारत', 'साकेत', 'साकेत-सत', 'एकलव्य' आदि काव्यों मे सवादो की विशेष स्थिति देखी जा सकती है। ऐसी बात नही कि अन्य महाकाव्यों मे इस शैली का एकान्ताभाव है, किन्तु उनमे यह प्रधान रूप से नही आयी है। सस्कृत महाकाव्यों मे भी इस शैली का प्रचुर प्रणयन मिलता है। बात सारी यह है कि इसक बिना महाकाव्य का सफल निर्वाह भी सभव नही है। इस शैली के प्राचित्य के संबध से कालिदास के 'कुमारसभव' का स्मरण किया जा सकता है।

इस शैली की परपरा का निर्वाह तुलसी, केशव आदि पूर्वाधुनिककालीन कवियों ने भी किया है। हमारे सामने इनके भी दो रूप आते हैं: एक प्रत्यक्ष प्रभाव वाला, दूसरा अप्रत्यक्ष प्रभाव वाला। 'रामचरित मानस', 'रामचन्द्रिका' के रावण-अगद तथा रावण-बाण के सवाद 'हनुमन्नाटक' आदि का प्रत्यक्ष प्रभाव द्योतित करते हैं। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों मे भी सस्कृत के प्रत्यक्ष प्रभाव का साक्षात्कार होता है। 'साकेत' मे कैकेयी-मन्थरा-सवाद, दशरथ-कैकेयी-सवाद तथा भरत-कैकेयी-सवाद 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावनार हैं। शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव केवल परपरागत महाकाव्यों में ही दृष्टिगोचर हो सकता है। महाकाव्यों में केवल सवादों को देखकर हम प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष प्रभाव का निर्णय नहीं कर सकते। इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रभाव के अतर्गत हम 'जयभारत' के कुछ सवादों का नाम भी ले सकते हैं, जैसे—

ब्राह्मणी-संवाद, भीमसेन-हिडिम्बा-संवाद, कृपाचार्य-अश्वत्थामा-संवाद तथा अर्जुन-कृष्ण-संवाद। ये संवाद महाभारत के तत्-तत् प्रसंगों से प्रभावित हैं।

इसी प्रकार आलोच्य महाकाव्यों से शैलीगत अप्रत्यक्ष प्रभाव के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। 'साकेत' के निम्नलिखित संवाद में 'अमरुक शतक'[1] की अप्रत्यक्ष छाया देखिये —

"जागरण है स्वप्न से अच्छा कहीं!"
"प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं!"
"प्रेम की यह रुचि विचित्र सराहिये,
योग्यता क्या कुछ न होनी चाहिये?"
"धन्य है प्यारी, तुम्हारी योग्यता,
मोहिनी-सी मूर्ति, मंजु मनोज्ञता।
धन्य जो इस योग्यता के पास हूँ,
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ।"
"दास बनने का बहाना किसलिये?
क्या मुझे दासी कहाना इसलिये?"[2]

प्रश्नोत्तर-शैली

साहित्यिक महाकाव्यों में इस शैली का प्रयोग हुआ तो है, पर बहुत कम। अधिकांशतः इस शैली का प्रयोग सैद्धान्तिक प्रकरणों में ही हुआ है। दार्शनिक ग्रन्थों में इस शैली को 'पूर्वपक्ष' और 'उत्तर पक्ष' नामों से भी अभिहित किया गया है। ऐसे प्रसंग उपनिषदों में खूब मिलते हैं। सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या और उनकी सुबोधता के लिए दर्शनग्रंथों ने इस शैली का प्रचलन करके साहित्य के लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया था। कहीं-कहीं संवादों में भी इस शैली का प्रयोग मिल जाता है। आधुनिक महाकवियों ने भी प्रश्नोत्तर शैली को प्रश्रय दिया है। 'वर्द्धमान' और 'सिद्धार्थ' काव्यों में दार्शनिक प्रश्नोत्तर बड़े संक्षिप्त और आकर्षक हैं। 'वर्द्धमान' से उद्धृत एक अंश देखिये —

"अघी कहेंगे किस निम्न जीव को?"
"कषाय-क्रोधादिक-युक्त जो कि हो,"

---

१. अमरुक शतक, ५७
२. साकेत, पृ० १४

"कुबुद्धि लोभी जन कौन है, शुभे ?"
"सदैव जो द्रव्य लहे अधर्म की ।" [१]

इस शैली का एक अन्य नमूना 'सिद्धार्थ' में द्रष्टव्य है—

'यथार्थ क्या' ? 'कर्म-प्रधान विश्व है,'
'विचार्य क्या' ? 'केवल स्वीय धर्म हो',
'भयावह क्या' ? 'पर धर्म-वासना',
'विधेय' ? 'कर्तव्य,' 'विजेय' ? 'देह है' । [२]

वर्णन-शैली

इस शैली मे कथावस्तु वर्णनो से पुष्ट की जाती है । वर्णन दो प्रकार के होते हैं वस्तु वर्णन एव भाव-वर्णन । वस्तु-वर्णन में वस्तु या विषय को शब्द-प्रत्यक्ष किया जाता है । इस प्रकार के वर्णन मे परपरकता होती है । दूसरे प्रकार के वर्णन भावपरक होते हैं । उनमे भावों का वर्णन प्रत्यक्ष की भाँति किया जाता है ।

वर्णन साहित्य की विभूति होते हैं । उनके बिना साहित्य का काम नहीं चल सकता । वर्णनों का सतुलित स्वरूप साहित्य को रसात्मक गरिमा प्रदान करता है, किन्तु असतुलित वर्णनों से साहित्यिक गरिमा विकारग्रस्त हो जाती है, प्रबंध का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और कहीं-कहीं तो वर्णनों की अधिकता कथानक को दबोच लेती है । 'रामचन्द्रिका' में ऐसा ही तो हुआ है । इसके विपरीत संतुलित वर्णनों का उदाहरण 'रामचरितमानस' है, जिसमें वर्णन कथाप्रवाह में तरगों की भाँति विस्फुरित होते दिखाई पड़ते हैं । आधुनिक महाकाव्यों मे 'वर्णनप्रधान शैली' की प्रचुरता मिलती है । 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'पार्वती', 'वर्द्धमान' और 'सिद्धार्थ' वर्णनो से ओतप्रोत हैं। 'कामायनी' भी अपवाद नहीं है । यह परपरा हिन्दी की आविष्कृति नही है । 'शिशुपालवध', 'नैषधीयचरितम्' आदि महाकाव्यो मे तो वर्णनबाहुल्य देखने योग्य है । 'कादम्बरी' के वर्णन साहित्यिक गरिमा की दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण हैं । इन्ही की छाया मानो हिन्दी के वर्णनप्रधान महाकाव्यों में उतर आयी है । यह शैली उद्धरणों द्वारा स्पष्ट नही की जा सकती, समग्र अनुशीलन

१ वर्द्धमान, ६, ३६
२. सिद्धार्थ, पृ० २६१

स्त्रियो को मुख-मदिरा के सिंचन से बकुल-पुष्प के पुष्पित होने की कवि-प्रसिद्धि का विनिवेश 'साकेत' महाकाव्य की इन पंक्तियो मे द्रष्टव्य है—

सूखा है यह मुख यहाँ, रूखा है मन आज,
किन्तु सुमन-संकुल रहे प्रिय का बकुल समाज ।[1]

स्त्रियो के मृदु हास्य से कुरबक तथा वीक्षणमात्र से तिलक-पुष्प के फूलने के वर्णन से भी आलोच्यकाव्य वंचित नही हैं। 'पार्वती' महाकाव्य मे इनकी स्थिति इस प्रकार है—

नवल अप्सरा बालाओं के सस्मित आलोकन से
होते कुरबक कुसुम वनो मे विकसित नव यौवन से,
क्रीड़ामयी कुमारी-कुल की लीलागति से हिलती
स्मिति-लतिका-सी डाल तिलक की कलिकाओं से खिलती ।[2]

रात्रि मे चक्रवाक-युगल के वियुक्त होने का वर्णन 'दमयन्ती' और 'साकेत' काव्यों मे देखिये—

थके हुए दिननाथ अभी निज घर गये,
कमल वनों-की सभी प्रभा वे हर गये,
हा कोकी हत-हुई शोक पाने लगी,
निशा विश्व-में तिमिर पटल छाने लगी ।[3]
रजनी ! उस पार कोक है,
हत कोकी इस पर शोक है ।[4]

चकोरी द्वारा रात्रि मे चन्द्रिका-पान करने का वर्णन भी आधुनिक महाकाव्यों मे यत्र-तत्र दीख पड़ता है। 'रावण' महाकाव्य मे इस कवि-समय को देखिये—

---

१. साकेत, सर्ग ६, पृ० २६३
२. पार्वती, सर्ग ५, पृ० ११७
३. दमयन्ती, सर्ग ६, पृ० १६६
४. साकेत, सर्ग १०, पृ० ३२०

ज्यों विकसावें कुमुदिनी कौ,
अपनी छिटकाय छटा उजियारी ।
प्यास बुझावें चकोरनि की
सग चन्द्रिका याको सबै को पियारी ।[1]

'वैदेही-वनवास' मे इसी को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

मद मद मारुत बहता था रात दो घड़ी बीती थी ।
छत पर बैठी चकित चकोरी सुधा चाव से पीती थी ।[2]

सभी सरोवरो को पद्‍मो,कुमुदो, हसों इत्यादि से युक्त बताने की परपरा का निर्वाह भी आलोच्य काव्यो मे हुआ है । 'नल-नरेश', 'दैत्यवश', 'दमयन्ती' आदि काव्यो मे तो इन हसों से दौत्य-कार्य भी लिया गया है । 'नल-नरेश'[3] और 'सिद्धार्थ'[4] काव्यो मे राजा नल और सिद्धार्थ के राजप्रासादों के तडाग पद्‍मो और क्रीडा करते हुए हसो से युक्त हैं ।

हसों के विषय मे यह कविप्रसिद्धि है कि वर्षाऋतु मे ये मानसरोवर को चले जाते हैं । इस कविसमय का निर्वाह भी विवेच्य काव्यों मे हुआ है । 'सिद्धार्थ' मे इसको देखिये —

तुरन्त ही एक मराल-पक्ति की
ललाम लेखा लख व्योम में पडी
विलोक के वर्षागम को सभीत हो
प्रवेग से मानस की ओर चली ।[5]

कामदेव के सबध में भी कई प्रसिद्धियाँ सस्कृत ग्रथों मे वर्णित हैं । उसे सामान्यतया 'कुसुमशर' या कुसुमधन्वा' कहा गया है । वह अपने शरो से युवा-युवतियों के हृदय को विदीर्ण करता है । उसकी ध्वजा मकरचिह्नाकित है ।[6] विवेच्य काव्यो मे इन सभी प्रसिद्धियों का विनिवेश बहुलता से हुआ है । नीचे उद्धृत पक्तियो मे देखिये —

१. रावण, सर्ग ७, २३
२. वैदेही वनवास, सर्ग ५, पृ० ६८
३ नलनरेश, ४, १६
४. सिद्धार्थ, सर्ग ७, पृ० ६५
५. सिद्धार्थ, सर्ग ४, पृ० ५५
६. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २४६

फूलनि के मंजुल सरासन गहन ही है,
नित ही मधुर मधु जो पै रिसियावे है।
पुहुप-पराग लैकै मैन-धनुधारी तब,
गीले निज हाथनि में सपदि लगावे है।
या विधि बनाय लच्छ कामिनी-करेजनि कौं,
आपने अमोघ बान तिन पै चलावे है।।[1]

इनके अतिरिक्त और भी कितनी ही कविप्रसिद्धियों का उपयोग विवेच्य काव्यों मे मिलता है, जैसे-वसतकाल मे काकली का वर्णन करना, [2] वर्षा मे मयूरो के नृत्य का वर्णन करना, [3] हास्य एव यश इत्यादि को श्वेत चित्रित करना [4] आदि। इसी प्रकार सामान्य नरो के रूप का वर्णन शिख से तथा देवताओं के रूप का वर्णन नख से प्रारम करने की कविप्रसिद्धि का निर्वाह भी 'नल-नरेश और 'वर्द्धमान' काव्यो म देखा जा सकता है। नलनरेश' मे नल का रूप-वर्णन शिख से प्रारभ किया गया है तथा 'वर्द्धमान' मे भगवान् महावीर स्वामी का रूप-वर्णन नख से प्रारम किया गया है। इस सबध मे विशेष विस्तार के लिए 'वर्णन' का अध्याय देखा जा सकता है।

कथानक रूढियाँ

'कविसमय' के साथ कथानक रूढियो' के सबध मे भी दो शब्द कहना अनावश्यक न होगा। सस्कृत कथानको मे कितनी ही रूढियाँ प्रचलित हैं, जैसे पक्षी (हस, शुक आदि), मेघ, चन्द्र, पवन आदि के द्वारा सदेश भिजवाया जाता है, शिव-पार्वती से विशेष आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है, मृतक को जीवन-दान दिलाया जा सकता है, समुद्र को कूद कर पार किया जा सकता है, वायु मे उडा जा सकता है, पर्वत को उठाया जा सकता है तथा किसी व्यक्ति को अज्ञात रूप से उठाकर लाया जा सकता है। इस प्रकार की रूढियाँ प्राचीन और मध्याकालीन भारतीय साहित्य के कथानको का अ ग बनी हुई थी। इनमे अलौकिक चमत्कारिता का पुट रहता था। 'औत्सुक्य' के सृजन मे इनका विशेष योग होता था। महाभारत, रामायण, भागवत आदि के अतिरिक्त नैष-

---

१. रावण महाकाव्य, १, ६
२. पार्वती, सर्ग ५, पृ० ११८
३. वर्द्धमान, सर्ग २, २२
४. वैदेही वनवास ३, २१, सिद्धार्थ सर्ग, १, पृ० २

धीयचरितम्, शिशुपालवध, कुमारसंभव, रघुवंश, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, महावीरचरितम्, राघवपांडवीय आदि संस्कृत ग्रन्थों मे इस प्रकार की रूढियाँ भरी पड़ी हैं।

क्या साकेत मे साकेतवासियो को दिव्यदृष्टि नही मिली है ? इसमे महाभारत के संजय-प्रसग का स्पष्ट प्रभाव है। 'कृष्णायन' मे गोवर्धन पर्वत को 'भागवत' के अनुकरण मे ही तो कृष्ण द्वारा उठवाया गया है। 'दैत्यवश' में पार्वती ने प्रसन्न होकर मदोदरी को जो वरदान दिया है उसमे परपरा-मुक्ति स्पष्ट है। 'सिद्धार्थ' मे पक्षी-द्वारा सदेश भेजने का उपक्रम नैषधीयच-रितम्' के हंस सदेश का अनुकरण मात्र है।

कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत कवियो ने जिन प्रसिद्धियो को जन्म देकर उनका निर्वाह किया था उनकी परपरा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों मे भी चली आ रही है। उनका लक्ष्य जो कुछ भी रहा हो किन्तु उनसे चमत्कार की सृष्टि होती हैं, इसमें कोई सदेह भी नही है। वैज्ञानिक भविष्य से इनको कितना प्रोत्साहन मिलेगा, इस विषय मे निर्णयात्मक ढग से कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु पूत के पैर पालने से ही दिखाई पड़ते हैं। हिन्दी की नयी कविता इनको क्या रूप देगी, यह भविष्य ही कहेगा।

रूप विधान

संस्कृत साहित्य की विशाल सपत्ति अपने निर्माण की एक पद्धति और परपरा लिये हुए है। इनमे से महाकाव्य की रूपात्मक निर्मिति की अपनी विशेषता है। समवतः पूर्ववर्ती संस्कृत महाकवियो के समक्ष यह पद्धति इतने रूढ़ रूप मे प्रस्तुत नहीं हो पायी थी, जितने रूढ रूप मे वह परवर्ती कवियो के समक्ष आयी। इसका सबसे बडा कारण तो यही प्रतीत होता है कि संस्कृत काव्यशास्त्रियो ने काव्य-रूपागो की बड़ी सूक्ष्म विवेचना करके परवर्ती कवियों को अपने निर्देशों का अनुपालक बना लिया। यही कारण है कि संस्कृत महाकाव्यो में रूपात्मक एकनिष्ठता दृष्टिगोचर होती है।

दण्डी, रुद्रट, भामह, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने अपने-अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे महाकाव्य के स्वरूप और लक्षणो पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। *आचार्य विश्वनाथ द्वारा निर्धारित लक्षणो में प्राय. सभी पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निरूपित लक्षणो का अन्तर्भाव हो जाता है।* विश्वनाथ-कृत साहित्य-दर्पण में महाकाव्य के ये लक्षण मिलते हैं :—

१ कथा सर्गबद्ध होनी चाहिये।

२ नायक सुर अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिये। एक वंश में उत्पन्न बहुत से राजा भी नायक हो सकते हैं।

३ शृंगार, वीर और शान्त में से एक अंगीरस होना चाहिये तथा इतर सब रस अंग-रूप या सहायक-रूप में प्रतिष्ठित होने चाहिये।

४ सभी नाटक-सन्धियों का विनिवेश होना चाहिये।

५ कथानक ऐतिहासिक होना चाहिये अथवा सज्जन व्यक्ति से संबंधित होना चाहिये।

६ चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से किसी एक की प्रतिष्ठा फल-रूप में होनी चाहिये।

७. प्रारंभ में नमस्क्रिया, आशीर्वचन या वस्तु निर्देश के रूप में मंगलाचरण होना चाहिये।

८. कहीं-कहीं खल निन्दा एवं सज्जन-प्रशंसा होनी चाहिये।

९ न अधिक छोटे और न अधिक दीर्घ, आठ से अधिक सर्गों की व्यवस्था होनी चाहिये। एक सर्ग में एक ही वृत्त का प्रयोग होना चाहिये तथा सर्गान्त में वृत्त-परिवर्तन हो जाना चाहिये। किसी-किसी सर्ग में विविध वृत्तों का प्रयोग भी हो सकता है।

१० प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावी सर्ग की सूचना मिल जानी चाहिये।

११. सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, सागर, वन, ऋतु, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, पुर, अध्वर, युद्ध, रणप्रयाण, विवाह, मंत्रणा, पुत्रोदय आदि का सांगोपांग यथावसर वर्णन होना चाहिये।

१२ कवि, कथा, नायक अथवा किसी अन्य पात्र के नाम के आधार पर काव्य का नामकरण एवं सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर सर्ग का नामकरण होना चाहिये।[१]

---

१ देखिये, साहित्यदर्पण, परि० ६, ३१५-२५

संस्कृत महाकाव्यकारों ने प्रायः सभी निर्देशों का अनुपालन किया है हिन्दी महाकाव्य भी इनके प्रभाव से मुक्त नही हैं, किन्तु आधुनिक हिन्दी महाकाव्यकारों ने पश्चिम की काव्य-पद्धतियो को भी उपेक्षा नही की है। कुछ तो पश्चिम के प्रभाव से और कुछ नव्यता के चाव से कई आधुनिक महाकाव्यकार संस्कृत-पद्धति पर चलते हुए भी कुछ स्वतत्रता ले बैठे हैं। 'प्रसाद' इसके अपवाद नही हैं। स्वतत्रता की मात्रा 'हरिऔध' की रचनाओ मे भी दृष्टिगोचर हो सकती है। फिर भी हम इनकी रचनाओ को संस्कृत प्रभाव से मुक्त नही कह सकते। महाकाव्य के स्वरूप की दृष्टि से भी इन रचनाओ मे संस्कृत काव्य-शास्त्र का किसी न किसी सीमा तक अनुपालन हुआ है। संस्कृत काव्यशास्त्र मे वर्णित लक्षणो मे सबसे पहले कथानक की बात उठती है।

कथानक

कथानक के सबध से प्रमुख बात यह है कि वह अनेक सबद्ध सर्गों में विभक्त होना चाहिये। यह लक्षण प्रायः सभी आलोच्य महाकाव्यो में निर्वाहित मिलता है। प्राय: सभी महाकाव्यो मे अष्टाधिक सर्ग हैं। किसी-किसी महाकाव्य मे कथा-विस्तार होते हुए भी सर्गों मे अतिस्वल्पता अथवा अति-दीर्घता नहीं दिखायी देती है। जिस 'कृष्णायन' महाकाव्य में हमे कथा-विस्तार दिखाई देता है, सर्ग अतिस्वल्पता अथवा अतिदीर्घता के दोष से मुक्त हैं। हाँ, 'साकेत' का नवम् सर्ग इस दोष से मुक्त नही है, किन्तु इसकी गणना अप-वादों मे की जा सकती है। 'कृष्णायन' मे सर्ग-विभाजन में रामायण का अनु-करण प्रतीत होता है। सभवत लिखते समय इसके कवि के सामने रामायण और रामचरितमानस का आदर्श रहा हो।

अधिकाश आधुनिक महाकाव्यों की कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित है। 'साकेत', 'उर्मिला', 'साकेत-सत', 'वैदेही-वनवास', 'रामचरित-चिन्ता-मणि' आदि रामकाव्यो मे लोकप्रसिद्ध रामकथा वर्णित है। 'प्रियप्रवास', 'कृष्णायन' आदि मे भी लोकविश्रुत कृष्णकथा का वर्णन है। इधर 'अगराज', 'रश्मिरथी', 'जयभारत' आदि काव्यो मे भी प्रसिद्ध कौरव-पाडवीय कथा निरूपित हुई है। इसी प्रकार 'सिद्धार्थ' और 'वर्द्धमान' की कथाएँ भी ऐति-हासिक महापुरुषों से सबद्ध हैं। उनकी कथाएँ न केवल लोक-विश्रुत ही हैं, प्रत्युत् धर्मादिष्ट भी हैं। 'जननायक', 'मानवेन्द्र', 'महामानव', 'लोकायतन', आदि महाकाव्यों के कथानको मे इतनी ऐतिहासिकता न होते हुए भी इनकी

लोकप्रियता एव लोकप्रसिद्धि स्वयसिद्ध है। कहने का तात्पर्य यह है कि कथानक, सर्गबद्धता और प्रसिद्धि की दृष्टि से प्रायः सभी आधुनिक हिन्दी महाकाव्य कसौटी पर ठीक उतरते हैं।

संधि-योजना

सधि-योजना की दृष्टि से यह कहना नितान्त दुष्कर है कि आधुनिक महाकवि इस दिशा मे विशेष सचेष्ट रहे हैं। यद्यपि 'नलनरेश', 'साकेत', 'अगराज' आदि महाकाव्यों मे सधि-निर्वाह मे कोई बाधा दिखाई नही देती, किन्तु 'प्रियप्रवास' को देखकर बाधा का अनुमान भी किया जा सकता है। सधि-निर्वाह की दृष्टि से 'पार्वती' का प्रणयन भी सफलता से हुआ है।

नायक

हमारे सभी आलोच्य महाकाव्यो मे धीरोदात्त, उच्चकुलोत्पन्न नायक हैं। हाँ, 'एकलव्य', 'अगराज' और 'रश्मिरथी' के नायक अवश्य ही उच्चवश से सबधित नही हैं, किन्तु उनकी चारित्रिक गरिमा ने उन्हें बहुत ऊँचा उठा दिया है, अतः परपरा-बाध के आभास मे परपरा भ्रश नही है। इसी प्रकार 'रावण' और 'दैत्यवश' महाकाव्यों में भी दैत्यवशीय राजाओं के नायकत्व को देखकर परपरा की अवहेलना प्रतीत होती है, किन्तु उनके चरित्र के उदात्ती-करण से उच्चवशीय पात्र भी इनके समक्ष फीके जान पड़ते हैं। 'दैत्यवश' मे एक ही वश के अनेक नृपों को नायकत्व प्राप्त होने से 'रघुवश' की परपरा का अनुपालन दृष्टिगोचर होता है।

मंगलाचरण

मगलाचरण मे वस्तु निर्देशन, नमस्क्रिया, आशीर्वचन अथवा मंगल-कामना सन्निहित रहती है। नमस्क्रिया इष्टदेव या किसी देवकल्प चरित्र से सबधित होती है। आलोच्य महाकाव्यों मे से 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', 'वैदेही-वनवास', 'जौहर', 'हल्दीघाटी', 'प्रेमचन्द', 'मीरा' आदि कई में मगलाचरण का अभाव है। कुछ महाकाव्यो में इष्टदेव का स्थान भारतमाता को मिल गया है। 'वर्द्धमान' और 'दमयन्ती' इसके प्रमुख उदाहरण हैं। 'सिद्धार्थ' और 'रामचरित-चिन्तामणि मे प्रशसा या स्तुति देश से सबधित न होकर नगर से सबधित हो गयी है। 'सिद्धार्थ' मे कपिलवस्तु और 'रामचरित-चिंतामणि' में अयोध्या की प्रशसा है। शेष सभी महाकाव्यों में मगलाचरण-प्रथा का निर्वाह किसी-न-किसी रूप मे अवश्य किया गया है। 'साकेत' में

गणेश वन्दना, 'कृष्णायन' मे घनश्याम, वेदव्यास और तुलसीदास की स्तुति, 'तारकवध' मे गणेश, शभु, रतिनाथ, ब्रह्मा, लक्ष्मी, कार्तिकेय आदि देवो और महापुरुषो की स्तुति और 'नलनरेश' मे राम-स्तवन के रूप मे मगलाचरण हुआ है। 'पार्वती' महाकाव्य मे तो पाँच पृष्ठ मगलाचरण से ही सबधित हैं। स्तुति के प्रधान आलबन शिव हैं किन्तु स्तुति-क्षेत्र मे कवि ने वाणी आदि को भी स्थान दिया है। 'साकेत-सत' मे भरत-गुणगान तथा 'उर्मिला' मे भरत-उर्मिला का गुण-कथन मगलाचरण के ही स्थानापन्न हैं। 'कामायनी' और 'प्रियप्रवास' मे भी प्रकारान्तर से कवि की श्रद्धा-भावना हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाती है। यदि श्रद्धा का केन्द्र देव से नर, देश, नगर और प्रकृति-सौन्दर्य हो जाता है तो इसे नव्यता की सचेष्टता ही कहेंगे, परपरा का परित्याग या अवरोध नही।

वर्णन

सस्कृत के काव्य-शास्त्रों मे महाकाव्यों के लिए सध्या, रात्रि, सूर्योदय, सयोग, वियोग, नगर, वन, शैल, नदी, ऋतु, रण-यात्रा, पुत्र-जन्म आदि अनेक वर्णनो की आवश्यकता का निर्देश किया गया है। ये वर्णन कुछ अपवादो के साथ प्राय सभी आलोच्य महाकाव्यों मे मिल जाते हैं। कुछ वर्णनो मे कवि का मोह कुछ अधिक बढा दीख पडता है। परिणामतः वर्णन दीर्घ हो गये हैं। 'साकेत', 'प्रियप्रवास' और 'कामायनी' भी इस दोष से मुक्त नही हैं। 'साकेत' मे तो ऐसे वर्णनो से नीरसता भी आ गयी है। हरिऔध जी प्रकृति पर अतिमुग्ध होकर वर्णन-रत दिखायी देते हैं। प्रकृति-वर्णन की उपेक्षा अन्य किसी कवि ने भी नही की है। पुर, नगर, प्रदेश, आदि के वर्णनो के प्रति भी कुछ कवि बडे उदार प्रतीत होते हैं। 'साकेत,' 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', 'पारमरथी' मे इस उदारता का प्रत्यक्षीकरण हो सकता है। सज्जनो की स्तुति-निंदा के प्रसग भी अधिकाश आलोच्य महाकाव्यो मे अनुपलभ्य नही हैं, किन्तु उनका व्यवस्थित रूप अन्यत्र ऐसा नही है जैसा 'नलनरेश' में है।

छद योजना

महाकाव्य के लिए सस्कृत काव्य-शास्त्र मे यह निर्दिष्ट है कि उसके प्रत्येक सर्ग मे एक ही छद हो और सर्गान्त मे छन्द बदलकर आगामी सर्ग मे वही चले। यह भी निर्देश मिलता है कि किसी-किसी सर्ग मे विविध छन्द भी हो सकते हैं। आलोच्य महाकाव्यों मे यह नियम एक रूढ़ि के रूप मे तो निर्वाहित

नहीं हुआ है। इस नियम का अनुपालन 'साकेत', 'वैदेही वनवास', 'साकेतसंत' और 'दैत्यवंश' मे पूर्णतः मिलता है। 'साकेत' के नवम् सर्ग मे अनेक छन्द भी मिलते हैं और अन्य सर्गों के अन्त मे छन्द-परिवर्तन भी मिलता है। इसी प्रकार 'वैदेही-वनवास' के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे दोहे होते हुए भी सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन की परपरा का सनियम अनुपालन नहीं है। 'प्रियप्रवास' मे भी इस नियम का आंशिक अनुवर्तन दिखायी पड़ता है, क्योंकि एक तो उसके सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन के नियम का निर्वाह नहीं है, दूसरे प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में एक ही छंद (द्रुतविलंबित) का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार 'कृष्णायन' और 'पार्वती' मे भी छंद-नियम का आंशिक अनुपालन ही मिलता है। यह स्थिति छन्द-संबंध से अन्य महाकाव्यों की है।

नामकरण

नामकरण मे आलोच्य महाकाव्यो मे परंपरा का अनुवर्तन मिलता है। 'अंगराज', 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान', 'साकेत-संत' 'रावण', 'कामायनी', 'एकलव्य', 'उर्मिला' और 'मीरां' का नामकरण प्रमुख पात्र के नाम के आधार पर हुआ है। 'वैदेहीवनवास', 'तारकवध', 'प्रियप्रवास' आदि नाम काव्य की प्रमुख घटना पर आधारित हैं। इसी प्रकार 'कृष्णायन', 'पार्वती', 'सिद्धार्थ', 'वैदेहीवनवास' आदि कुछ काव्यो मे सर्ग-नाम तद्गत कथा के आधार पर रखकर हमारे महाकवियो ने संस्कृत काव्यशास्त्र का नियमानुवर्तन किया है। 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', दैत्यवंश', 'रावण', 'वर्द्धमान', 'बाणाम्बरी' आदि में सर्ग-निर्देश एक, दो, तीन आदि संख्याओ से किया गया है।

रस-विनिवेश

संस्कृत-नियमानुसार महाकाव्य में वीर, शांत और करुण मे से किसी एक का प्रमुख होना निर्दिष्ट है। आलोच्य महाकाव्यो मे इसी नियम का अनुवर्तन हुआ है। उदाहरण के लिए 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' मे विप्रलम्भ शृंगार, 'कृष्णायन' मे वीर, 'नल-नरेश' और 'दैत्यवंश' मे शृंगार तथा 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान' और 'साकेत-संत' मे शांत रस ने प्रधान रूप प्राप्त किया है। इसी प्रकार 'एकलव्य' वीर-रस प्रधान है, जिसमें स्थान-स्थान पर शांत की लहरें उमड़ती दिखलायी पड़ती हैं। 'बाणाम्बरी' मे रस रसव्याघात की स्थिति उपस्थित होते हुए भी अवसान करुण प्रधान है। 'पार्वती' मे शांत की प्रधानता दिखलायी गयी है, किन्तु काव्य-कौशल के अभाव से यह कृति रस-विक्षोभ

से सर्वथा मुक्त नहीं है। जिस प्रकार अंगीरस की व्यवस्था मे हमें उक्त कृतियों मे संस्कृत महाकाव्यों की रस-परपरा का प्रायः अनुवर्तन मिलता है उसी प्रकार अगभूत रसो के आयोजन मे भी परपरा-निर्वाह की चेष्टा दृष्टिगत होती है।

फल

अन्यत्र कहा जा चुका है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मे से महाकाव्य में किसी एक की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये। हमारे अधिकांश महाकाव्यों में धर्म की प्रमुखता है। हाँ, 'वर्द्धमान', 'सिद्धार्थ' और 'कामायनी' मे मोक्ष, 'हल्दीघाटी', 'नलनरेश' और 'दमयन्ती' मे अर्थ और 'कादम्बरी' मे काम को लक्षित किया गया है। 'पार्वती' मे काम धर्महिताय है और 'रावण' मे धर्म को लक्ष्य बनाने का प्रयत्न दिग्भ्रान्त-सा हो गया है। इस प्रकार सभी महाकाव्यों मे फल-दृष्टि से परपरानुपालन का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। हाँ, रावण मे लक्ष्यस्खलन अपवाद रूप स्वीकार किया जा सकता है।

सक्षेप में यह कहना अनर्गल न होगा कि हमारे सभी महाकाव्यो मे रूप-विधान पर न्यूनाधिक सस्कृत परपरा का प्रभाव है। किसी महाकवि ने परपरा के प्रति आग्रह व्यक्त किया है, किसी ने शिथिलता व्यक्त की है और कोई नवीनता की भावना से प्रेरित हुआ है, किन्तु मुक्तप्रभाव कोई नही है।

अलकार

काव्य-शिल्प के अन्तर्गत अलकारो का भी स्थान है क्योंकि शिल्प का सबध रचना-सौन्दर्य से है और अलकार काव्य की शोभा बढ़ाने मे अपना योग देते हैं। आचार्य दण्डी अलकारो को काव्य-धर्म मानते हैं। इनसे काव्य शोभित होता है।[1] आचार्य वामन भी प्रकारान्तर से यही बात कहते हैं। वे अलकार को सौन्दर्य का पर्याय मानते हैं।[2] रसवादियों ने भी अलकार के महत्त्व को स्वीकार किया है। काव्य-लक्षण के अन्तर्गत आचार्य मम्मट के 'अनलङ्कृती पुन क्वापि'[3] शब्द काव्य मे अलंकारो की आवश्यकता का प्रतिपादन ही करते हैं। ये शब्द चन्द्रालोककार जयदेव को बौखला देते हैं। वे

१ 'काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारान् प्रचक्षते'—दण्डी,काव्यादर्श

२ 'काव्य ग्राह्यमलकारात्' तथा 'सौन्दर्यमलकार'

—वामन, काव्यालकार सूत्र।

३. देखिये, काव्यप्रकाश, काव्य-लक्षण

उबलकर कह डालते हैं—"जो बिना अलंकार के शब्दार्थ को काव्य कह सकता है वह अनल को भी अनुष्ण क्यों नहीं कह देता है।"[१] इससे स्पष्ट है कि जयदेव काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता के समर्थक हैं।

शास्त्रीय मान्यताएँ अलंकारों की व्यावहारिकता का उच्छेदन कभी नहीं कर सकीं। प्राकृतों में भी अलंकार-प्रकृति मंद नहीं पड़ी। हिन्दी में अलंकारों की परंपरा अबाध गति से चलती रही। जिस प्रकार हिन्दी के आदि-काल में अलंकारों की स्वाभाविकता अक्षुण्ण रही, उसी प्रकार भक्तिकाल में भी रही। इसका कारण यह है कि अलंकारों से अर्थ चमकता है, उनसे अर्थ में दीप्ति आती है। यों तो प्रत्येक शब्द में अर्थ निहित होता है। शब्द अपनी तीन शक्तियों से तीन प्रकार का अर्थ व्यक्त कर सकता है, किन्तु अलंकार पदलालित्य को बढ़ाने के साथ-साथ अर्थ को भी ललित सौंदर्य प्रदान करता है। संस्कृत के अलंकारवादियों की परंपरा में कुछ हिन्दी के अलंकार-वादी भी खड़े हुए मिलते हैं। रीतिकाल इसके लिए प्रशस्त है। कई आलोचकों ने रीतिकाल को कला-काल कह कर उसमें अलंकार के महत्त्व को भी सुरक्षित रखा है। रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य केशव ने भी अलंकार से ही कविता की शोभा मानी है। इस संबंध में उनका यह छंद बहुत प्रसिद्ध है—

> जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त
> भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त।

छायावादी शैली के धनी कवि पंत अलंकार की 'शोभाकरता' को कुछ और आगे बढ़ाते हुए कहते हैं—"अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं; वरन् भाव अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के भिन्न भिन्न चित्र हैं।[२]"

कहने की आवश्यकता नहीं कि अनेक आचार्यों और विद्वानों ने अलंकारों के महत्त्व को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। अतः यह सिद्ध है कि अलंकारों का सहज-स्वाभाविक प्रयोग काव्य में सौन्दर्योत्पादक होता है। इसके

१. चन्द्रालोक—अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥

२. देखिये, पल्लव, प्रवेश, पृ० २२

अतिरिक्त-उनमे भाव-प्रेषण और भाव-मूर्तीकरण में भी बड़ी सहायता मिलती है। इससे भावाभिव्यक्ति सबल एवं प्रभावपूर्ण बनती है।

संस्कृत साहित्य मे प्रयोग की दृष्टि से ही नही, शास्त्रीय दृष्टि से भी अलकारो की मान्यता एक सुदीर्घ परपरा लेकर आयी है। जिसे हम आदिकाव्य मानते है उस वाल्मीकि रामायण मे भी अलकारो का बहुत सहज एवं सुन्दर प्रयोग हुआ है। महाभारत मे भी अलकारों का विनियोग प्रशसनीय है। और तो और, पुराणो मे भी, जो मूलतः भारत के धार्मिक इतिहास हैं, ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमे अलंकारो की छटा दृष्टिगोचर होती है। शास्त्रीय विवेचन के पश्चात् तो अलकारो ने काव्य मे अपना विशेष स्थान ही बना लिया। भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि सस्कृत कवियो की अलकरण-प्रवृत्ति तो सस्कृत साहित्य के लिए गौरव छोड़ गयी है। बाणभट्टकृत 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' नामक रचनाएँ अलंकारो की मानों कीर्ति-पताकाएँ हैं।

अलकारो की परपरा को अक्षुण्ण रखने मे जितना योग हिन्दी काव्यशास्त्र ने दिया है उतना ही काव्य-ग्रथो ने भी। इन रचनाओं में हिन्दी के लक्षण और लक्ष्य ग्रथो का महत्त्व अविस्मरणीय है। यह कहना अनर्गल न होगा कि आलोच्यकालीन कवियों ने इस परपरा की उपेक्षा नही कर दी है। हाँ, इस काल के प्रस्थापकों का सबध रीतिकालीन परपरा से कुछ अधिक रहा है, किन्तु बाद के कवियों ने नवीनता की प्रस्थापना के साथ-साथ परपरा का अनुसरण भी किया है। यदि परपरा-मुक्ति की प्रवृत्ति मैथिलीशरण गुप्त तथा हरिऔध जैसे कवियो मे कुछ अधिक प्रखर दिखायी पडती है तो दिनकर प्रभृति मे स्वतत्र अभिव्यक्ति की भावना से प्रेरित मिलती है। विपयान्तर के भय से यहाँ अधिक न कहकर नये कवियों के सबध मे भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि वे भी अलकार-पद्धति को तिलाञ्जलि नही दे सके हैं, भले ही उन्होंने नये उपमानो का प्रयोग प्रारंभ कर दिया हो।

आधुनिक हिन्दी कवियो पर पाश्चात्य साहित्य और साहित्यशास्त्र का भी पर्याप्त प्रभाव पडा है, इसलिए उनकी अलकार-योजना मे पश्चिम का प्रभाव भी स्थान-स्थान पर झलकता है, फिर भी वे भारतीय अलकारशास्त्र के कम ऋणी नहीं है, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार वे सस्कृत साहित्य के-आख्यानों, उपाख्यानो, कथानकों आदि के लिए ऋणी हैं।

जो हो, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों पर सस्कृत साहित्य की अलंकार-परपरा का प्रभूत प्रभाव है। यह प्रभाव दो दिशाओं से आया प्रतीत होता है-

एक तो साहित्यिक दिशा से, दूसरा शास्त्रीय दिशा से। जिस रचना पर एक या अनेक कृतियो का प्रभाव है और जहाँ शब्दानुवाद या छायानुवाद की प्रवृत्ति काम करती रही है वहाँ प्रभाव साहित्यिक दिशा से पड़ा है। मारतीनदनकृत 'पार्वती'[1] और अनूप शर्माकृत 'वर्द्धमान'[2] जैसे महाकाव्यो मे प्राय: इसी प्रवृत्ति का उद्घेतन मिलता है, किन्तु जहाँ कृतिकारो का ध्यान अलकारों के विनिवेश में शास्त्रीय परपरा पर रहा है वहाँ प्रभाव की दिशा शास्त्रीय है। 'साकेत' और 'अगराज' इस परपरा के ही उदाहरण बन सकते हैं।

प्रभाव की इन दोनों दिशाओ मे अलकरण की एक विशेष परपरा या पद्धति दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो में कुछ ऐसे ग्रथ भी मिलते हैं जिनमे प्रभाव की दिशा प्रतीत तो होती है, किन्तु विशेष रूप में नही, केवल सामान्य रूप मे। 'मीरां महाकाव्य' और 'युगस्रष्टा प्रेमचन्द' के अतिरिक्त 'प्रियप्रवास', 'वैदेही वनवास' आदि रचनाएँ इसी कोटि की हैं। जहाँ कवि के मस्तिष्क मे अलकार की व्यवस्था सतर्क रही है, किन्तु सहज रूप मे उनका विनिवेश हुआ है वहाँ प्रभाव की कुछ भिन्न दिशा देखी जा सकती है। प्रसाद की 'कामायनी' इसका उदाहरण बन सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सहज-काव्य-स्फुरण के समय प्रसाद जी अलकरण-प्रक्रिया के सामान्य नियमो से भी परिचित रहे हैं। 'कामायनी' के उपमा और रूपक अलकारों मे कवि की जागरूकता अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

आलोच्य महाकाव्यों मे प्राय सभी प्रकार के अलकार प्रयुक्त हुए हैं जो शब्दालकार और अर्थालकार दोनों कोटियो मे विभक्त किये जा सकते हैं। उनमे से कुछ अलंकारो को देखकर हम अलकार परपरा का अनुमान लगा सकते हैं। आधुनिक महाकाव्यो में सबसे अधिक प्रयुक्त शब्दालकार अनुप्रास है, जिसके उदाहरण स्थान-स्थान पर देखने को मिलते हैं।

कविता में अलकारों का प्रयोग जाने-अनजाने दोनों रूपों मे होता है। अलकारों के प्रयोग के सबंध में निश्चित रूप से यह बतलाना कि कवि की दृष्टि पहले भाव पर रहती है या अलकार पर, दुष्कर है, किन्तु शब्दालकारो के प्रयोग के समय कवि निश्चित ही थोड़ा सजग रहता है। अभ्यास, प्रयोग को

---

१. देखिये, प्रस्तुत प्रबंध, वर्णन विवेचन।
२. वही, वही

सुन्दर और स्वाभाविक बनाने मे सहायता करता है। अर्थालंकारो की भाँति शब्दालंकार अनुभूति के धर्म नही हो सकते।[१]

अनुप्रास अधिकांशत शब्द-विपर्यों के प्रयोग पर ही शब्दालंकारों की उपस्थिति निर्भर रहती है। शब्दालंकारों का एक प्रकार मुख्यत सगीत का विधान करता है। इस विधान मे अनुप्रास का प्रमुख याग होता है। "अनुप्रासों का समावेश वहीं अच्छा लगता है जहाँ वह सगीत को पुष्ट करता है, अन्यत्र वह सहृदयों को खलता है। श्रेष्ठ कवि प्राय अज्ञात भाव से अनुप्रासो का सन्निवेश करते हैं। उस दशा मे अनुप्रास मूल अनुभूति की निरर्थकता के कारण ही अच्छे लगते हैं, वह भी निम्नकोटि के पाठको को।"[२]

शब्दालंकारो में अनुप्रास का प्रमुख स्थान है। प्रत्येक युग के काव्य मे यह काव्य की शोभा बढाता मिलता है। इसकी योजना की सार्थकता इसी मे है कि वह भावानुरूप हो। भावानुरूप शब्द-सृष्टि की गणना वृत्तियों मे की जाती है, जिनमे भाव-नाद मे मुखर हो उठता है।[३] भाव-नाद की मुखरता 'कामायनी' म स्थान-स्थान पर मिलती है। एक उदाहरण देखिये—

> कंकण क्वणित रणित नूपुर थे,
> हिलते थे छाती पर हार।
> \+ \+ \+
> अपना कल कठ मिलाते थे।
> झरनों के कलकल कोमल में।[४]

'प्रियप्रवास' और 'साकेत' में वृत्यनुप्रास के ये उदाहरण देखने योग्य हैं—

> विमुग्धकारी मधु मञ्जु मास था
> वसुन्धरा थी कमनीयतामयी।
> विचित्रता साथ विराजती रही
> वसन्त वासन्तिकता वनान्त मे।[५]

---

१. सुमित्रानदन पंत, पल्लव की भूमिका, पृ० २०
२ डा० देवराज, साहित्य-चिंता, पृ० ५१
३ देखिये, काव्यप्रकाश, ९, १०७
४. कामायनी, चिन्तासर्ग, पृ० ११
५ प्रियप्रवास १६, १

तथा

झोंके झिलमिल झेल रहे थे दीप गगन के
खिलखिल, हिलमिल खेल रहे थे दीप गगन के ।[1]

अनुप्रास का यह स्वरूप न केवल स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा कर रहा है, वरन् भाषा में सहज आकर्षण भी उत्पन्न कर रहा है।

इसी प्रकार आधुनिक महाकाव्यों में छेकानुप्रास की परंपरा भी निर्वाहित हुई है। 'कामायनी' से इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है —

सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे
नयन भरे आलस अनुराग
कल कपोल था जहाँ बिछलता
कल्पवृक्ष का पीत पराग ॥[2]

अनुप्रासयोजना का मनोविज्ञान यही है कि उसमें वर्णों का अनुरणन एक श्रुतिमाधुर्य की सृष्टि करता है और यह अनुमान सम्भवतः गलत न होगा कि इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये अन्त्यानुप्रास की योजना की गई थी। हिन्दी में अन्त्यानुप्रास की व्यापकता अनुप्रास के महत्त्व को प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त है। आधुनिक कवियों ने अनुप्रास के महत्त्व को विस्मृत नहीं कर दिया है, किन्तु नियमबद्ध अनुप्रास के स्थान पर आधुनिक कवि स्वर-मैत्री और वर्ण-मैत्री को प्रोत्साहन देने लगे हैं।

यमक, श्लेष

आधुनिक महाकाव्यों में यमक और श्लेष अलंकारों के प्रयोग बहुत कम हुए हैं, क्योंकि ये चमत्कारप्रधान हैं और आज का कवि अलंकारों के चमत्कार को पसन्द नहीं करता। साथ ही इन अलंकारों का प्रयोग बड़ी सतर्कता और कुशलता की अपेक्षा रखता है। तनिक सा प्रमाद या जागरूकता का स्खलन सौन्दर्य उत्पन्न करने के स्थान पर एक अखरने वाला अंश पैदा कर सकता है। इसी कारण आधुनिक हिन्दी महाकवियों ने इनको अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया। फिर भी परंपरावाद ने इनके प्रयोग को प्रोत्साहित करने में त्रुटि नहीं की है।

---

१. साकेत, पृ० ४१०
२. कामायनी, चिंतासर्ग, पृ० ११

यमक यमक वर्णों की आवृत्ति नहीं, वर्ण-संघात, वर्ण शृंखला अथवा पद की आवृत्ति है। पद सार्थक होने पर शब्द भी होता है, इसलिये कभी-कभी शब्द की आवृत्ति भी होती है, पर सदैव नहीं। इसी कारण यमक तीन प्रकार का होता है–निरर्थक-निरर्थक पदों का यमक, निरर्थक-सार्थक पदों का यमक, सार्थक-सार्थक पदों का यमक।[1] इन अलंकारों के अधिकांश प्रयोग सहज न होकर सचेष्ट ही हैं और इनमें प्राय: सार्थक पदों की ही आवृत्ति मिलती है। वैसे एक-दो उदाहरण तो सभी महाकाव्यों में मिल जाते हैं, किन्तु यमक-बहुल स्थल 'अंगराज' में प्रशस्त हैं। नीचे उदाहरण प्रस्तुत हैं —

होता ज्यों तरलपात, बोलते तरल, रथ
तैरते तरल, तुल्य लोहित-तरंत में।[2]

तथा

अधिरथयुत अधिरथसुत अधिरथ अधिरथ कर्ण लिये निज अधिरथ।
प्रतिरथियों को भीमरथी में क्षमा अधिरथी-सम, अप्रतिरथ॥[3]

उक्त छंदों में क्रमश: 'तरल' और 'अधिरथ' पदों की सार्थक आवृत्ति है। इसका एक अन्य उदाहरण 'साकेत' से भी प्रस्तुत किया जाता है—

चन्द्रकान्तमणियाँ हटा, पत्थर मुझे न मार,
चन्द्रकान्त आवें प्रथम जो सब के शृंगार।[4]

यहाँ 'चन्द्रकान्त' पद की आवृत्ति और भिन्नार्थकता द्रष्टव्य है।

शब्दालंकारों में श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश, प्रहेलिका और चित्र के नाम प्राचीन परंपरा में अधिक प्रशस्त हैं, किन्तु आधुनिक महाकवियों ने इन सबके प्रति विशेष रुचि व्यक्त नहीं की है। हाँ, श्लेष और वक्रोक्ति के प्रयोगों में कहीं कहीं कवि-रुचि दृष्टिगोचर होती है। वक्रोक्ति का एक उदाहरण देखिये—

---

१. काव्यप्रकाश, ९, ११८
२. अंगराज, २१, ११३
३. अंगराज, २०, ११
४. साकेत, सर्ग ९, पृ० २६८

एक कबूतर देख हाथ मे पूछा कहाँ अपर है ।
उसने कहा अपर कैसा है ? उड है गया सपर है ।। [१]

अर्थालंकारों में उपमालंकार आधारभूत है । आधुनिक महाकवि उपमा-प्रयोग की परंपरा से भी विप्रकृष्ट नहीं हैं । उपमा यद्यपि इनके मन में नव्यता की अंगड़ाई दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु वे परंपरा को छोड़ नहीं पाये हैं । यही कारण है कि परंपरागत उपमानों के प्रयोग के साथ-साथ कई नवीन उपमानों को भी आधुनिक काव्यो में स्थान मिला है । रूप-चित्रण के क्षेत्र में तो विशेषत संस्कृत-परंपरा के उपमानों का ही व्यवहार हुआ है । पार्वती, दमयन्ती, कैकसी, यशोधरा और त्रिशला के रूप-वर्णन मे क्रमशः 'पार्वती', 'नलनरेश', 'रावण', 'सिद्धार्थ' और 'वर्द्धमान' महाकाव्यों में यही तथ्य प्रत्यक्ष होता है । प्राचीन उपमान-पद्धति का अनुमान उक्त ग्रंथों में प्रयुक्त उपमानों की इस संक्षिप्त सूची से किया जा सकता है—

उपमेय	उपमान
केश	मेघ,[२] तम,[३] मयूरपुच्छ,[४] शैवाल [५]
वेणी	सर्प, [६] भृंगाली, [७] यमुनावीचि [८]

---

१. नूरजहाँ, पृ० ५०
२. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४७; पार्वती, पृ० ६१, प० ११
३. नलनरेश, ७, १९
४. वर्द्धमान, १, ५५
५. वर्द्धमान, १. ८१
६. साकेत, पृ० १५, पं० १३
७. कृष्णायन, पृ० १३७, पं० १६; नलनरेश, ४, ४८
८. वर्द्धमान, १, ६६

सीमन्त	मार्ग [1]
ललाट	अष्टमी विधु, [2] हेमफलक [3]
कपोल	मुकुर, [4] चन्द्रमा [5]
भ्रू	खड्ग, [6] धनु, [7] रेखा, [8] कामबाण, [9] मृणाली [10]
नेत्र	चकोर, [11] मृग, [12] खजन, [13] अम्बुज, [14] केतक, [15] नीलकमल, [16] मीन [17]
कटाक्ष	बाण [18]
श्रुति	पाश [19]

---

१ नलनरेश ७, १६
२ साकेत, पृ० २५, पं० ६, कृष्णायन, पृ० ११७, पं० १६, नलनरेश, ७, २४
३ नलनरेश, ७, २५
४ रावण २, ३४
५. वर्द्धमान, १, ११२
६ नलनरेश, ७, २७
७ रावण, १, ३८, सिद्धार्थ, पृ० ६८, पं० २१
८ नलनरेश, ७, २७
९ नलनरेश, ७, २७, वर्द्धमान, १, ७८
१० नलनरेश, ७, २८
११ नलनरेश, ४, ४७
१२ रावण, १, ३८, नलनरेश, ७, २९
१३ रावण, १, ३८, नलनरेश, ७, २९
१४ प्रियप्रवास, ४, ५
१५ वर्द्धमान, १, ६७
१६ नलनरेश, ७, २९, कामायनी, चिंता सर्ग, पृ० १२
१७ रावण, १, ३८, नलनरेश, ७, २९
१८ नलनरेश, १५, ८९, सिद्धार्थ, पृ० ६८
१९. रावण, १, ३८

नासा	तूणीर,[1] शुकचञ्चु,[2] तिलप्रसून[3]
अधर	पल्लव,[4] बिम्बाफल,[5] प्रवाल[6]
दन्त	मुक्ताफल,[7] कुन्दकली,[8] दाड़िम[9]
स्मिति	ज्योत्स्ना[10]
वाणी	भृंगीरव,[11] पिकीस्वर,[12] सुधा,[13] वीणा,[14] हंसस्वर[15]
मुख	शशि,[16] कमल[17]
कंठ	कम्बु[18]
बाहु	मृणाल[19]
कर	पद्म,[20] पल्लव[21]

१. वर्द्धमान, १, ११३
२. दमयन्ती, पृ० ६, पं० २३
३. मलनरेखा, ७, ३१
४. रावण, १, ३८; साकेत, पृ० १५, पं० १५
५. रावण, १, ३८; प्रियप्रवास ४, ७
६. रावण, १, २८, प्रियप्रवास, ४, ७
७. दमयन्ती, पृ० ६, पं० २४
८. कृष्णायन, पृ० १३७, पं० १५
९. साकेत, पृ० १७, पं० २—३
१०. पार्वती, पृ० ६०, पं० ६
११: कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४५
१२. रावण, १, ३८; वर्द्धमान, १, ६२
१३. पार्वती, पृ० ६३, पं० ५
१४. वर्द्धमान, १, १०५; मलनरेखा, ७, ३७
१५. कृष्णायन, पृ० १३७, प० १५
१६. वर्द्धमान, १, ५६
१७. वर्द्धमान, १, ५८; साकेत, पृ० २०३, पं० १५
१८. नलनरेखा ७, ३७; रावण, २, ३४; पार्वती, पृ० ५६, पं० २२
१९. रावण, २, ३५; साकेत, पृ० २०३, पं० १६; पार्वती, पृ० ५६, पं० १७
२०. कृष्णायन, पृ० १३७, पं० १४; पार्वती, पृ० ५६, पं० १७
२१. वर्द्धमान, १, ५६

स्तन	घट,[१] गजकुंभ,[२] गिरि,[३] चक्र,[४] शिव,[५] चक्रवाक,[६] कमल,[७] श्रीफल[८]
रोमाली	रेखा,[९] मृणालवल्ली[१०]
नाभि	आवर्त,[११] कूप,[१२] विवर[१३]
त्रिवली	वीचि,[१४] सोपान[१५]
नितम्ब	प्रस्तर,[१६] चक्र[१७]
उरू	कदली-स्तम,[१८] करिशुंडा[१९]
पीठ	काञ्चनपट्ट[२०]
गति	हंसगति,[२१] गजगति[२२]

१. रावण, १, ३७, नलनरेश, ७,४०, सिद्धार्थ, पृ० ६७, पं० ६, पार्वती, पृ० ५९, प ६
२ नलनरेश, ७, ३९, रावण १,३७
३ नलनरेश, ७,३९
४. नलनरेश, ७,३९
५ पार्वती, पृ० ५९, प० ५
६. वर्द्धमान, १,८१
७. वर्द्धमान, १,५८
८ नलनरेश, ७,३९
९. वर्द्धमान, १,९६
१० वर्द्धमान, १,९६
११ पार्वती, पृ० ५९, पं० ३; वर्द्धमान, २,४१
१२ वर्द्धमान, १,९९
१३ वही, १,९६
१४ वही, १,८२
१५ नलनरेश, ७,४५
१६ वर्द्धमान, १,९४
१७ नलनरेश ७,४८, वर्द्धमान १ ९४
१८. रावण २,३५, पार्वती, पृ० ५८, पं० ३
१९ रावण, २,३५, नलनरेश, ७,४६; पार्वती, पृ० ५८, प० ३
२०. वर्द्धमान, १ ९५
२१. नलनरेश, ४,४८, रावण, १,३७
२२. दमयन्ती, पृ० १०, प० ८, रावण, १,३७

कटि	शून्य,[1] सिंह-कटि,[2] मुष्टिग्राह्य[3]
चरण	पल्लव,[4] कमल,[5] स्थल-पद्‌म,[6] प्रवाल[7]
नूपुर-ध्वनि	हंस-ध्वनि[8]
तन-द्युति	स्वर्ण,[9] विद्युत,[10] केतकपुष्प[11]
देह	चन्द्रकला,[12] विद्युल्लता,[13] तारा,[14] दीपशिखा[15]

इन उपमानो से आलोच्य महाकाव्यों मे प्रयुक्त उन साम्य-मूलक अलकारों का अनुमान लगाया जा सकता है, जो परपरा की देन हैं। परपरा की आसक्ति से छायावादी काव्यधारा के महाकाव्य भी मुक्त नहीं हैं, वरन् उनमे भी नयी उपमाओं की छटा में अलकार-परपरा का निर्वाह स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है।

नव्यता का आकर्षण उन महाकवियों में भी मिलता है जो प्राचीन संस्कृति और प्राचीन परपराओं के पोषक हैं। श्री मैथिलीशरण जैसे संस्कृति के व्याख्याता इस मोह से अधिक आवृत है। 'साकेत' में उपमानों की नवीनता एव ललितता की एक झाँकी देखिये—

१. नलनरेश, ७,४३
२. कृष्णायन, पृ० १३७, पं० १५, नलनरेश ७,४२
३. नलनरेश, ५,७
४. कृष्णायन, पृ० १३७, पं० १४
५. पार्वती, पृ० ५७, पं० ११
६. पार्वती, पृ० ५७, पं० १४
७. वर्द्धमान, १ ८३
८. वर्द्धमान, १,१३२
९. प्रियप्रवास, ४,५; दमयन्ती, पृ० ६, पं २२
१०. सिद्धार्थ, पृ० ७०, पं० २०
११. साकेत, पृ० २०४, पं० ८
१२. नलनरेश, ७,५६; वर्द्धमान, १,५४; कृष्णायन, पृ० १३७, पं० ११
१३. वर्द्धमान, १,११६
१४. वही, १,११६
१५. पार्वती, पृ० ६६, पं० ५; नलनरेश, ७, ५६

मेरे चपल यौवन-बाल !
अचल ■ चल मे पड़ा सो, मचल कर मत साल,
बीतने दे रात, होगा सुप्रभात विशाल,
खेलना फिर मन के पहन के मणि-माल ॥ [१]

प्राचीन अलंकारों में रूपक का स्थान भी प्रमुख है। यदि 'साकेत' [२] मे

रूपक

'आकाश-जाल सब ओर तना । रवि तन्तुवाय है आज बना'—जैसे रूपक मिलते हैं तो 'कामायनी' में भी रूपक के अनेक सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं। एक उदाहरण देखिये—

कौन तुम संसृति-जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक ।
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक ।[३]

इसी प्रकार प्रायः सभी आलोच्य महाकाव्यों मे उत्प्रेक्षा अलंकार भी बहुत लोक-प्रिय रहा है। 'कामायनी' मे इसकी एक झलक देखने योग्य है—

उस असीम नीले अचल में
देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानों हँसी हिमालय की है
फूट चली करती कल गान ।[४]

यह छायावादी कवियों का अतिप्रिय अलंकार रहा है। इस अलंकार

रूपकातिशयोक्ति

मे केवल उपमानों के द्वारा ही उपमेयों का वर्णन किया जाता है और छायावादी कवि अपनी अधिकांश कविताओं मे उपमेय के स्थान पर केवल उपमान से ही काम निकालना अधिक अच्छा समझते हैं। इससे दो लाभ होते हैं एक तो काव्य में थोड़े से शब्दों से ही काम चल जाता है, दूसरे लाक्षणिकता और व्यंजकता का समावेश सुगमता से हो जाता है। इनके अतिरिक्त इससे प्रतीक-प्रयोग को

१ साकेत, सर्ग ९, पृ० ३०४
२. साकेत, सर्ग ९, पृ० २६७
३. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४५
४. कामायनी, पृ० २९

प्रोत्साहन मिलता है। 'कामायनी' में इस अलंकार की प्रचुरता दिखाई पड़ती है।

विरोधाभास

विरोधाभास का प्रयोग भी छायावादी कवियों ने बड़े उत्साह के साथ किया है। इन सब में कामायनीकार अग्रणी हैं। अर्थ गाम्भीर्य लाने के लिए यह अलंकार बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। 'कामायनी' में इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं—

> अमर मरेगा क्या ? तू कितनी
> गहरी डाल रहा है नींव।[1]

तथा

> जीवन ! जीवन की पुकार है
> खेल रहा है शीतल दाह।[2]

'कामायनी' के समान ही अन्य काव्यों में भी अलंकार-योजना पर परंपरा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सन्देह,[3] समासोक्ति,[4] अपह्नुति,[5] उदाहरण,[6] दृष्टांत,[7] उल्लेख,[8] अर्थान्तरन्यास[9] परिसंख्या,[10] परिकराकुंर,[11] विषम,[12] काव्यलिंग,[13] आदि अलंकार आलोच्य महाकाव्यों में बड़ी छूट के साथ प्रयुक्त हुए हैं।

---

१. कामायनी, पृ० ५
२. वही, पृ० २७
३. कामायनी, पृ० १४२; सिद्धार्थ, सर्ग ५, पृ० ७०, पं० १७—२०
४. कामायनी, पृ० २४, प्रथम छंद; वैदेही वनवास, १,२
५. कामायनी, पृ० ३६, पं० ५—८; साकेत, सर्ग ६, पृ० २५०, पं० ९—१०; प्रियप्रवास, ३, ८७
६. कामायनी, पृ० १०६, अंतिम छंद
७. साकेत, सर्ग ५, पृ० ११०, पं० १५—१८; कामायनी, पृ० ८, अंतिम छंद
८. कामायनी, पृ० ५०, प्रथम छंद
९. कामायनी, पृ० १६, अंतिम छंद, साकेत, सर्ग १, पृ० ६, पं० ५—८
१०. नलनरेश, २,३९—४२; वैश्यवंश, ४,४७
११. कामायनी, पृ० २६०, छंद २
१२. कृष्णायन, म० कां०, दो० १८०; कामायनी, पृ० २२८, छंद १
१३. कामायनी, पृ० ६, छंद ४

विरोध की दिशा में झंकृत होने वाले अन्य अलकारों की परपरा भी आधुनिक महाकाव्यो में मिलती है । प्रतीप,[१] विभावना[२] आदि अनेक अलकार परपरा की धारा की अनेक भास्वर ऊर्मियाँ हैं जो आलोच्य महाकाव्यो मे यत्र-तत्र दिखाई पड जाती हैं ।

इस विवेचन के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दी मे अलकार-प्रयोग की दो धाराएँ आ मिली हैं : एक धारा परपरागत है जिस पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव है और दूसरी नव्य एव मौलिक है जिसमें नवीन उपमान हैं और नवीन अलकरण-योजना है । सस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत काव्य शास्त्र भी है । शास्त्रीय प्रभाव सस्कृत साहित्य पर भी रहा है और हिन्दी पर भी । अतएव आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो की अलकार-योजना सस्कृत साहित्य से गहन रूप से प्रभावित है ।

छद–योजना

छद का अभिप्राय है 'बधन' या 'मर्यादा' । अतएव मात्रा या वर्णों की 'मर्यादा' को 'छद' अभिधा दी जा सकती है । इस मर्यादा में अर्थ की पूर्णता, लय की गति और विराम के साथ सगीतात्मकता की सिद्धि होती है । लय या सगीतात्मकता काव्याभिव्यक्ति का प्राण है । अपनी अनुभूति को कवि छन्द मर्यादा मे लयात्मक ढग से प्रस्तुत करके अधिक हृदयग्राही एव प्रभावोत्पादक बना देता है । छन्दगत सगीतात्मकता पाठक के मन को अनायास ही अपने मोह-पाश मे आबद्ध कर लेती है । यही कारण है कि पद्य लय एवं ध्वनि-संगीत से युक्त होने के कारण गद्य की अपेक्षा अधिक सरस तथा आह्लादक होता है ।

छद अनुभूति की प्रेषणीयता और भावों के सयमन का सफल साधन है । "छद की सीमा मे बँध कर भाव अधिक वेगवान् और प्रभावशाली हो जाता है, जिस प्रकार तटों के बधन से सरिता वेगवती बनती है । छद के आवर्तन में एक ऐसा आह्लाद होता है जो तुरत मर्म को छू लेता है । कवि के मानस मे काव्य-रचना के पहले जो भाव या सवेदन होता है, छद उसकी अभि-

---

१. साकेत सत, १,३१; रावण महाकाव्य, ३७,३८

२. साकेत, सर्ग १, पृ० ८, प० ७–१०

व्यक्ति ही नही करता, बल्कि उस भाव, संवेदन तथा अनुभूति का सद्वत् पाठक और श्रोता के मन मे सचारित करता है।'[1]

छद दो प्रकार के होते हैं—मात्रिक और वर्णिक। संस्कृत साहित्य में मात्रिक छदों का प्रयोग अति विरल है। जिन मात्रिक छदों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में हुआ है, हिन्दी मे उनका प्रयोग नगण्य है। इसके विपरीत हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यो मे मात्रिक छदो के प्रयोग की बहुलता मिलती है, किन्तु वर्णिक छदों का भी अभाव नही है। यों तो आधुनिक महाकवियो मे से अधिकाश ने वर्णवृत्तों का प्रयोग किया है और उस प्रयोग मे संस्कृत-वर्णवृत्तो का अनुकरण है, किन्तु 'सिद्धार्थ', 'प्रियप्रवास' जैसी कुछ काव्य कृतियाँ संस्कृत छदो के लिए प्रशस्त हैं।

यहाँ यह दुहराना अनुचित न होगा कि आधुनिक काल मे मात्रिक और वर्णिक छद-प्रयोग की दिशा मे कवियो ने बडी स्वच्छन्दता से काम लिया है। छन्दो का ऐसा बहुमुखी प्रयोग पूर्वाधुनिककालीन हिन्दी-कविता में शायद ही कभी हुआ हो। ये छद प्रमुख रूप मे मात्रिक छदों की कोटि के हैं। मात्रिक छद खडी बोली हिन्दी की विश्लेषणात्मक प्रकृति के बहुत अनुकूल हैं। पतजी की मान्यता है कि हिन्दी का सगीत केवल मात्रिक छदो मे अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सपूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्ही के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है। हिन्दी का सगीत ही ऐसा है कि उसके सुकुमार पद-क्षेप के लिए वर्ण वृत्त पुराने फैशन के चाँदी के कड़ों की तरह बडे भारी हो जाते हैं, उसकी गति शिथिल तथा विकृत हो जाती है, उसके पदो में वह स्वाभाविक नूपुर-ध्वनि नही रहती।[2]

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो मे प्रयुक्त मात्रिक छन्द अधिकाश रूप से तो हिन्दी के अपने हैं। कुछ अपभ्रंश और प्राकृत के ये छन्द हैं जिनका प्रयोग हिन्दी मे परपरागत रूप से होता चला आ रहा है, कुछ छन्द बगला और फारसी के छन्द-शास्त्र से प्रभावित हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं जिनका निर्माण कवियों ने स्वत. ही कर लिया है। संस्कृत के जातिवृत्तो का प्रयोग आधुनिक महाकाव्यों में नगण्य-सा दृष्टिगोचर होता है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में एक दो स्थलों पर आर्या, गीति, उपगीति आदि का प्रयोग करके जातिवृत्त-परपरा को जीवित रखने का प्रयत्न किया है।

---

१. सुमित्रानदन पत, पल्लव, भूमिका

२. सुमित्रानन्दन पत, पल्लव, पृ० २२–२३

संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग आधुनिक काल मे कई महाकवियों ने किया है। वर्ण-वृत्तों के प्रयोग की परंपरा मध्यकाल मे लुप्त सी हो गई। केशव जैसे कुछ संस्कृत-प्रिय कवियों ने ही वर्णवृत्तो का प्रयोग किया था। पर द्विवेदी युग में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के अथक प्रयास से यह परंपरा पुनर्जीवित हुई। द्विवेदी जी ने कई मौलिक एव अनूदित काव्यों की रचना संस्कृत के बहुप्रचलित वर्णवृत्ता मे की तथा अन्य कवियों को भी इस ओर प्रेरित किया। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, अनूप शर्मा और आनंदकुमार आदि महाकाव्यकारों ने द्विवेदी जी की परंपरा को और अधिक विकसित किया। हरिऔध ने 'प्रियप्रवास' में सर्वप्रथम संस्कृत के वर्णवृत्तों को अन्त्यमुक्त रूप मे अपनाया। गुप्त जी ने अपने महाकाव्य 'साकेत' मे, अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' और 'वर्द्धमान' महाकाव्यों मे तथा आनन्दकुमार ने *'अंगराज' महाकाव्य मे संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रचुरता से प्रयोग किया है।* वंशस्थ मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, भुजंगप्रयात आदि कई प्रमुख वर्ण-वृत्तों का प्रयोग आधुनिक महाकाव्यों मे मिलता है।

वंशस्थ

यह समवृत्त है जिसमे जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से बारह वर्ण होते हैं।[1] छन्दोमंजरीकार ने इसे वंशस्थबिल नाम दिया है। आधुनिक महाकवियों में अनूप शर्मा ने इस छन्द का प्रयोग सबसे अधिक किया है। 'वर्द्धमान' महाकाव्य मे कुछ स्थानों को छोड़कर आद्योपांत इसी छंद का प्रयोग हुआ है। इसके पूर्व शायद ही किसी कवि ने इस छंद का इतना विशद प्रयोग किया हो। 'वर्द्धमान' से उद्धृत इन पंक्तियों में वंशस्थ छंद का लाघवयुक्त प्रयोग देखिये —

मनुष्य का जीवन एक पुष्प है,
प्रफुल्ल होता है यह प्रभात में,
परन्तु छाया लख सांध्य काल की,
विकीर्ण होके गिरता दिनान्त में।[2]

---

१. 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' —वृत्तरत्नाकर, ३,४६
'वदन्तिवंशस्थबिलं जतौ जरौ' —छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तवक, पृ०४८

२ वर्द्धमान, पृ० ३०६

'प्रियप्रवास' के नवें, ग्यारहवें तथा सोलहवें सर्ग में भी वंशस्थ छन्द का प्रयोग ही प्रमुखता से हुआ है। यथा—

सु-कुंज में या वर-वृक्ष के तले।
अशक्त हो वे पशु पशु से पड़े
प्रतप्त-भू में गमनाभिशंकया।
पदांक को थी गति त्याग के भगी।[1]

श्री आनंदकुमार के 'अंगराज' महाकाव्य में भी वंशस्थ छन्द का प्रयोगाधिक्य है। 'अंगराज' के चौथे, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, तथा इक्कीसवें सर्ग में इस छन्द का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। एक उदाहरण देखिये —

निशीथ या तारक, चन्द्र हैं न ये,
अतीत के अंकित चारु चित्र हैं।
विलोकिये रावण से हरी हुई
सशोक जाती यह मातु जानकी।।[2]

मन्दाक्रान्ता इस छन्द के प्रत्येक चरण में १७ वर्ण होते हैं तथा मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, और अन्त में दो गुरु का क्रम रहता है। चार, छः और सात वर्णों पर यति होती है।[3] यह छन्द विप्रलम्भ शृंगार के लिए बहुत उपयुक्त होता है। कालिदास ने अपने 'मेघदूत' काव्य की रचना इसी छन्द में की है। विप्रलम्भ के अतिरिक्त यह करुण और शान्त के भी अनुकूल है। कालिदास के अनुकरण पर ही 'प्रियप्रवास' के वायु-दूतो प्रसंग और 'सिद्धार्थ' के पक्षी-दूत प्रसंग में मंदाक्रान्ता छन्द ही प्रयुक्त हुआ है। 'प्रियप्रवास' के चतुर्थ से लेकर सत्रहवें सर्ग तक इसी छन्द का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण देखिए—

---

१. प्रियप्रवास, ११, ६४
२. अंगराज, १४,२४
३. 'मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मोभनौ तौ गयुग्मम्।'
—छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ६६
'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौ नतो ताद् गुरु चेत्।'
—वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय, ९७

रो रो चिन्ता सहित दिन को राधिका थीं बिताती ।
आँखों को थीं सजल रखतीं उन्मना थीं दिखाती ।
शोभावाले जलद वपु की हो रही चातकी थीं ।
उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी ।[1]

'सिद्धार्थ' महाकाव्य के पाँचवें, छठे, ग्यारहवें, तेरहवें, चौदहवें और सोलहवें सर्ग में भी मन्दाक्रान्ता का प्रयोग हुआ है । उदाहरण यह है —

प्राची में हो उदित रवि भी साँझ को अस्त होता,
पाता है जो सुख, दुख वही अंत में झेलता है,
संयोगी भी, अहह ! सहता विप्रयुक्त दशा है,
देखो, कैसा क्रम चल रहा जन्म का, मृत्यु का भी ।[2]

मालिनी

मालिनीवृत्त में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण होते हैं तथा आठ और सात वर्णों के उपरान्त यति होती है ।[3] यह छन्द शृंगार और करुण रस के प्रसंगों में अधिक उपयुक्त है । इस छन्द का बहुत ही भावानुकूल प्रयोग 'सिद्धार्थ' में हुआ है । 'सिद्धार्थ' के तेरहवें सर्ग में कुमार के महाभिनिष्क्रमण के उपरान्त यशोधरा की व्यथा, उसके विलाप, करुण-क्रन्दन, रुदन आदि का चित्रण करने के लिए तथा सोलहवें सर्ग में यशोधरा की विरहावस्था के चित्रण में मन्दाक्रान्ता छन्द ही प्रयुक्त हुआ है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

विलप-विलप रोई, रो गिरी मेदिनी पै,
कलप-कलप सोया, मूर्छिता मृत्युप्राया,
द्रुत सहचरियों ने वारि से कंठ सींचा,
बह जल निकला हो अश्रु-धारा दृगों से ।[4]

इसी प्रकार—

---

१. प्रियप्रवास, ६,२६
२. सिद्धार्थ, सर्ग ११, पृ० १५५
३. 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'
—छन्दोमंजरी, २,४
४. सिद्धार्थ, सर्ग १३, पृ० १६१

ढलक पलक से ये अश्रु आते क्षणों में,
युग कलित कपोलों में बसी पांडुता थी,
अधर विरह-दुःखों से बने शुष्क ही थे,
घन-छवि कबरी भी प्राप्त थी सीणता को।[1]

'प्रियप्रवास' महाकाव्य के तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम्, नवम्, एकादश, त्रयोदश, पंचदश तथा सप्तदश सर्ग में मालिनी छन्द का प्रयोग छूट से हुआ है। यहाँ राधा, यशोदा एवं अन्य ब्रजवासियों को कृष्ण-वियोगजन्य वेदना के चित्रण के लिए यह छन्द प्रयुक्त हुआ है। विषय के अनुकूल छन्द-प्रयोग का सुन्दर प्रयास है। यथा—

सब-नभ-तल-तारे जो उगे दीखते हैं।
यह कुछ ठिठके से सोच में क्यों पड़े हैं।
ब्रज दुख अवलोके क्या हुए हैं दुखारी।
कुछ व्यथित बने से या हमें देखते हैं।[2]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण देखिए—

क्षितिज निकट कैसी लालिमा दीखती है,
बह रुधिर रहा है कौन सी कामिनी का?
विहग विकल हो हो बोलने क्यों लगे हैं,
सखि! सकल दिशा में आग सी क्यों लगी है?[3]

वसंततिलका यह १४ वर्णों का छन्द है। इसमें तगण, भगण, जगण, जगण और अन्त मे दो गुरु होते हैं।[4] यह छन्द शृंगार रस के अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। 'सिद्धार्थ' महाकाव्य के द्वितीय, सप्तम्, द्वादश एवं चतुर्दश सर्गों मे इस छन्द का प्रयोग हुआ है। रूप-वर्णन में इस छन्द का एक सुन्दर प्रयोग देखिये—

---

१. सिद्धार्थ, सर्ग १६, पृ० २४१
२. प्रियप्रवास, ४,४१
३. वही, ४,४६
४. 'उक्ता वसंततिलका तभजा. जगौ ग:'
—वृत्तरत्नाकर, ३,७६
'ज्ञेयं वसन्ततिलका तभजाजगौ ग.'
—छन्दोमंजरी, २,२

हैं पुण्डरीक-सम आनन चारुशोभी,
आभा कपोल पर कोकनदोपमा है,
इन्दीवराम्बक समावृत हैं निशा में,
हैं योषिता सकल मंजु मृणालिनी-सी[1]

'प्रियप्रवास' के पंचम्, नवम्, द्वादश, चतुर्दश, पंचदश एवं षोडश सर्गों में भी इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

अत्युज्ज्वला पहन तारक-मुक्त-माला।
दिव्याम्बरा बन अलौकिक-कौमुदी से।
शोभा-भरी परम-मुग्धकरी हुई थी।
राका कलाकर-मुखी रजनी-पुरन्ध्री।[2]

भुजंगप्रयात यह बारह वर्णों का वृत्त है। इसमें चार यगण होते हैं।[3] यह छन्द वीर और रौद्र रस के विशेष अनुकूल है। 'सिद्धार्थ' महाकाव्य में सिद्धार्थ के बाल-वर्णन के प्रसंग में इस छन्द का प्रयोग किया गया है, पर भावानुकूल न होने के कारण यह वर्णन प्रभावशाली नहीं बन पड़ा है। यथा—

बना स्वर्ण का उत्तरासंग तेरा,
लसी हेम के कुंडलों की प्रभा है,
मुझे प्राप्त सोना, न तू किन्तु सोना,
मुझे देख राजा, मुझे देख राजा।[4]

इसी प्रकार का एक अन्य छन्द देखिये—

मुझे देख राजा, मुझे देख राजा,
प्रफुल्लाब्ज-से नेत्र से देख, राजा,

---

१. सिद्धार्थ, पृ० १६४
२. प्रियप्रवास, १४,६३
३. 'भुजंगप्रयात चतुर्भिर्यकारैः'
—छन्दोमंजरी, २, ५५
४. सिद्धार्थ, सर्ग ३, पृ० ३४

मुदा मीन-सी आँख से देख राजा,
मुझे देख राजा, मुझे देख राजा।[1]

'मगराज' महाकाव्य के पच्चीसवें सर्ग मे तथा 'साकेत' के नवम् सर्ग में भी भुजंगप्रयात वृत्त का प्रयोग हुआ है।

द्रुतविलम्बित

यह बारह वर्णों का छन्द है जिसमें नगण, भगण, भगण और रगण का योग रहता है।[2] यह छन्द करुण और शान्त रसों के लिए अधिक उपयुक्त है। रूप-वर्णन और प्रकृति-वर्णन में भी इस छन्द का प्रयोग होता है। 'प्रियप्रवास' के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, अष्टम्, नवम्, दशम्, द्वादश और पंचदश सर्गों मे इस छन्द का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। प्रकृति-वर्णन के लिए प्रयुक्त इस छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार है—

त्रि घटिका रजनी गत थी हुई,
सकल गोकुल नीरव-प्राय था।
ककुभ व्योम समेत शनैः-शनैः
तमवती बनती व्रज-भूमि थी।[3]

'सिद्धार्थ' के वय-वर्णन और बाल-वर्णन के प्रसंगों में भी इसी छन्द का प्रयोग हुआ है। सिद्धार्थ के रूप-वर्णन मे इस छन्द का प्रयोग देखिये—

सकल-बालक-मध्य कुमार की
सुछवि थी इस भाँति प्रकाशती,
मुदित तारक-मंडल मे यथा
उदित पूर्ण कलाधर की कला।[4]

'मगराज' और 'वर्द्धमान' महाकाव्यों में भी यत्र-तत्र द्रुतविलंबित छन्द का प्रयोग हुआ है। 'वर्द्धमान' मे शात रस के एक उदाहरण मे इस छन्द का रसानुकूल प्रयोग द्रष्टव्य है—

---

१. सिद्धार्थ, सर्ग ३, पृ० ३४
२. 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ'
—छन्दोमंजरी, २,१०
३ प्रियप्रवास, १०,१
४. सिद्धार्थ, सर्ग ३, पृ० ४२

मनुज है प्रकृतिस्थ अवश्य, पै
इतर है जग आत्म-स्वरूप से,
जगत है जड, चेतन जीव है,
परम पुद्गल-तत्त्व अ-तत्त्व है।[१]

शार्दूलविक्रीडित

इस वृत्त मे मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और अन्त मे एक गुरु का योग होता है। इस प्रकार इसमें कुल १९ वर्ण होते हैं तथा बारह वर्णों के बाद यति होती है।[२] यह वृत्त शृंगार, वीर, करुण आदि रसों के लिये समान रूप से उपयुक्त सिद्ध होता है। 'सिद्धार्थ' महाकाव्य मे तेरहवें सर्ग को छोडकर अन्य सभी सर्गों मे इस छन्द का प्रयोग हुआ है 'प्रियप्रवास' के तृतीय, चतुर्थ एवं नवम् सर्ग मे शार्दूलविक्रीडित वृत्त का प्रयोग मिलता है। यशोदा की करुण स्थिति के चित्रण मे इस छद का एक प्रयोग देखिये—

ज्यों-ज्यों थीं रजनी व्यतीत करतीं और देखतीं व्योम को।
त्यों ही त्यों उनका प्रगाढ़ दुख भी दुर्दान्त था हो रहा।
आँखों से अविराम अश्रु बह के था शान्ति देता नहीं।
बारम्बार अशक्त-कृष्ण जननी थीं मूर्छिता हो रहीं।[३]

'वर्द्धमान' महाकाव्य के अन्तिम तीन छन्द भी शार्दूलविक्रीडित के ही हैं। एक छन्द प्रस्तुत है—

ऐसा मार्ग प्रशस्त है, न जिसमें है भ्रान्ति-शंका कहीं,
स्वामी अवर-मध्य जैन-मत की आनन्द-कादम्बिनी।
देती सौख्य वसन्त के पवन-सी सामयिकी-साधना
काम-क्रोध-मदादि-कटक बिना सन्मार्ग है धर्म का।[४]

---

१. वर्द्धमान, पृ० ३८७
२. 'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्'
—छन्दोमंजरी, २,३
'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'
—वृत्तरत्नाकर, ३,१०१
३. प्रियप्रवास, ३,८६
४. वर्द्धमान, पृ० ५८५

इस प्रकार हम देखते हैं कि वंशस्थ, मालिनी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित आदि संस्कृत के वर्णिक वृत्तों का प्रयोग आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में कई स्थानों पर हुआ है, पर शिखरिणी, वैतालीय, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी, पृथ्वी आदि कुछ वृत्त ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग इन महाकाव्यों में एक-दो स्थलों पर ही दीख पड़ता है।

अन्य अल्पप्रयुक्त वृत्त

शिखरिणी

इसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त में एक लघु और गुरु होते हैं।[1] इस वृत्त में १७ वर्ण होते हैं तथा ६ और ११ पर यति होती है। इस छन्द के कुछ प्रयोग आधुनिक महाकाव्यों से उद्धृत हैं—

'अंगराज' में—

विशाला शाला में, विमल नभ में, भूमितल में।
हसन्ती सेमन्ती, नलिन नलिनी पुष्पदल में ॥
विमुग्धा चन्द्रा यों, अब बन गई सर्वसुलभा।
यथा लज्जाहीना, सुरत-निरता वार-वनिता ॥[2]

'साकेत' में—

मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?
बहे आँसू होके, सखि, सब उपालम्भ गल के।
उन्हें हो आई जो, निरख मुझको नीरव दया।
उसी की पीड़ा का, अनुभव मुझे हा! रह गया ॥[3]

---

१. 'रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी'
—छन्दोमंजरी, २, १

२. अंगराज, १४, ५६

३. साकेत, पृ० २५४

वैतालीय

यह एक अर्द्धसम वृत्त है। इस छन्द को वियोधिता[१] और प्रबोधिता[२] नाम भी दिये गये हैं। इसके प्रथम और तृतीय चरण मे सगण, सगण, जगण और गुरु का क्रम रहता है तथा द्वितीय और चतुर्थ मे सगण, भगण, रगण एव लघु-गुरु का क्रम होता है। 'रघुवश' के टीकाकार मल्लिनाथ ने इस छन्द को वैतालीय सज्ञा दी है।[३] यह छन्द करुण रस के अनुकूल है। कालिदास ने 'रघुवश' के अष्टम् सर्ग में अज-विलाप के प्रसग में इस छन्द का प्रयोग किया है। कालिदास के अनुकरण पर मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'साकेत' के दशम् सर्ग में इस छन्द का प्रयोग किया है—

> रजनी ! उस पार कोक है,
> हत कोकी इस पार, शोक है !
> शत साक्ष्य वीचियाँ वहाँ,
> मिलते हा-रव बीच जहाँ। [४]

इन्द्रवज्रा

जिस वृत्त मे क्रमश दो तगण, जगण और दो गुरु होते हैं, वह इन्द्रवज्रा कहलाता है।[५] इस छद का प्रयोग 'अगराज' में देखा जा सकता है—

> दौड़े सटा खोल सटाक जैसे,
> खोले फटा सुप्त फणीन्द्र जैसे,
> ऐसे बृहत्यापति भारती का
> आता उड़ाता जय-वैजयन्ती। [६]

---

१. 'ससजा गुरुसमुतास्ततः, सभराल्गौ च वियोधिता भवेत्।'
—जयकीर्ति, छन्दोऽनुशासन, ३,१५

२ 'साज्गा सभ्रल्गा प्रबोधिता'
—आचार्य हेमचन्द्र, छन्दोऽनुशासन ३,१४

३. आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्द-योजना, पृ० १८७

४. साकेत, सर्ग १०, पृ० ३२०

५. 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग.'
—छन्दोमजरी, २, १

६ अगराज, २१, ९८

उपेन्द्रवज्रा

जिस वृत्त मे जगण, तगण, जगण और दो गुरु होते हैं, वह उपेन्द्र-वज्रा कहलाता है।[1] 'साकेत' मे इस छन्द का प्रयोग हुआ है—

यथार्थ था सो सपना हुआ है
अलीक था जो, अपना हुआ है।
रही यहाँ केवल है कहानी
सुना वही एक नयी-पुरानी। [2]

शालिनी

जिस वृत्त के प्रत्येक चरण में क्रमश: मगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं, वह शालिनी कहलाता है। इस वृत्त मे कुल ११ वर्ण होते हैं तथा चौथे और सातवें वर्ण पर यति होती है[3]। 'साकेत' मे ही इस छद का भी एक उदाहरण देखा जा सकता है—

क्या-क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पाँचवी तू प्रवीणा ॥ [4]

पृथ्वी

इस वृत्त में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण तथा अत मे लघु-गुरु होते हैं और आठ एव नौ वर्णों पर यति होती है।[5] यह वृत्त भी आलोच्य काव्यो में अनुपलब्ध नहीं है—

निहार सखि, सारिका कुछ कहे बिना शान्त सी,
दिये श्रवण है यहाँ, इधर मैं हुई भ्रान्त-सी,
इसे पिशुन जान तू, सुन सुभाषिणी है बनी,
'धरो' ! खगि, किसे धरूँ ? धृति लिये गये हैं धनी। [6]

---

१. 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ'
—वृत्तरत्नाकर, ३, २६

२. साकेत, पृ० २६४

३. 'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकै'
—छन्दोमजरी, २,५

४. साकेत, पृ० २५१

५. 'जसौजसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु:'
—छन्दोमजरी, २,२

६. साकेत, पृ० २५६

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी महाकवियों में से उन्हीं ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तो का प्रयोग पुष्कलता से किया है जिनकी अनुरक्ति संस्कृत की समस्त पदावली के विधान मे अधिक रही है। यही कारण है *कि आलोच्य काव्यों मे संस्कृत वृत्तों की योजना भाषागत प्रवृत्ति के अनुकूल* तथा रसानुकूल होने के कारण सफल बन पडी है।

निष्कर्ष-रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी ने छन्द-क्षेत्र में पर्याप्त विकास कर लेने पर भी संस्कृत-छंद परंपरा का परित्याग नहीं किया है। तुकान्त और अतुकान्त, दोनों शैलियों में संस्कृत के वर्णवृत्त हिन्दी की आधुनिक कविता में प्रयुक्त हुए हैं। आधुनिक महाकाव्यों में छन्द-योजना को संस्कृत-परंपरा से भी जोडा गया है और विकास की दिशा मे भी प्रेरित किया गया है।

इस अध्याय में किया गया समग्र विवेचन भाषा-शैली के पूर्ण रूप को सामने ले आता है। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों की भाषा संस्कृत-गर्भित खडी बोली है। वर्णवृत्तों में तत्सम शब्दावली के प्रयोगों को अधिक प्रोत्साहन मिला है। कवि-प्रसिद्धियों, समासो, अलकारों, छंदों आदि के अतिरिक्त महाकाव्यत्व के निर्वाह में भी संस्कृत का कुछ न-कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों की भाषा-शैली संस्कृत साहित्य के अनुकरण या प्रभाव से मुक्त नहीं है।

●●●●

उपसंहार

९ | उपसंहार

यह समग्र अध्ययन हमें इस निष्कर्ष पर ले पहुँचता है कि आधुनिक हिन्दी महाकाव्य अपने नवीन परिपार्श्वों में भी सस्कृत साहित्य से बहुत दूर नही रह सका है। जैसा कि देखा जा चुका है कई महाकाव्यों की रचना तो भारतीय परपराओं की परिधि में ही हुई है। उदाहरण के लिए 'रामकथा-कल्पलता', 'दमयन्ती', 'नलनरेश', 'साकेत' आदि नाम लिए जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त जिन महाकाव्यों ने चरित्र, वातावरण आदि के सम्बन्ध से कुछ मोड दिखलाये हैं वे भी सस्कृत के प्रभाव से मुक्त नही हैं। उनके मोडों में भी मूल स्रोतों का अदृष्ट प्रभाव है। उदाहरण के लिए 'रावण महाकाव्य' और 'प्रियप्रवास' को ले सकते हैं। 'रावण महाकाव्य' मे 'वाल्मीकि रामायण' के प्रभाव की स्वीकृति है, किन्तु रावण को नायक बनाने में कवि-कल्पना को 'वाल्मीकि रामायण', 'अध्यात्म-रामायण', 'रामचरितमानस' आदि ग्रन्थो की अदृष्ट प्रेरणा भी रही है। इनमे रावण की जो स्थिति या जो रूप-चित्र प्रस्तुत किया गया है 'रावण महाकाव्य' का कवि उससे अधिक सहमत नही है। उसने कथानक के मूल ढाँचे को तो स्वीकार कर लिया है, किन्तु रावण के चरित्र के सम्बन्ध में उसने अपनी नयी पद्धति स्वीकार की है। मेरी दृष्टि मे इस पद्धति को प्रेरित करने में आधार-ग्रन्थो का विस्मरण करना उचित नही है। 'प्रियप्रवास' में कृष्ण और राधा के चरित्र के सम्बन्ध में जो उद्भावनाएँ की गई हैं वे नवीन होती हुई भी मूल स्रोतों के प्रेरणा-ऋण से मुक्त नही हैं।

वातावरण के चित्रण में बहुत से कवि बडे जागरूक रहे हैं। यह माना जा सकता है कि हिन्दी के आधुनिक महाकवियों मे वाल्मीकि और कालिदास की सी असाधारण काव्य-प्रतिभा एव अद्भुत सृजन-शक्ति नही है, किन्तु इनमें से बहुतों को आधुनिक जीवन की विविधता के यथार्थ चित्रण में बडी सफलता

मिली है। इन्होंने आधुनिक जीवन की विविध समस्याओं के साथ जो समाधान प्रस्तुत किये हैं वे आधुनिक मानव को समीप से छूते हैं।

छोड़ दीजिये उन एक-दो कवियों को जिन्होंने आधार ग्रन्थों की परपरा मे अलौकिकता को प्रतिष्ठापित किया है, किन्तु अधिकाश कवियों ने ऐसे स्थलो को लोक-मान्य रूप देने का प्रयत्न किया है।

इन कवियों ने हमारे सामने किसी अपरिचित दिव्य-लोक को प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु इसी परिचित मर्त्यलोक का सजीव चित्र प्रस्तुत करके अपनी रचनाओं के साथ नये पाठक की सहानुभूति ग्रहण करने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों में नव-जीवन की अँगड़ाइयाँ तथा नव-चेतना का स्फुरण होते हुए भी, उनके ऊपर भारतीयता की अमिट छाप है। आज की 'मुक्त कविता' मे पश्चिम की जो लहर उमडती दिखलायी दे रही है, वह आलोच्य महाकाव्यों में नहीं है। उनमे जो परपरा और पद्धति अपनायी गयी है वह 'आधुनिकता' में पले आज के मनुष्य से सम्बन्धित होती हुई भी उसे भारतीय आचार-विचार से विरहित नहीं करती है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य बडी विपुलता से विकसित हुआ है, किन्तु विकास सस्कृत की महाकाव्य-परपरा से सर्वथा निरपेक्ष होकर नहीं हुआ। सस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य-लक्षणों को ध्यान में रखकर ही आलोच्य महाकवियो ने अपनी रचनाओ को तैयार किया है। यह सही है कि आलोच्य महाकाव्यों मे परपरा को तोडने का सतर्क प्रयत्न नहीं है, किन्तु आज का युग आचार्य भरतमुनि, दडी अथवा विश्वनाथ का युग नहीं है, यह गांधी, जवाहर और लालबहादुर का युग है। आज सभी मान्यताएँ उसी रूप मे स्वीकार्य नहीं रह गयी हैं। हमारे जीवन मे युगानुरूप परिवर्तन हुआ है। आधुनिक महाकाव्य उसकी ओर से मुँह नही मोड सकता है। जातीय जीवन के प्रतिनिधि महाकाव्य के स्वरूप मे परिवर्तन का आना स्वाभाविक है। यही कारण है कि हमारे महाकवियो ने आज के जीवन को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप परपरागत लक्षणो मे सशोधन की आवश्यकता का आदर किया है। इतना ही नही कुछ कवि तो महाकाव्य विषयक प्राचीन रूढियों के प्रति विद्रोह की सीमा तक जा पहुँचे हैं। आलोच्य कृतिकारों का एक वर्ग सामजस्यवादी भी दिखायी देता है। उसने महाकाव्य विषयक प्राचीन लक्षणों और नवीन परिस्थितियों में प्रजनित धारणाओं मे समझौता करना ही उचित समझा है।

प्रस्तुत अनुशीलन इस बात का प्रमाण है कि आज के अधिकांश महाकाव्यों की रचना प्राचीन पौराणिक कथावस्तु को लेकर हुई है। 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'नल-नरेश','दमयन्ती','रामकथाकल्पलता','कामायनी','वैदेही-वनवास', 'कृष्णायन', 'पार्वती' आदि रचनाओं में प्राचीन कथावस्तु को ही स्थान दिया गया है। मूल कथानक की कुछ बातें इस युग की बौद्धिकता के अनुकूल नहीं थी, इसलिए आलोच्य कृतिकारों ने अतिप्राकृत और अलौकिक ■ शों का विसर्जन करके कथावस्तु को युगानुरूप बनाने की चेष्टा की है।

आधुनिक महाकवि पात्रों का सही रूप प्रस्तुत करने में अधिक सचेष्ट रहा है। उसने अपनी कृति के पात्रों को औचित्य की समतल भूमि पर प्रतिष्ठित करने का हर सम्भव उपाय किया है। आधुनिक महाकाव्यों में परपरागत नायक के स्वरूप में विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत के महाकाव्यों में धीरोदात्त गुणों से युक्त किसी दिव्य या आदर्श पात्र को नायक-पद दिया जाता था, आलोच्य महाकाव्यों में इस नियम की कहीं-कहीं उपेक्षा भी की गई है। यहाँ प्राचीन पात्र अपना अतिमानवीय रूप छोड़कर मानवोचित विशेषताओं (गुण-दोषों) से युक्त होकर हमारे सामने यथार्थ मानव के रूप में आता है, आधुनिक महाकवि की यह मान्यता नहीं है कि उच्चवंशीय व्यक्ति ही महान होता है। आज नायक की महानता का मापदण्ड जाति, वर्ग या कुल नहीं रह गया है, वह गुणों से नापी जाती है। प्रेमचन्द को नायक बना कर आज के कवि ने इसी बात का परिचय दिया है।

रस के सम्बन्ध में भी आज महाकाव्य-विषयक मान्यताओं में परिवर्तन आ गया है। प्राचीन भारतीय महाकाव्यों में शृंगार, वीर और शांत में से किसी एक को प्रधानता दी जाती थी, अन्य रस गौण रूप में प्रतिष्ठित रहते थे, किन्तु आज के महाकाव्यों में इस नियम का अक्षरशः पालन अनिवार्य नहीं रह गया है। मनोविज्ञान ने आज इस नियम को ढीला कर दिया है। आज का कवि मानव को परिस्थितियों से अलग करके नहीं देखता, अतएव वह मानव-हृदय के विविध भावों की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति को प्रधानता देता है। इससे आधुनिक महाकाव्य में रस की स्थिति रूढ़ न होकर नव-युग के अनुरूप मिलती है। इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक महाकवि रूढ़ियों का दास नहीं है। वह युग की माँग का आदर करता हुआ महाकाव्य-विषयक परपरागत लक्षणों में संशोधन करता दीखता है।

हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यों पर कला के क्षेत्र में अपभ्रंश का प्रभाव भी रहता था। 'पद्मावत' और 'रामचरितमानस' इस प्रभाव के प्रमाण हैं, किन्तु आधुनिक महाकाव्यों पर संस्कृत साहित्य का ही अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आलोच्य महाकाव्यों में से अधिकांश की कथावस्तु 'वाल्मीकि रामायण,' 'महाभारत' और 'भागवत पुराण' से ली गयी है। 'साकेत', 'रामकथा कल्पलता','वैदेहीवनवास','साकेत-संत' और 'उर्मिला' की कथावस्तु'रामायण'से तथा 'दयमन्ती','नलनरेश','अंगराज','जयभारत','एकलव्य','रश्मिरथी' आदि की कथावस्तु 'महाभारत' से ली गयी है। कुछ महाकाव्य ऐसे भी हैं जिनकी कथावस्तु पर 'महाभारत'और'भागवत' की सम्मिलित छाप है। 'कृष्णायन'उन्ही का प्रतिनिधि है। 'प्रियप्रवास'पर 'भागवत' का ही प्रभाव है। 'दैत्यवंश' की रचना पर 'भागवत' तथा 'रघुवंश' का सम्मिलित प्रभाव है। 'पार्वती' की कथावस्तु 'कुमारसम्भव' से ली गयी है, जिस पर 'शिवपुराण' का भी प्रभाव है।

अधिकांश आधुनिक महाकाव्यों की सामग्री भले ही प्राचीन संस्कृत साहित्य से संकलित की गयी है, किन्तु उनमे अंधानुकरण की प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती है। श्री मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध आदि अनेक कवियों की रचनाओं को देख कर यही कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने महाकाव्यों मे यत्र-तत्र प्राचीन कवियों की भाव-भूमि पर चलते हुए भी उसे नवीन एवं मौलिक भाव-पद्धति का रूप दिया है। उनकी चरित्र-सृष्टि भी मौलिक है। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण 'भागवत' के कृष्ण से, 'साकेत' के राम वाल्मीकि और तुलसी के राम से, 'वैदेही-वनवास' की सीता वाल्मीकि, कालिदास और तुलसी की सीता से और 'कृष्णायन' के कृष्ण 'महाभारत','भागवत' और 'सूरसागर' के कृष्ण से भिन्न मौलिक रूप मे प्रतिष्ठित दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार 'दैत्यवंश' और 'पार्वती' क्रमश 'रघुवंश' 'भागवत' और 'कुमारसम्भव के' आधार पर निर्मित होने पर भी मौलिकता से विरहित नहीं हैं। 'कामायनी' की मौलिकता तो दिन के सूर्य के समान स्पष्ट है। प्रसाद जी ने वैदिक और संस्कृत साहित्य की विकीर्ण सामग्री के सूत्रों से 'कामायनी' का कथा-पट बड़ी मौलिकता और कुशलता से निर्मित किया है। विशेषता यह है कि प्राचीन जीर्ण अंगो को संकलित करके नवीन काया का निर्माण और उसमे नवीन-प्राण-प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया है। इससे स्पष्ट है कि हमारे महाकाव्यकारो ने प्राचीनता मे मौलिकता सँजोकर बड़ी कुशलता से नवीन को प्राचीन से सम्बन्धित किया है।

आधुनिक महाकाव्य युग की देन हैं। उनके निर्माण में युग की विविध परिस्थितियों का हाथ है। इसलिए आधुनिक महाकाव्यों की विवेचना करते समय युगचेतना की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जब उनके निर्माण में देश की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का समुचित योग रहा है तो उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? आज के कवि से 'रामायण', 'महाभारत' या 'नैषधीयचरितम्' के प्रणयन की आशा नहीं की जा सकती, किन्तु यह भी नहीं सोचा जा सकता है कि आज के कवि की लेखनी से कोई अच्छा महाकाव्य नहीं लिखा जा सकता या नहीं लिखा गया। जाति-विशेष की ही नहीं, समग्र मानव-जाति की समस्याओं को आत्मसात् करने वाला 'कामायनी' महाकाव्य इसी युग की देन है। देवत्व को ठोस भूमिका देने वाला 'प्रियप्रवास' भी इसी युग की रचना है। उपेक्षिता ऐतिहासिक नारी को युग-भावना के साँचे में फिट करने वाला 'साकेत' भी विस्मरणीय नहीं है।

इस अध्ययन के आधार पर इस प्रबन्ध की लेखिका ने एक अन्य तथ्य को भी अवगत किया है और वह यह है कि हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य एक ओर संस्कृत साहित्य से प्रभावित दीख पड़ते हैं और दूसरी ओर युग-चेतना से। उनमें युग-भावनाएँ एवं विचारधाराएँ उभर कर अंकित हुई हैं। साम्यवाद, गांधीवाद और मानवतावाद अपने-अपने परिपार्श्वों को व्यक्त करने के लिए सचेष्ट दीख पड़ते हैं। आज का समाज जाति, वर्ण और वर्ग के भेद से ऊपर उठ रहा है और यह छाया महाकाव्यों में भी दृष्टिगोचर हो रही है। आलोच्य महाकाव्यों में युग-समस्याओं का ही चित्रण नहीं है, प्रत्युत् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। हमारे महाकवियों की दृष्टि अपने देश और जाति के साथ-साथ विश्व-समस्या का अवलोकन भी करती रही है।

हमारा जीवन पाश्चात्य जीवन के नूतन प्रभावों से भी विमुक्त नहीं है, इसलिए हमारे महाकाव्य भी, जो भारतीय जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं, उन प्रभावों को व्यक्त करते रहे हैं। यही कारण है कि आधुनिक महाकाव्य के दो सम्मिलित परिपार्श्व दिखाई पड़ते हैं : प्राचीन भारतीय परंपराएँ तथा नूतन युग की प्रवृत्तियाँ। आज का युग दानव में भी मनुष्यता की कल्पना करता है और देवों को अलौकिक वायवी तल से उतार कर ठोस धरा पर प्रतिष्ठित करता है। यह प्रवृत्ति हमारे महाकाव्यों में भी दृष्टिगोचर होती है। यह युग आर्यों और अनार्यों, गोरे और काले शरीरों का भेद मिटा रहा है और दलितों को ऊपर उठाने के प्रति सचेष्ट है। इसी प्रवृत्ति का साकार रूप हमें

'दैत्यवंश', 'रावण', 'एकलव्य', 'तारकवध' आदि महाकाव्यों में दिखाई दे रहा है। एक ही मनुष्य में दानवता भी रहती है और मनुष्यता भी। कभी एक की प्रधानता होती है, कभी दूसरी की, किन्तु दानवता पर मानवता की विजय होती है 'दमयन्ती' महाकाव्य में पुष्कर का और 'तारकवध' में तारकासुर का हृदय-परिवर्तन इसी भावना की अभिव्यक्ति है।

संक्षेप में हम इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं : (१) आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में परंपरागत कथानकों में यथोचित संशोधन किया गया है, (२) अलौकिक एवं अप्राकृतिक को मौलिक एवं स्वाभाविक बनाया गया है, (३) युगचेतना को समुचित आदर देकर नवीनता के चरणों को प्रतिष्ठापित किया गया है, (४) प्राचीन चरित्रों के प्रति सहानुभूति दिखलायी गयी है, (५) वर्ग और वर्ग-भेद के मिटाने की चेष्टा की गयी है, (६) राष्ट्रीय भावनाओं को मानवता की भूमि प्रदान की गयी है, (७) संस्कृति के प्राचीन स्वरूप को नयी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है, (८) कला को रूढ़ियों से मुक्त करने का यथेष्ट प्रयत्न किया गया है, (९) नैतिक आदर्शों को उचित सम्मान की दृष्टि से देखा गया है, (१०) प्राचीन दार्शनिक दृष्टि को पुष्ट किया गया है और (११) जीवन को महाकाव्योचित व्यापकता एवं गरिमा प्रदान की गयी है।

●●●●

ग्रंथ-सूची

(क) आलोच्य महाकाव्य

नाम	रचना-काल (सन्)	रचयिता
१. कामायनी	१९३५	जयशंकर प्रसाद (प्र०सं०)
२. कृष्णायन	१९४३	द्वारिकाप्रसाद मिश्र
३. दमयन्ती	१९५७	ताराचन्द हारीत
४. नलनरेश	१९३३	पुरोहित प्रतापनारायण (द्वि०सं०)
५. प्रियप्रवास	१९१४	हरिऔध (प्र०सं०)
६. रामकथाकल्पलता	१९४८	नित्यानन्द शास्त्री (प्र०सं०)
७. वैदेही-वनवास	१९३९	हरिऔध (प्र०सं०)
८. साकेत	१९१९	मैथिलीशरण गुप्त (प्र०सं०)
९. साकेत-सन्त	१९४६	डा० बलदेवप्रसाद मिश्र (प्र०सं०)
१०. अंगराज	१९५०	आनन्दकुमार (प्र०सं०)
११. उर्मिला	१९५८	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (प्र०सं०)
१२. एकलव्य	१९५८	रामकुमार वर्मा (प्र०सं०)
१३. जयभारत	१९५२	मैथिलीशरण गुप्त (द्वि०सं०)
१४. तारकवध	१९५८	गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' (प्र०सं०)
१५. दैत्यवंश	१९४७	हरदयालुसिंह (प्र०सं०)
१६. नूरजहाँ	१९३५	गुरुभक्त सिंह
१७. पार्वती	१९५५	डा० रामानन्द तिवारी (प्र०सं०)
१८. मीराँ	१९५७	परमेश्वर द्विरेफ (द्वि०सं०)
१९. रश्मिरथी	१९५७	दिनकर
२०. रावण	१९५२	हरदयालुसिंह (प्र०सं०)

२१. वर्द्धमान	१९५१	अनूप शर्मा (प्र०स०)
२२. सिद्धार्थ	१९३७	अनूप शर्मा (प्र०स०)
२३. सेनापति कर्ण	१९५८	लक्ष्मीनारायण मिश्र (प्र०स०)
२४. आर्यावर्त	१९४३	मोहनलाल महतो
२५. कुरुक्षेत्र	१९४३	दिनकर
२६ जगदालोक	१९५२	ठाकुर गोपालशरण सिंह
२७ जननायक	१९४८	रघुवीरशरण मित्र (प्र०स०)
२८ जौहर	१९४५	श्यामनारायण पाडेय (प्र०स०)
२९. झाँसी की रानी	१९५५	श्यामनारायण
३०. देवार्चन	१९५२	करील (प्र०स०)
३१. प्रताप महाकाव्य	१९५७	रणवीरसिंह (प्र०स०)
३२. बाणाम्बरी	१९६०	पोद्दार रामावतार 'अरुण' (प्र०स०)
३३. महामानव	१९४६	ठाकुर प्रसादसिंह
३४. युगस्रष्टा प्रेमचन्द	१९५९	परमेश्वर द्विरेफ (प्र० स०)
३५. रामचरित चिंतामणि	१९२०	रामचरित मिश्र (प्र० स०)
३६ लोकायतन	१९६०	पंत (प्र० स०)
३७. विक्रमादित्य	१९४७	गुरुभक्त सिंह
३८. श्री कृष्णचरित मानस	१९४१	प्रद्युम्न दु गा
३९ श्री रामचन्द्रोदय	१९३७	रामनाथ ज्योतिषी
४०. श्री सदाशिव चरितामृत	१९६१	विष्णुदत्त शास्त्री (प्र० स०)
४१. हनुमच्चरित	१९५५	रणवीर सिंह (प्र० स०)
४२. हल्दीघाटी	१९३९	श्यामनारायण पाडेय
४३. परमज्योति महावीर		कवि सुधेश

(ख) सहायक ग्रंथ

(अ) संस्कृत-ग्रन्थ :

१. अध्यात्म रामायण	गीताप्रेस, गोरखपुर
२. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास
३ अमरुकशतक	अमरुक
४ अलंकारशेखर	केशवमिश्र
५ उत्तररामचरितम्	भवभूति

६ कादम्बरी	बाणभट्ट, टीकाकार कृष्णमोहन शास्त्री (चौखम्बा प्रकाशन)
७. काव्यकल्पलतावृत्ति	अमरचन्द्र यति
८. काव्यप्रकाश	मम्मट
९. काव्यादर्श	दण्डी
१०. काव्यालंकार	रुद्रट
११. काव्यालंकार–सूत्र	वामन
१२. किरातार्जुनीयम्	भारवि
१३. कुमारसम्भव	कालिदास
१४. गीता	गीताप्रेस, गोरखपुर
१५. चन्द्रालोक	जयदेव
१६. चाणक्यनीति	–
१७. चाणक्य–सूत्र	
१८. छन्दोमंजरी	पं० हरिदत्त शास्त्री
१९. छान्दोग्य उपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
२०. तत्त्वार्थसूत्र	वाचक, उमावाचस्पति
२१. नाट्यशास्त्र	भरतमुनि (निर्णय सागर प्रेस, बम्बई)
२२. नैषधीयचरितम्	श्री हर्ष
२३. प्रबोधचन्द्रोदय	कृष्ण मिश्र
२४. प्रसन्नराघव	जयदेव
२५. बुद्धचरितम्	अश्वघोष
२६. ब्रह्मवैवर्त पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, पूना
२७. ब्रह्मसूत्र	शांकरभाष्य
२८. मनुस्मृति	गीताप्रेस, गोरखपुर
२९. महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर
३०. मुण्डकोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
३१. मेघदूत	कालिदास
३२. रघुवंश	कालिदास
३३. रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ
३४. वाल्मीकि रामायण	गीताप्रेस, गोरखपुर
३५. वेणी-संहार	भट्टनारायण

२१. वर्द्धमान	१९५१	अनूप शर्मा (प्र०स०)
२२. सिद्धार्थ	१९३७	अनूप शर्मा (प्र०स०)
२३. सेनापति कर्ण	१९५८	लक्ष्मीनारायण मिश्र (प्र०स०)
२४. आर्यावर्त	१९४३	मोहनलाल महतो
२५. कुरुक्षेत्र	१९४३	दिनकर
२६ जगदालोक	१९५२	ठाकुर गोपालशरण सिंह
२७ जननायक	१९४८	रघुवीरशरण मित्र (प्र०स०)
२८. जौहर	१९४५	श्यामनारायण पाडेय (प्र०स०)
२९. झाँसी की रानी	१९५५	श्यामनारायण
३०. देवार्चन	१९५२	करील (प्र०स०)
३१. प्रताप महाकाव्य	१९५७	रणवीरसिंह (प्र०स०)
३२. बाणाम्बरी	१९६०	पोद्दार रामावतार 'अरुण' (प्र०स०)
३३. महामानव	१९४६	ठाकुर प्रसादसिंह
३४. युगस्रष्टा प्रेमचन्द	१९५९	परमेश्वर द्विरेफ (प्र० स०)
३५. रामचरित चिंतामणि	१९२०	रामचरित मिश्र (प्र० स०)
३६ लोकायतन	१९६०	पंत (प्र० स०)
३७. विक्रमादित्य	१९४७	गुरुभक्त सिंह
३८. श्री कृष्णचरित मानस	१९४१	प्रद्युम्न दुगा
३९ श्री रामचन्द्रोदय	१९३७	रामनाथ ज्योतिषी
४०. श्री सदाशिव चरितामृत	१९६१	विष्णुदत्त शास्त्री (प्र० स०)
४१. हनुमच्चरित	१९५५	रणवीर सिंह (प्र० स०)
४२. हल्दीघाटी	१९३९	श्यामनारायण पाडेय
४३. परमज्योति महावीर		कवि सुधेश

(ख) सहायक ग्रंथ

(अ) सस्कृत-ग्रन्थ :

१. अध्यात्म रामायण	गीताप्रेस, गोरखपुर
२. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास
३ अमरुक शतक	अमरुक
४ अलकारशेखर	केशवमिश्र
५. उत्तररामचरितम्	भवभूति

६. कादम्बरी	बाणभट्ट, टीकाकार कृष्णमोहन शास्त्री (चौखम्बा प्रकाशन)
७. काव्यकल्पलतावृत्ति	अमरचन्द यति
८. काव्यप्रकाश	मम्मट
९. काव्यादर्श	दण्डी
१०. काव्यालंकार	रुद्रक
११. काव्यालंकार-सूत्र	वामन
१२. किरातार्जुनीयम्	भारवि
१३. कुमारसंभव	कालिदास
१४. गीता	गीताप्रेस, गोरखपुर
१५. चन्द्रालोक	जयदेव
१६. चाणक्यनीति	–
१७. चाणक्य-सूत्र	
१८. छन्दोमंजरी	पं० हरिदत्त शास्त्री
१९. छान्दोग्य उपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
२०. तत्त्वार्थसूत्र	वाचक, उमावाचस्पति
२१. नाट्यशास्त्र	भरतमुनि (निर्णय सागर प्रेस,बम्बई)
२२. नैषधीयचरितम्	श्री हर्ष
२३. प्रबोधचन्द्रोदय	कृष्ण मिश्र
२४. प्रसन्नराघव	जयदेव
२५. बुद्धचरितम्	अश्वघोष
२६. ब्रह्मवैवर्त पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, पूना
२७. ब्रह्मसूत्र	शांकरभाष्य
२८. मनुस्मृति	गीताप्रेस, गोरखपुर
२९. महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर
३०. मुंडकोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
३१. मेघदूत	कालिदास
३२. रघुवंश	कालिदास
३३. रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ
३४. वाल्मीकि रामायण	गीताप्रेस, गोरखपुर
३५. वेणी-संहार	भट्टनारायण

३६. वृत्तरत्नाकर — आचार्य केदारभट्ट
३७. शतपथ ब्राह्मण — सपादक, चन्द्रधर शर्मा
३८. शिवपुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
३९. शिशुपालवध — माघ
४०. शुक्रनीति — वेंकटेश्वर प्रेस, पूना
४१. भागवतपुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
४२. षड्दर्शन समुच्चय — मणिभद्रकृत टीका
४३. सर्वदर्शन–संग्रह — माधवाचार्य
४४. साख्यकारिका — अभिनव राजलक्ष्मी टीकोपेता
४५. सामुद्रिक तिलक — सम्पादक, शास्त्री हिम्मतराम
४६. सामुद्रिक शास्त्र — सम्पादक, शास्त्री हिम्मतराम
४७. साहित्य–दर्पण — विश्वनाथ, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
४८. सौन्दरानन्दम् — अश्वघोष
४९. हनुमन्नाटक — स० दामोदर मिश्र, बनारस
५०. हर्षचरित — बाणभट्ट (जगन्नाथ पाठककृत टीका, चौखम्बा प्रकाशन)

(ब) हिन्दी–ग्रन्थ :

१. आधुनिक काव्यधारा — डा० केसरीनारायण शुक्ल
२. आधुनिक हिन्दी कविता मे अलकार-विधान — डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी
३. आधुनिक हिन्दी–काव्य मे छन्द-योजना — डा० पुत्तूलाल शुक्ल
४. आधुनिक हिन्दी–काव्य मे परम्परा और प्रयोग — डा० गोपालदत्त सारस्वत
५. आधुनिक हिन्दी प्रबध-काव्यों पर महाभारत का प्रभाव — डा० विनय
६. कादम्बरी : एक सास्कृतिक अध्ययन — डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
७. कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन — डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना

८. काव्य के रूप	गुलाबराय
९. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास	डा० शकुन्तला दुबे
१०. खड़ी बोली के गौरव–ग्रंथ	विश्वम्भर 'मानव'
११. जैन–दर्शन	डा० मोहनलाल मेहता
१२. पल्लव	सुमित्रानन्दन पंत
१३. प्रसाद और उनका साहित्य	विनोदशंकर व्यास
१४. बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य	डा० प्रतिपाल सिंह
१५. बौद्ध–दर्शन मीमांसा	पं० बलदेव उपाध्याय
१६. भारतीय दर्शन	दत्त एवं चट्टोपाध्याय
१७. भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय
१८. भारतीय दर्शन	डा० राधाकृष्णन (अनु० नंदकिशोर गोभिल)
१९. महाकवि हरिऔध	गिरिजादत्त शुक्ल
२०. मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता	डा० उमाकान्त
२१. प्रकृति और काव्य	डा० रघुवंश
२२. रामचरितमानस	तुलसीदास
२३. रामचन्द्रिका	केशवदास
२४. विचार और विश्लेषण	डा० नगेन्द्र
२५. विमर्श और निष्कर्ष	डा० सरनामसिंह शर्मा
२६. साकेत–एक अध्ययन	डा० नगेन्द्र
२७. साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना
२८. साहित्य चिंता	डा० देवराज
२९. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
३०. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य	डा० गोविन्दराम शर्मा
३१. हिन्दी नीति–काव्य	डा० भोलानाथ तिवारी
३२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास	डा० शंभूनाथसिंह
३३. हिन्दी महाकाव्यों में नारी–चित्रण	डा० श्यामसुन्दरदास

३६. वृत्तरत्नाकर	आचार्य केदारभट्ट
३७. शतपथ ब्राह्मण	संपादक, चन्द्रधर शर्मा
३८. शिवपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
३९. शिशुपालवध	माघ
४०. शुक्रनीति	वेंकटेश्वर प्रेस, पूना
४१. भागवतपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
४२. षड्दर्शन समुच्चय	मणिभद्रकृत टीका
४३. सर्वदर्शन-संग्रह	माधवाचार्य
४४. सांख्यकारिका	अभिनव राजलक्ष्मी टीकोपेता
४५. सामुद्रिक तिलक	सम्पादक, शास्त्री हिम्मतराम
४६. सामुद्रिक शास्त्र	सम्पादक, शास्त्री हिम्मतराम
४७. साहित्य-दर्पण	विश्वनाथ, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
४८. सौन्दरानन्दम्	अश्वघोष
४९. हनुमन्नाटक	सं० दामोदर मिश्र, बनारस
५०. हर्षचरित	बाणभट्ट (जगन्नाथ पाठककृत टीका चौखम्बा प्रकाशन)

(ब) हिन्दी-ग्रन्थ :

१. आधुनिक काव्यधारा	डा० केसरीनारायण शुक्ल
२. आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार-विधान	डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी
३. आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना	डा० पुत्तूलाल शुक्ल
४. आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा और प्रयोग	डा० गोपालदत्त सारस्वत
५. आधुनिक हिन्दी प्रबंध-काव्यों पर महाभारत का प्रभाव	डा० विनय
६. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
७. कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना

: काव्य के रूप	गुलाबराय
:. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास	डा० शकुन्तला दुबे
०. खड़ी बोली के गौरव–ग्रंथ	विश्वम्भर 'मानव'
१. जैन–दर्शन	डा० मोहनलाल मेहता
२. पल्लव	सुमित्रानन्दन पंत
३ प्रसाद और उनका साहित्य	विनोदशंकर व्यास
४. बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य	डा० प्रतिपाल सिंह
१५. बौद्ध–दर्शन मीमांसा	पं० बलदेव उपाध्याय
१६ भारतीय दर्शन	दत्त एवं चट्टोपाध्याय
१७. भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय
१८ भारतीय दर्शन	डा० राधाकृष्णन (अनु० नंदकिशोर गोभिल)
१९ महाकवि हरिऔध	गिरिजादत्त शुक्ल
२०. मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता	डा० उमाकान्त
२१. प्रकृति और काव्य	डा० रघुवंश
२२. रामचरितमानस	तुलसीदास
२३ रामचन्द्रिका	केशवदास
२४. विचार और विश्लेषण	डा० नगेन्द्र
२५. विमर्श और निष्कर्ष	डा० सरनामसिंह शर्मा
२६. साकेत–एक अध्ययन	डा० नगेन्द्र
२७. साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना
२८ साहित्य चिंता	डा० देवराज
२९. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
३०. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य	डा० गोविन्दराम शर्मा
३१. हिन्दी नीति–काव्य	डा० भोलानाथ तिवारी
३२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास	डा० शम्भूनाथसिंह
३३ हिन्दी महाकाव्यों में नारी–चित्रण	डा० श्यामसुन्दरदास

३४. हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (काशी, छठ सं०)
३५. हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
३६. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव	डा० सरनामसिंह शर्मा
३७. संस्कृत साहित्य का इतिहास	वी० वरदाचार्य, अनु० डा० कपिलदेव

(ख) अंग्रेजी-ग्रन्थ :

१. इम्पीरियल गेजेटियर आॅव इण्डिया	
२. द मिस्टिक फिलॉसफी ऑव द उपनिषद्स	एस. सी. सेन
३. द सिस्टम ऑव वेदान्त	ड्यूसेन
४. अ हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर	मेकडोनेल
५. अ हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर	दासगुप्ता एवं डे.
६. स्टडीज़ इन द हिस्ट्री ऑव संस्कृत पोइटिक्स	एस. के. डे.

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ

१. रसवंती	सं० डा० प्रेमनारायण टंडन, १९६१, अंक ३६-३७
२. सरस्वती पत्रिका	जौलाई, १९१२

••••